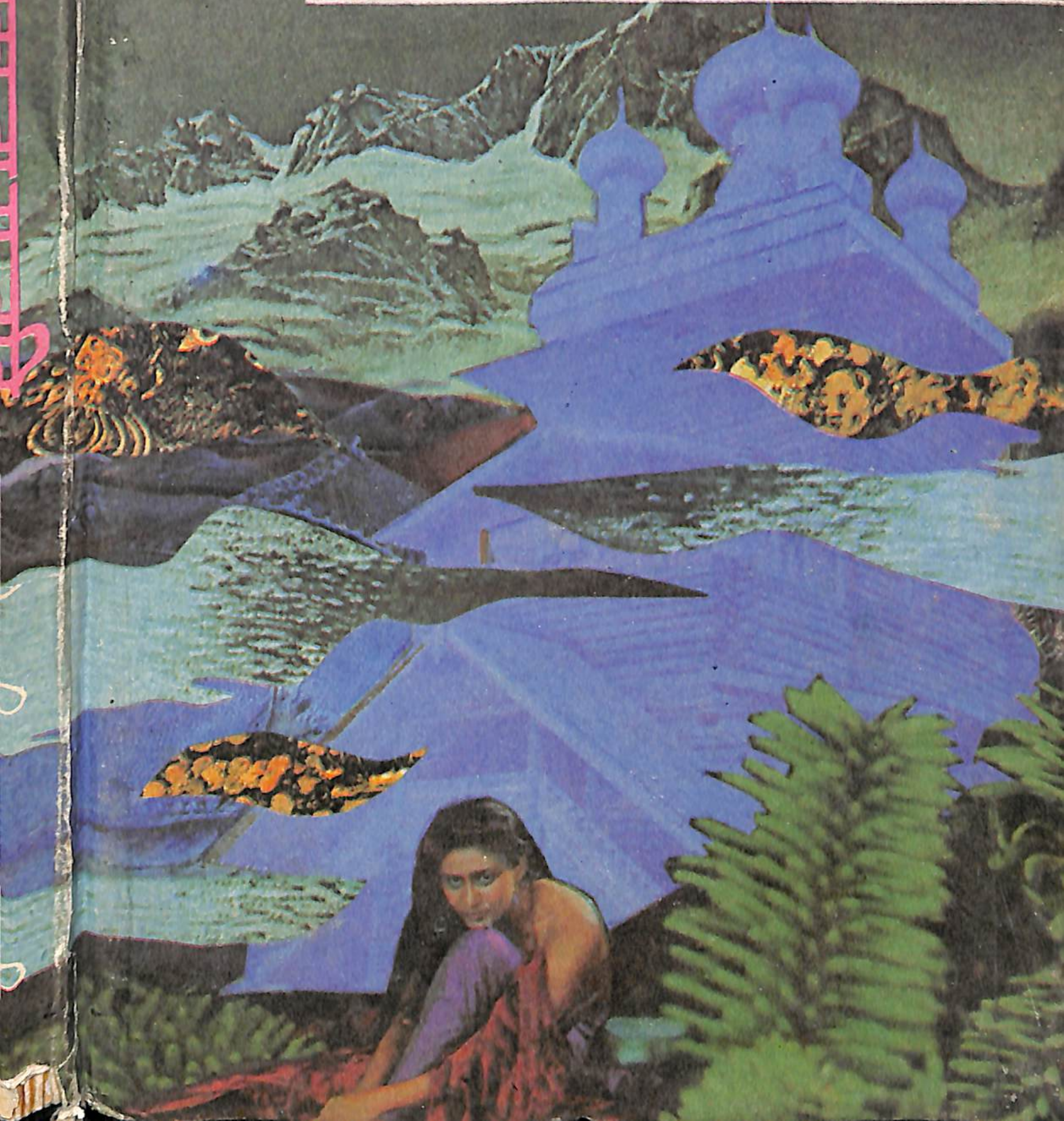
चन्द्रकान्ता सन्तति

बाबू देवकीनन्दन खत्री



भारती भाषा प्रकाशन
शाहदरा, दिल्ली-110032

चन्द्रकान्ता सन्तति

बाबू देवकीनन्दन खत्री

6

प्रकाशक :
भारती भाषा प्रकाशन
518/6-बी, विश्वासनगर,
शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण : हरिप्रकाश त्यागी

प्रथम संस्करण : 1995 मूल्य : 125.00

मुद्रक : विकास ऑफसेट
सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

CHANDRAKANTA SANTATI, Part III (Novel) by
Babu Devkinandan Khatri

चन्द्रकान्ता सन्तति

इक्कीसवाँ भाग

1

भूतनाथ अपना हाल कहते-कहते कुछ देर के लिए रुक गया और इसके बाद एक लम्बी साँस लेकर पुनः यों कहने लगा।

भूतनाथ—मैं अपने को कैदियों की तरह और अपने सामने अपनी ही स्त्री को सरदारी के ढंग पर बैठे हुए देखकर एक दफे घबड़ा गया और सोचने लगा कि यह क्या मामला है ? मेरी स्त्री मुझे सामने ऐसी अवस्था में देखे और सिवाय मुस्कुराने के कुछ न बोले ! अगर वह चाहती तो मुझे अपने पास गद्दी पर बैठा लेती, क्योंकि इस कमरे में जितने दिखाई दे रहे हैं उन सभी की वह सरदार मालूम पड़ती है—इत्यादि बातों को सोचते-सोचते मुझे क्रोध चढ़ आया और मैंने लाल आँखों से उसकी तरफ देखकर कहा, "क्या तू मेरी स्त्री वही रामदेई है जिसके लिए मैंने तरह-तरह के कष्ट उठाये और जो इस समय मुझे कैदियों की अवस्था में अपने सामने देख रही है ?"

इसके जवाब में मेरी स्त्री ने कहा, "हाँ मैं वही रामदेई हूँ जिसके लड़के को तुम किसी जमाने में अपना होनहार लड़का समझकर चाहते और प्यार करते थे मगर आज उसे दुश्मनी की निगाह से देख रहे हो, मैं वही रामदेई हूँ जो तुम्हारे असली भेदों को न जानकर और तुम्हें नेक ईमानदार तथा सच्चा ऐयार समझकर तुम्हारे फंदे में फँस गई थी, मगर आज तुम्हारे असली भेदों का पता लग जाने के कारण डरती हुई तुमसे अलग हुआ चाहती हूँ, मैं वही रामदेई हूँ जिसे तुमने नकाबपोशों के मकान में देखा था, और मैं वही रामदेई हूँ जिसने उस दिन तुम्हें जंगल में धोखा देकर बैरंग वापस होने पर मजबूर किया था, मगर मैं वह रामदेई नहीं हूँ जिसे तुम 'लामाघाटी' में छोड़ आए हो।"

मुझे उस औरत की बातों ने ताज्जुब में डाल दिया और मैं हैरानी के साथ उसका मुँह देखने लगा। अनूठी बात तो यह थी कि वह अपनी बातों में शुरू से तो रामदेई अथवा मेरी स्त्री बनती चली आई मगर आखिर में बोल बैठी कि "मगर मैं वह रामदेई नहीं हूँ जिसे तुम लामाघाटी में छोड़ आए हो।" आखिर बहुत सोच-विचार कर मैंने पुनः उससे कहा, "अगर तू वह रामदेई नहीं है जिसे मैं लामाघाटी में छोड़ आया था, तो तू मेरी स्त्री भी नहीं है।"

स्त्री—तो यह कौन कहता है कि मैं तुम्हारी स्त्री हूँ ?

मैं—अभी इसके पहले तूने क्या कहा था ?

स्त्री—(हँस कर) मालूम होता है कि तुम अपने होश में नहीं हो।

इतना सुनते ही मुझे क्रोध चढ़ आया और मैं अपनी हथकड़ी-बेड़ी तोड़ने का उद्योग करने लगा। यह हाल देखकर उस औरत को भी क्रोध आ गया और उसने अपनी एक सखी या लौंडी की तरफ देखकर कुछ इशारा किया। वह लौंडी इशारा पाते ही उठी और उसी जगह आले पर से एक बोतल उठा लाई जिसमें किसी प्रकार का अर्क था। उस से चुल्लू भर उसने दो-तीन छींटे मेरे मुँह पर दिये जिस से मैं बेहोश हो गया और मुझे तनो-बदन की सुध न रही। मैं नहीं बता सकता कि इसके बाद कितने घण्टे तक मैं उसके कब्जे में रहा, परन्तु जब होश में आया तो मैंने अपने को जंगल में एक पेड़ के नीचे पाया। घण्टों तक ताज्जुब के साथ चारों तरफ देखता रहा, इसके बाद एक चश्मे के किनारे जाकर हाथ-मुँह धोने के बाद इस तरफ रवाना हुआ। बस, यही सबब था कि मुझे हाजिर होने में देर हो गई।

भूतनाथ की बातें सुनकर सभी को ताज्जुब हुआ, मगर वे दोनों नकाबपोश एक दम खिलखिलाकर हँस पड़े और उनमें से एक ने भूतनाथ की तरफ देखकर कहा—

नकाबपोश—भूतनाथ, निःसन्देह तुम धोखे में पड़ गये। उस औरत ने जो कुछ तुमसे कहा, उसमें शायद ही दो तीन बातें सच हों।

भूतनाथ—(ताज्जुब से) सो क्या ? उसने कौन सी बातें सच-सच कही थीं और कौन सी झूठ ?

नकाबपोश—सो मैं नहीं कह सकता मगर आशा है कि शीघ्र ही तुम्हें सच-झूठ का पता लग जायगा।

भूतनाथ ने बहुत-कुछ चाहा मगर नकाबपोश ने उसके मतलब की कोई बात न कही। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके नकाबपोश बिदा हुए और जाते समय एक सवाल के जवाब में कह गये कि "आप लोग दो दिन और सब्र करें, इसके बाद कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के सामने ही सब भेदों का खुलना अच्छा होगा, क्योंकि उन्हें इस बातों के जानने का बड़ा शौक है।"

2

रात आधी से कुछ ज्यादा जा चुकी है। महाराज सुरेन्द्रसिंह अपने कमरे में पलंग पर लेटे हुए जीतसिंह से धीरे-धीरे कुछ बातें कर रहे हैं जो चारपाई के नीचे उनके पास ही बैठे हैं। केवल जीतसिंह ही नहीं बल्कि उनके पास वे दोनों नकाबपोश भी बैठे हुए हैं जो रोज दरबार में आकर लोगों को ताज्जुब में डाला करते हैं और जिनका नाम रामसिंह और लक्ष्मणसिंह है। हम नहीं कह सकते कि ये लोग कब से इस कमरे में बैठे

हैं या इसके पहले इन लोगों में क्या-क्या बातें हो चुकी हैं, मगर इस समय तो ये सब लोग कई ऐसे मामलों पर बातचीत कर रहे हैं जिनका पूरा होना बहुत जरूरी समझा जाता है।

बात करते-करते एक दफे कुछ रुक कर महाराज सुरेन्द्रसिंह ने जीतसिंह से कहा, "इस राय में गोपालसिंह का भी शरीक होना उचित जान पड़ता है, किसी को भेजकर उन्हें बुलाना चाहिए।"

"जो आज्ञा" कहकर जीतसिंह उठे और कमरे के बाहर जाकर राजा गोपालसिंह को बुलाने के लिए चोबदार को हुक्म देने के बाद पुनः अपने ठिकाने बैठ कर बातचीत करने लगे।

जीतसिंह—इसमें तो कोई शक नहीं कि भूतनाथ आदमी चालाक और पूरे दर्जे का ऐयार है मगर उसके दुश्मन लोग उस पर बेतरह टूट पड़े हैं और चाहते हैं कि जिस तरह बने उसे बर्बाद कर दें और इसीलिए उसके पुराने ऐबों को उधेड़ कर तरह-तरह की तकलीफ दे रहे हैं।

सुरेन्द्रसिंह—ठीक है, मगर हमारे साथ भूतनाथ ने सिवाय एक दफे चोरी करने के और कौन-सी बुराई की है जिसके लिए उसे हम सजा दें या बुरा कहें?

जीतसिंह—कुछ भी नहीं, और वह चोरी भी उसने किसी बुरी नीयत से नहीं की थी। इस विषय में नानक ने जो कुछ कहा था, महाराज सुन ही चुके हैं।

सुरेन्द्रसिंह—हाँ मुझे याद है, और उसने हम लोगों पर अहसान भी बहुत किये हैं बल्कि यों कहना चाहिए कि उसी की बदौलत कमलिनी, किशोरी, लक्ष्मीदेवी और इन्दिरा वगैरह की जानें बचीं और गोपालसिंह को भी उसकी मदद से बहुत फायदा पहुँचा है। इन्हीं सब बातों को सोच के तो देवीसिंह ने उसे अपना दोस्त बना लिया है, मगर साथ ही इसके इस बात को भी समझ रखना चाहिए कि जब तक भूतनाथ का मामला तय नहीं हो जायगा तब तक लोग उसके ऐबों को खोद-खोद कर निकाला ही करेंगे और तरह-तरह की बातें गढ़ते रहेंगे।

एक नकाबपोश—सो तो ठीक ही है, मगर सच पूछिए तो भूतनाथ का मुकदमा ही कैसा और मामला ही क्या? मुकदमा तो असल में नकली बलभद्रसिंह का है जिसने इतना बड़ा कसूर करने पर भी भूतनाथ पर इल्जाम लगाया है। उस पीतल वाली सन्दूकड़ी से तो हम लोगों को कोई मतलब ही नहीं, हाँ, बाकी रह गया चिट्ठियों वाला मुट्ठा जिसके पढ़ने से भूतनाथ लक्ष्मीदेवी का कसूरवार मालूम होता है, सो उसका जवाब भूतनाथ काफी तौर पर दे देगा और साबित कर देगा कि वे चिट्ठियाँ उसके हाथ की लिखी हुई होने पर भी वह कसूरवार नहीं है और वास्तव में वह बलभद्रसिंह का दोस्त है, दुश्मन नहीं।

सुरेन्द्रसिंह—(लम्बी साँस लेकर) ओफ-ओह, इस थोड़े से जमाने में कैसे-कैसे उलटफेर हो गए! बेचारे गोपालसिंह के साथ कैसी-कैसी धोखेबाजी की गई! इन बातों पर जब हमारा ध्यान जाता है तो मारे क्रोध के बुरा हाल हो जाता है।

जीतसिंह—ठीक है, मगर खैर अब इन बातों पर क्रोध करने की जगह नहीं रही

क्योंकि जो कुछ होना था हो गया। ईश्वर की कृपा से गोपालसिंह भी मौत की तकलीफ उठा कर बच गए और अब हर तरह से प्रसन्न हैं, इसके अतिरिक्त उनके दुश्मन लोग भी गिरफ्तार होकर अपने पंजे में आये हुए हैं।

सुरेन्द्रसिंह—बेशक ऐसा ही है मगर हमें कोई ऐसी सजा नहीं सूझती जो उनके दुश्मनों को देकर कलेजा ठंडा किया जाय और समझा जाय कि अब गोपालसिंह के साथ बुराई करने का बदला ले लिया गया।

महाराज सुरेन्द्रसिंह इतना कह ही रहे थे कि राजा गोपालसिंह कमरे के अन्दर आते हुए दिखाई पड़े क्योंकि उनका डेरा इस कमरे से बहुत दूर न था।

राजा गोपालसिंह सलाम करके पलंग के पास बैठ गए और इसके बाद दोनों नकाबपोशों से भी साहब-सलामत करके मुस्कुराते हुए बोले—आप लोग कब से बैठे हैं?

एक नकाबपोश—हम लोगों को आये बहुत देर हो गई।

सुरेन्द्रसिंह—ये बेचारे कई घण्टे से बैठे हुए हमारी तबीयत बहला रहे हैं और कई जरूरी बातों पर विचार कर रहे हैं।

गोपालसिंह—वे कौन सी जरूरी बातें हैं?

सुरेन्द्रसिंह—यही लड़कों की शादी, भूतनाथ का फैसला, कैदियों का मुकदमा, कमलिनी और लाड़िली के साथ उचित बर्ताव इत्यादि विषयों पर बातचीत हो रही है और सोच रहे हैं कि किस तरह क्या किया जाय तथा पहले क्या काम हो?

गोपालसिंह—इस समय मैं भी इसी उलझन में पड़ा हुआ था। मैं सोया नहीं था बल्कि जागता हुआ इन्हीं बातों को सोच रहा था कि आपका सन्देशा पहुँच गया और तुरन्त उठकर इस तरफ चला आया। (नकाबपोशों की तरफ बता कर) आप लोग तो अब हमारे घर के व्यक्ति हो रहे हैं अतः ऐसे विचारों में आप लोगों को शरीक होना ही चाहिए।

सुरेन्द्रसिंह—जीतसिंह कहते हैं कि कैदियों का मुकदमा होने और उनको सजा देने के पहले ही दोनों लड़कों की शादी हो जानी चाहिए जिसमें कैदी लोग भी इस उत्सव को देखकर अपना जी जला लें और समझ लें कि उनकी बेईमानी, हरामजदगी और दुश्मनी का नतीजा क्या निकला। साथ ही इसके एक बात का फायदा और भी होगा, अर्थात् कैदियों के पक्षपाती लोग भी, जो ताज्जुब नहीं कि इस समय भी कहीं इधर-उधर छिपे मन के लड्डू बना रहे हों, समझ जायँगे कि अब उन्हें दुश्मनी करने की कोई जरूरत नहीं रही और न ऐसा करने से कोई फायदा ही है।

गोपालसिंह—ठीक है, जब तक दोनों कुमारों की शादी न हो जायगी तब तक तरह-तरह के खुटके बने ही रहेंगे। शादी हो जाने के बाद मेहमानों के सामने ही कैदियों को जहन्नुम में पहुँचाकर दुनिया को दिखा दिया जायगा कि बुरे कर्मों का नतीजा यह होता है।

सुरेन्द्रसिंह—खैर, तो आपकी भी यही राय होती है?

गोपालसिंह—बेशक!

सुरेन्द्रसिंह—(जीतसिंह की तरफ देखकर) तो अब हमें और किसी से राय

मिलाने की जरूरत नहीं रही। आप हर तरह का बन्दोबस्त शुरू कर दें और जहाँ-जहाँ न्यौता भेजना हो भिजवा दें।

जीतसिंह—जो आज्ञा। अच्छा, अब भूतनाथ के विषय में कुछ तय हो जाना चाहिए।

गोपालसिंह—हम लोगों में से कौन सा आदमी ऐसा है जो भूतनाथ के अहसानों के बोझ से दबा हुआ न हो? बाकी रही यह बात कि जयपाल ने भूतनाथ के हाथ की चिट्ठियाँ कमलिनी और लक्ष्मीदेवी को दिखाकर भूतनाथ को दोषी ठहराया है, सो वास्तव में भूतनाथ दोषी नहीं है और इस बात का सबूत भी वह दे देगा।

सुरेन्द्रसिंह—हाँ, तुमको तो इन सब बातों का सच्चा हाल जरूर ही मालूम होगा क्योंकि तुम्हीं ने कृष्ण जिन्न बनकर उसकी सहायता की थी। अगर वास्तव में वह दोषी होता तो तुम ऐसा करते ही क्यों?

गोपालसिंह—बेशक यही बात है। इन्दिरा का किस्सा आपको मालूम ही है क्यों कि मैंने आपको लिख भेजा था और आशा है कि आपको वे बातें याद होंगी?

सुरेन्द्रसिंह—हाँ मुझे बखूबी याद है, बेशक उस जमाने में भूतनाथ ने तुम लोगों की बड़ी सहायता की थी बल्कि इसी सबब से उसमें और दरोगा में दुश्मनी हो गई थी, अतः कब हो सकता है कि भूतनाथ लक्ष्मीदेवी के साथ दगा करता जो कि दरोगा से दोस्ती और बलभद्रसिंह से दुश्मनी किए बिना हो ही नहीं सकता था! लेकिन आखिर यह बात क्या है, वे चिट्ठियाँ भूतनाथ की लिखी हैं या नहीं? फिर, इस जगह एक बात का और भी खयाल होता है वह यह कि उस मुट्ठे में दोनों तरफ की चिट्ठियाँ मिली हुई हैं अर्थात् जो रघुबरसिंह ने भेजीं वे भी हैं और जो रघुबर के नाम आई थीं वे भी हैं।

गोपालसिंह—जी हाँ और यह बात भी बहुत से शकों को दूर करती है। असल यह है कि वे सब चिट्ठियाँ भूतनाथ के हाथ की नकल की हुई हैं! वह रघुबरसिंह, जो दारोगा का दोस्त था और जमानिया में रहता था, उसी की यह सब कार्रवाई है और यह सब विष उसी के बोये हुए हैं। वह बहुत जगह इशारे के तौर पर अपना नाम भूतनाथ लिखा करता था। आपने इन्दिरा के हाल में पढ़ा होगा कि भूतनाथ बेनीसिंह बनकर बहुत दिनों तक रघुबरसिंह के यहाँ रह चुका है और उन दिनों यही भूतनाथ हेलासिंह के यहाँ रघुबरसिंह का खत लेकर आया-जाया करता था···

सुरेन्द्रसिंह—ठीक है, मुझे याद है।

गोपालसिंह—बस ये सब चिट्ठियाँ उन्हीं चिट्ठियों की नकलें हैं। भूतनाथ ने मौके पर दुश्मनों को कायल करने के लिए उन चिट्ठियों की नकल कर ली थी और कुछ उनके घर से भी चुराई थीं। बस, भूतनाथ की गलती या बेईमानी जो कुछ समझिए यही हुई कि उस समय कुछ नगदी फायदे के लिए उसने इस मामले को दबाये रक्खा और उसी वक्त मुझ पर प्रकट न कर दिया। रिश्वत लेकर दारोगा को छोड़ देना और कलमदान के भेद को छिपा रखना भी भूतनाथ के ऊपर धब्बा लगाता है क्योंकि अगर ऐसा न होता तो मुझे यह बुरा दिन देखना नसीब न होता और इन्हीं भूलों पर आज भूतनाथ पछताता और अफसोस करता है। मगर आखिर में भूतनाथ ने इन बातों का बदला भी ऐसा अदा

किया कि वे सब कसूर माफ कर देने के लायक हो गए।

सुरेन्द्रसिंह—उस कलमदान में क्या चीज थी?

गोपालसिंह—उस कलमदान को दारोगा की गुप्त सभा का दफ्तर ही समझिए। सब सभासदों के नाम और सभा के मुख्य भेद उसी में बन्द रहते थे, इसके अतिरिक्त दामोदरसिंह ने जो वसीयतनामा इन्दिरा के नाम लिखा था वह भी उसी में बन्द था।

सुरेन्द्रसिंह—ठीक है, ठीक है, इन्दिरा के किस्से में यह बात भी तुमने लिखी थी, हमें याद आया। मगर इसमें भी कोई शक नहीं कि उन दिनों लालच में पड़कर भूतनाथ ने बहुत बुरा किया और उसी सबब से तुम लोगों को तकलीफ उठानी पड़ी।

एक नकाबपोश—शायद भूतनाथ को इस बात की खबर न थी कि इस लालच का नतीजा कहाँ तक बुरा निकलेगा।

सुरेन्द्रसिंह—जो हो मगर उस समय की बातों पर ध्यान देने से यह भी कहना पड़ता है कि उन दिनों भूतनाथ एक हाथ से भलाई के नाम कर रहा था और दूसरे हाथ से बुराई के।

गोपालसिंह—ठीक है, बेशक ऐसी ही बात थी।

सुरेन्द्रसिंह—(जीतसिंह की तरफ देख के) भूतनाथ और इन्द्रदेव को भी इसी समय यहाँ बुलाकर इस मामले को तय कर देना चाहिए।

"जो आज्ञा" कहकर जीतसिंह उठे और कमरे के बाहर जाकर चोबदार को हुक्म देने के बाद लौट आये, इसके बाद कुछ देर सन्नाटा रहा, फिर गोपालसिंह ने कहा—

गोपालसिंह—अपने खयाल में तो भूतनाथ ने कोई बुराई नहीं की थी क्योंकि बीस हजार अशर्फी दारोगा से वसूल करके उसे छोड़ देने पर भी उसने एक इकरारनामा लिखा लिया था कि वह (दारोगा) ऐसे किसी काम में शरीक न होगा और न खुद ऐसा कोई काम करेगा जिसमें इन्द्रदेव, सरयू, इन्दिरा और मुझ (गोपालसिंह) को किसी तरह का नुकसान पहुँचे[1] मगर दारोगा फिर भी बेईमानी कर ही गया और भूतनाथ इकरारनामे के भरोसे बैठा रह गया। इससे खयाल होता है कि शायद भूतनाथ को भी इन मामलों की ठीक खबर न हो अर्थात् मुन्दर का हाल मालूम न हुआ हो, और वह लक्ष्मीदेवी के बारे में धोखा खा गया हो तो भी ताज्जुब नहीं।

सुरेन्द्रसिंह—हो सकता है, (कुछ देर तक चुप रहने के बाद) मगर यह तो बताओ कि इन सब मामलों की खबर तुम्हें कब और क्योंकर लगी?

गोपालसिंह—इन सब बातों का पता मुझे भूतनाथ के गुरुभाई शेरसिंह की जुबानी लगा जो भूतनाथ को भाई की तरह प्यार करता है मगर उसकी इन सब लालच भरी कार्रवाइयों के बुरे नतीजे को सोच और उसे पूरा कसूरवार समझकर उससे डरता और नफरत करता है। जिन दिनों रोहतासगढ़ का राजा दिग्विजयसिंह किशोरी को अपने किले में ले गया था और इस सबब से शेरसिंह ने अपनी नौकरी छोड़ दी थी, उन दिनों भूतनाथ छिपा-छिपा फिरता था। मगर जब शेरसिंह ने उस तिलिस्मी तहखाने

---

1. इन्दिरा का किस्सा (चन्द्रकान्ता सन्तति, पन्द्रहवाँ भाग, पहला बयान)।

में जाकर डेरा डाला,[1] और छिपे-छिपे कमला और कामिनी की मदद करने लगा तो उन्हीं दिनों उस तिलिस्मी तहखाने में जाकर भूतनाथ ने शेरसिंह से एक तौर पर (बहुत दिनों तक ग़ायब रहने के बाद) नई मुलाकात की, मगर धर्मात्मा शेरसिंह को यह बात बहुत बुरी मालूम हुई···

गोपालसिंह इतना कह ही रहे थे कि भूतनाथ और इन्द्रदेव कमरे के अन्दर आ पहुँचे और सलाम करके आज्ञानुसार जीतसिंह के पास बैठ गये।

जीतसिंह—(भूतनाथ और इन्द्रदेव से) आप लोग बहुत जल्द आ गये।

इन्द्रदेव—हम दोनों इसी जगह बरामदे के नीचे बाग में टहल रहे थे, इसलिए चोबदार नीचे उतरने के साथ ही हम लोगों से जा मिला।

जीतसिंह—खैर, (गोपालसिंह से) हाँ तब ?

गोपालसिंह—अपनी नेकनामी में धब्बा लगने और बदनाम होने के डर से भूतनाथ की सूरत देखना भी शेरसिंह पसन्द नहीं करता था, बल्कि उसका तो यही बयान है कि 'मुझे भूतनाथ से मिलने की आशा ही न थी और मैं समझे हुए था कि अपने दोषों से लज्जित होकर भूतनाथ ने जान दे दी।' मगर जिस दिन उसने उस तहखाने में भूतनाथ की सूरत देखी तो काँप उठा। उसने भूतनाथ की बहुत लानत-मलामत करने के बाद कहा कि "अब तुम हम लोगों को अपना मुँह मत दिखाओ और हमारी जान और आबरू पर दया करके किसी दूसरे देश में चले जाओ।" मगर भूतनाथ ने इस बात को मंजूर न किया और यह कहकर अपने भाई से बिदा हुआ कि चुपचाप बैठे देखते रहो कि मैं किस तरह अपने पुराने परिचितों में प्रकट होकर खास राजा वीरेन्द्रसिंह का ऐयार बनता हूँ। बस इसके बाद भूतनाथ कमलिनी से जा मिला और जी-जान से उसकी मदद करने लगा। मगर शेरसिंह को यह बात पसन्द न आई। यद्यपि कुछ दिनों तक शेरसिंह ने कमलिनी तथा हम लोगों का साथ दिया, मगर डरते-डरते। आखिर एक दिन शेरसिंह ने एकान्त में मुझसे मुलाकात की और अपने दिल का हाल तथा मेरे विषय में जो कुछ जानता था, कहने के बाद बोला, "यह सब हाल कुछ तो मुझे अपने भाई भूतनाथ की जुबानी मालूम हुआ और कुछ रोहतासगढ़ को इस्तीफा देने के बाद तहकीकात करने से मालूम हुआ, मगर इस बात की खबर हम दोनों भाइयों में से किसी को भी न थी कि आपको मायारानी ने कैद कर रक्खा है। खैर, अब ईश्वर की कृपा से आप छूट गये हैं इसलिए आपके सम्बन्ध में जो कुछ मुझे मालूम है आपसे कह दिया, जिसमें आप दुश्मनों से अच्छी तरह बदला ले सकें। अब मैं आगे अपना मुँह किसी को दिखाना नहीं चाहता क्योंकि मेरा भाई भूतनाथ जिसे मैं मरा हुआ समझता था प्रकट हो गया और न मालूम क्या-क्या किया चाहता है। कहीं ऐसा न हो कि गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाय, अतः अब मैं जहाँ भागते बनेगा भाग जाऊँगा। हाँ, अगर भूतनाथ जो कि बड़ा जिद्दी और उत्साही है किसी तरह नेकनामी के साथ राजा वीरेन्द्रसिंह का ऐयार बन गया तो पुनः प्रकट हो जाऊँगा।" इतना कहकर शेरसिंह न मालूम कहाँ चला गया। मैंने बहुत

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, तीसरा भाग, तेरहवाँ बयान।

कुछ समझाया मगर उसने एक न मानी। (कुछ रुककर) यही सबब है कि मुझे इन सब बातों से आगाही हो गई और मैं भूतनाथ के भी बहुत से भेदों को जान गया।

जीतसिंह—ठीक है। (भूतनाथ की तरफ देख के) भूतनाथ, इस समय तुम्हारा ही मामला पेश है! इस जगह हम जितने भी आदमी हैं, सभी कोई तुमसे हमदर्दी रखते हैं; महाराज भी तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। ताज्जुब नहीं कि वह दिन आज ही हो कि तुम्हारे कसूर माफ किए जायँ और तुम महाराज के ऐयार बन जाओ, मगर तुम्हें अपना हाल या जो कुछ तुमसे पूछा जाय उसका जवाब सच-सच कहना और देना चाहिए। इस समय तुम्हारा ही किस्सा हो रहा है।

भूतनाथ—(खड़े होकर सलाम करने के बाद) आज्ञा के विरुद्ध कुछ भी न करूँगा और कोई बात छिपा न रक्खूँगा।

जीतसिंह—तुम्हें यह तो मालूम हो गया कि सरयू और इन्दिरा भी यहाँ आ गई हैं जो जमानिया के तिलिस्म में फँस गई थीं और उन्होंने अपना अनूठा किस्सा बड़े दर्द के साथ बयान किया था।

भूतनाथ—(हाथ जोड़ के) जी हाँ, मुझ कम्बख्त की बदौलत उन्हें उस कैद की तकलीफ भोगनी पड़ी। उन दिनों बदकिस्मती ने मुझे हद से ज्यादा लालची बना दिया था। अगर मैं लालच में पड़कर दारोगा को न छोड़ देता तो यह बात कभी न होती। आपने सुना ही होगा कि उन दिनों हथेली पर जान लेकर मैंने कैसे-कैसे काम किये थे, मगर दौलत की लालच ने मेरे सब कामों पर मिट्टी डाल दी। अफसोस, मुझे इस बात की कुछ भी खबर न हुई कि दारोगा ने अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध सारे काम किये, , अगर मुझे खबर लग जाती तो उससे समझ लेता।

जीतसिंह—अच्छा यह बताओ कि तुम्हारा भाई शेरसिंह कहाँ है?

भूतनाथ—मेरे यहाँ होने के सबब से न मालूम वह कहाँ जाकर छिपा बैठा है। उसे विश्वास है कि भूतनाथ जिसने बड़े-बड़े कसूर किए हैं, कभी निर्दोष छूट नहीं सकता। बल्कि ताज्जुब नहीं कि उसके सबब से मुझ पर भी किसी तरह का इलजाम लगे।' हाँ, अगर वह मुझे बेकसूर छूटा हुआ देखेगा या सुनेगा तो तुरन्त प्रकट हो जायगा।

जीतसिंह—वह चिट्ठयों वाला मुट्ठा तुम्हारे ही हाथ का लिखा हुआ है या नहीं?

भूतसिंह—जी वे सब चिट्ठियाँ है तो मेरे ही हाथ की लिखी हुई, मगर वे असल नहीं बल्कि उन असली चिट्ठियों की नकलें हैं जो कि मैंने जयपाल (रघुवरसिंह) के यहाँ से चोरी की थीं। असल में इन चिट्ठियों का लिखने वाला मैं नहीं, बल्कि जयपाल है।

जीतसिंह—खैर, तो जब तुमने जयपाल के यहाँ से असल चिट्ठियों की नकल की थी तो तुम्हें उसी समय मालूम हुआ होगा कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह पर क्या आफत आने वाली है?

भूतनाथ—क्यों न मालूम होता! परन्तु रुपये की लालच में पड़कर अर्थात् कुछ लेकर मैंने जयपाल को छोड़ दिया। मगर बलभद्रसिंह से मैंने इस होनहार के बारे में इशारा जरूर कर दिया था, हाँ जयपाल का नाम नहीं बताया क्योंकि उससे रुपया वसूल कर चुका था। औ: यह कहना भी मैं भूल ही गया कि रुपये वसूल करने के साथ ही

मैंने जयपाल को इस बात की कसम भी खिला दी थी कि अब वह लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह से किसी तरह की बुराई न करेगा। मगर अफसोस, उसने (जयपाल ने) मेरे साथ दगा करके मुझे धोखे में डाल दिया और वह काम कर गुजरा जो किया चाहता था। इसी तरह मुझे बलभद्रसिंह के बारे में भी धोखा हुआ। दुश्मनों ने उन्हें कैद कर लिया और मुझे हर तरह से विश्वास दिला दिया कि बलभद्रसिंह मर गए। लक्ष्मीदेवी के बारे में जो कुछ चालाकी दारोगा ने की, उसका भी मुझे कुछ पता न लगा और न मैं कई वर्षों तक लक्ष्मीदेवी की सूरत ही देख सका कि पहचान लेता। बहुत दिनों के बाद जब मैंने नकली लक्ष्मीदेवी को देखा भी तो मुझे किसी भी तरह का शक न हुआ, क्योंकि लड़कपन की सूरत और अधेड़पन की सूरत में बहुत बड़ा फर्क पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त जिन दिनों मैंने नकली लक्ष्मीदेवी को देखा था, उस समय उनकी दोनों बहिनें अर्थात् श्यामा (कमलिनी) और लाड़िली भी उसके साथ ही रहती थीं, जब वे ही दोनों उसकी बहन होकर धोखे में पड़ गईं तो मेरी कौन गिनती है ?

बहुत दिनों के बाद जब यह कागज का मुट्ठा मेरे यहाँ से चोरी हो गया, तब मैं घबराया और डरा कि समय पर चोरी गया हुआ वह मुट्ठा मुझको मुजरिम बना देगा, और आखिर ऐसा ही हुआ। दुष्टों ने वही कागजों का मुट्ठा कैदखाने में बलभद्रसिंह को दिखाकर मेरी तरफ से उनका दिल फेर दिया और तमाम दोष मेरे ही सिर पर थोपा। इसके बाद और भी कई वर्ष बीत जाने पर जब राजा गोपालसिंह के मरने की खबर उड़ी और इस बात में किसी को किसी तरह का शक न रहा, तब धीरे-धीरे मुझे दारोगा और जयपाल की शैतानी का कुछ पता लगा, मगर फिर मैंने जान-बूझकर तरह दे दिया और सोचा कि अब उन बातों को खोदने से फायदा ही क्या, जब कि खुद राजा गोपालसिंह ही इस दुनिया से उठ गये तो मैं किसके लिए इन बखेड़ों को उठाऊँ ? (हाथ जोड़कर) बेशक यही मेरा कसूर है और इसीलिए मेरा भाई भी रंज है। हाँ इधर जब कि मैंने देखा कि अब श्रीमान् राजा वीरेन्द्रसिंह का दौरा-दौरा है और कमलिनी भी उस घर से निकल खड़ी हुई तब मैंने भी सिर उठाया और अबकी दफे नेकनामी के साथ नाम पैदा करने का इरादा कर लिया। इस बीच में मुझ पर बड़ी आफतें आईं, मेरे मालिक रणधीरसिंह भी मुझसे बिगड़ गये और मैं अपना काला मुँह लेकर दुनिया से किनारे हो बैठा तथा अपने को मरा हुआ मशहूर कर दिया अब कहाँ तक बयान करूँ, बात तो यह है कि मैं सिर से पैर तक अपने को कसूरवार समझकर ही महाराजा की शरण में आया हूँ।

जीतसिंह—तुम्हारी पिछली कार्रवाई का बहुत-सा हाल महाराज को मालूम हो चुका है, उस जमाने में इन्दिरा को बचाने के लिए जो कार्रवाइयाँ तुमने की थीं उनसे महाराज प्रसन्न हैं, खास करके इसलिए कि तुम्हारे हरएक काम में दबंगता का हिस्सा ज्यादा था और तुम सच्चे दिल से इन्द्रदेव के साथ दोस्ती का हक अदा कर रहे थे, मगर इस जगह एक बात का बड़ा ताज्जुब है।

भूतनाथ—वह क्या ?

जीतसिंह—इन्दिरा के बारे में जो-जो काम तुमने किये थे वे इन्द्रदेव से तो तुमने

जरूर ही कहे होंगे ?

भूतनाथ—बेशक जो कुछ काम मैं करता था वह हमेशा ही इन्द्रदेव से पूरा-पूरा कह देता था ।

जीतसिंह—तो फिर इन्द्रदेव ने दारोगा को क्यों छोड़ दिया ? सजा देना तो दूर रहा, इन्होंने गुरुभाई का नाता तक नहीं तोड़ा ।

भूतनाथ—(एक लम्बी साँस लेकर और उँगली से इन्द्रदेव की तरफ इशारा करके) इनके ऐसा भी बहादुर और मुरौवत का आदमी मैंने दुनिया में नहीं देखा । इनके साथ जो कुछ सलूक मैंने किया था उसका बदला भी अपने एक ही काम से इन्होंने ऐसा अदा किया कि जो इनके सिवाय दूसरा कर ही नहीं सकता था और जिससे मैं जन्म भर इनके सामने सिर उठाने लायक न रहा, अर्थात् जब मैंने रिश्वत लेकर दारोगा को छोड़ देने और कलमदान दे देने का हाल इनसे कहा, तो सुनते ही इनकी आँखों में आँसू भर आये और एक लम्बी साँस लेकर इन्होंने मुझसे कहा, "भूतनाथ, तुमने यह काम बहुत ही बुरा किया । किसी दिन इसका नतीजा बहुत ही खराब निकलेगा ! खैर, अब तो जो कुछ होना था हो गया, तुम मेरे दोस्त हो अतः जो कुछ तुम कर आये, उसे मैं भी मंजूर करता हूँ और दारोगा को एक दम भूल जाता हूँ । अब मेरी लड़की और स्त्री पर चाहे कैसी आफत क्यों न आये और मुझे भी चाहे कितना ही कष्ट क्यों न भोगना पड़े, मगर आज से दारोगा का नाम भी न लूँगा और न अपनी स्त्री के विषय में ही किसी से कुछ जिक्र करूँगा, जो कुछ तुम्हें करना हो करो और उस कम्बख्त दारोगा से भले ही कह दो कि 'इन बातों की खबर इन्द्रदेव को नहीं दी गई ।' मैं भी अपने को ऐसा ही बनाऊँगा कि दारोगा को किसी तरह का खुटका न होगा और वह मुझे निरा उल्लू ही समझता रहेगा ।" इन्द्रदेव की बात मेरे कलेजे में तीर की तरह लगी और मैं यह कहकर उठ खड़ा हुआ कि "दोस्त, मुझे माफ करो, बेशक मुझसे बड़ी भूल हुई है । अब मैं दारोगा को कभी न छोड़ूंगा और जो कुछ उससे लिया है उसे वापस कर दूँगा ।" मगर इतना कहते ही इन्द्रदेव ने मेरी कलाई पकड़ ली और जोर के साथ मुझे बैठाकर कहा, "भूतनाथ, मैंने यह बात तुमसे ताने के ढंग पर नहीं कही है कि सुनने के साथ ही तुम उठ खड़े हुए । नहीं-नहीं, ऐसा कभी न होने पायेगा, हमने और तुमने जो कुछ किया और जो कहा सो कहा, अब उसके विपरीत हम दोनों में से कोई भी न जा सकेगा !"

सुरेन्द्रसिंह—शाबाश !

इतना कहकर सुरेन्द्रसिंह ने गहरी मुहब्बत की निगाह से इन्द्रदेव की तरफ देखा और भूतनाथ ने फिर इस तरह कहना शुरू किया—

भूतनाथ—मैंने बहुत कुछ कहा मगर इन्द्रदेव ने एक न माना और एक बहुत बड़ी कसम देकर मेरा मुँह बन्द कर दिया, मगर इस बात का नतीजा यह निकला कि उसी दिन से हम दोनों दोस्त दुनिया से उदासीन हो गये । मेरी उदासीनता में तो कुछ कसर रह गई मगर इन्द्रदेव की उदासीनता में किसी तरह की कसर न रही । यही सबब था कि इन्द्रदेव के हाथ से दारोगा बच गया और दारोगा इन्द्रदेव की तरफ से (मेरे कहे मुताबिक) बेफिक्र रहा ।

सुरेन्द्रसिंह—बेशक इन्द्रदेव ने यह बड़े हौसले और सब्र का काम किया !

गोपालसिंह—दोस्ती का हक अदा करना इसे कहते हैं, जितने अहसान भूतनाथ ने इन पर किये थे, सभी का बदला एक ही बात से चुका दिया !

भूतनाथ—(गोपालसिंह की तरफ देख के) कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह से इन्दिरा ने अपना हाल किस तरह पर बयान किया था सो मुझे मालूम न हुआ । अगर यह मालूम हो जाता तो अच्छा होता कि इन्दिरा ने जो कुछ बयान किया था वह ठीक है अथवा उसने जो कुछ सुना था वह सच था ?

गोपालसिंह—जहाँ तक मेरा खयाल है, मैं कह सकता हूँ कि इन्दिरा ने अपने विषय में कोई बात ज्यादा नहीं कही, बल्कि ताज्जुब नहीं कि वह कई बातें मालूम न होने के कारण छोड़ गई हो । मैंने उसका पूरा-पूरा किस्सा महाराज को लिख भेजा था । (जीतसिंह की तरफ देखकर) अगर मेरी वह चिट्ठी यहाँ मौजूद हो, तो भूतनाथ को दे दीजिये, उसमें से इन्दिरा का किस्सा पढ़कर ये अपना शक मिटा लें ।

"हाँ वह चिट्ठी मौजूद है" इतना कह कर जीतसिंह उठे और आलमारी से वह किताबनुमा चिट्ठी निकाल कर और इन्दिरा का किस्सा बता कर भूतनाथ को दे दी । भूतनाथ उसे तेजी के साथ पढ़ गया और अन्त में बोला, "हाँ ठीक है, करीब-करीब सभी बातें उसे मालूम हो गई थीं और आज मुझे भी एक बात नई मालूम हुई अर्थात् आखिरी मर्तबे जब मैं इन्दिरा को दारोगा के कब्जे से निकालकर ले गया था और अपने एक अड्डे पर हिफाजत के साथ रख गया था तो वहाँ से एकाएक उसका गायब हो जाना मुझे बड़ा ही दुःखदायी हुआ । मैं ताज्जुब करता था कि इन्दिरा वहाँ से क्योंकर चली गई । जब मैंने अपने आदमियों से पूछा तो उन्होंने कहा कि 'हम लोगों को कुछ भी नहीं मालूम कि वह कब निकल कर भाग गई, क्योंकि हम लोग कैदियों की तरह उस पर निगाह नहीं रखते थे बल्कि घर का आदमी समझ कर कुछ बेफिक्र थे ।' परन्तु मुझे अपने आदमियों की बात पसन्द न आई और मैंने उन लोगों को सख्त सजा दी । आज मालूम हुआ कि वह काँटा मायाप्रसाद का बोया हुआ था। मैं उसे अपना दोस्त समझता था मगर अफसोस, उसने मेरे साथ बड़ी दगा की !"

गोपालसिंह—इन्दिरा की जुबानी यह किस्सा सुन कर मुझे भी निश्चय हो गया कि मायाप्रसाद दारोगा का हितू है अतः मैंने उसे तिलिस्म में कैद कर दिया है । अच्छा, यह तो बताओ कि उस समय जब तुम आखिरी मर्तबे इन्दिरा को दारोगा के यहाँ से निकाल कर अपने अड्डे पर रख आये और लौट कर पुनः जमानिया गये, तो फिर क्या हुआ, दारोगा से कैसे निपटे, और सरयू का पता क्यों न लगा सके ?

भूतनाथ—इन्दिरा को उस ठिकाने रख कर जब मैं लौटा तो पुनः जमानिया गया परन्तु अपनी हिफाजत के लिए पाँच आदमिमों को अपने साथ लेता गया और उन्हें (अपने आदमियों को) कब क्या करना चाहिए इस बात को भी अच्छी तरह समझा दिया क्योंकि वे पाँचों आदमी मेरे शागिर्द थे और कुछ ऐयारी भी जानते थे । मुझे सरयू के लिए दारोगा से फिर मुलाकात करने की जरूरत थी मगर उसके घर में जाकर मुलाकात करने का इरादा न था क्योंकि मैं खूब समझता था कि वह 'दूध का जला छाछ फूंक के

पीता होगा' और मेरे लिए अपने घर में कुछ-न-कुछ बन्दोबस्त जरूर कर रक्खा होगा ! अगर अबकी दिलेरी के साथ उसके घर में जाऊँगा तो बेशक फँस जाऊँगा, इसलिए बाहर ही उससे मुलाकात करने का बन्दोबस्त करने लगा। खैर, इसी फेर में दस-बारह दिन बीत गए और इस बीच में मुलाकात करने का कोई अच्छा मौका न मिला। पता लगाने से मालूम हुआ कि वह बीमार है और घर से बाहर नहीं निकलता। यह बात मुझे मायाप्रसाद ने कही थी मगर मैंने मायाप्रसाद से इन्दिरा के बारे में कुछ भी नहीं कहा और न राजा साहब (गोपालसिंह की तरफ इशारा करके) ही से कुछ कहा, क्योंकि दारोगा को बेदाग छोड़ देने के लिए मेरे दोस्त इन्द्रदेव ने पहले ही से तय कर लिया था, अब अगर राजा साहब से मैं कुछ कहता तो दारोगा जरूर सजा पा जाता। लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि मायाप्रसाद और दारोगा को इस बात का पता क्योंकर लग गया कि इन्दिरा फलाँ जगह है। खैर, मुख्तसिर यह है कि एक दिन स्वयं मायाप्रसाद ने मुझसे कहा—"गदाधरसिंह, मैं तुम्हें इसकी इत्तिला देता हूँ कि सरयू निःसन्देह दारोगा की कैद में है मगर बीमार है, अगर तुम किसी तरह दारोगा के मकान में चले जाओ तो उसे जरूर अपनी आँखों से देख सकोगे। मेरी इस बात में तुम किसी तरह का शक न करो, मैं बहुत पक्की बात तुमसे कह रहा हूँ।" मायाप्रसाद की बात सुनकर मुझे एक दफे जोश चढ़ आया और मैं दारोगा के मकान में जाने के लिए तैयार भी हो गया। मैं क्या जानता था कि मायाप्रसाद दारोगा से मिला हुआ है। खैर, मैं अपनी हिफाजत के लिए कई तरह का बन्दोबस्त करके आधी रात के समय कमन्द के जरिये दारोगा के लम्बे-चौड़े और शैतान की आँत की सूरत वाले मकान में घुस गया और चोरों की तरह टोह लेता हुआ उस कमरे में जा पहुँचा जिसमें दारोगा एक गद्दी के ऊपर उदास बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। उस समय उसके बदन पर कई जगह पट्टी बँधी हुई थी जिससे वह चुटीला मालूम पड़ता था और उसके सिर का भी यही हाल था। दारोगा मुझे देखते ही चौंक उठा और आँखें चार होने के साथ ही मैंने उससे कहा, "दारोगा साहब, मैं आपके मकान में कैद होने के लिए नहीं आया हूँ बल्कि सरयू को देखने के लिए आया हूँ जिसके इस मकान में होने का पता मुझे लग चुका है। अतः इस समय मुझसे किसी तरह की बुराई करने की उम्मीद न रखिए क्योंकि मैं अगर आधे घंटे के अन्दर इस मकान के बाहर होकर अपने साथियों के पास न चला जाऊँगा तो उन्हें विश्वास हो जायगा कि गदाधर-सिंह फँस गया और तब वे लोग आपको हर तरह से बर्बाद कर डालेंगे, जिसका कि मैं पूरा-पूरा बन्दोबस्त कर आया हूँ।"

इतना सुनते ही दारोगा खड़ा हो गया और उसने हँस कर जवाब दिया, "मेरे लिए आपको इस कड़े प्रबन्ध की कोई आवश्यकता न थी और न मुझमें इतनी सामर्थ्य ही है कि आप जैसे ऐयार का मुकाबला करूँ, मैं तो खुद आपकी तलाश में ही था कि किसी तरह आपको पाऊँ और अपना कसूर माफ कराऊँ। मुझे तो विश्वास है कि जब आप मेरा एक बड़ा कसूर माफ कर चुके हैं तो इसको भी माफ कर देंगे। गुस्से को दूर कीजिए, मैं फिर भी आपके लिए हाजिर हूँ।"

मैं—(बैठकर और दारोगा को बैठा कर) कसूर माफ कर देने के लिए तो कोई

हर्ज नहीं है मगर आइन्दा के लिए कसूर न करने का वादा करके भी आपने मेरे साथ दगा की, इसका मुझे जरूर बड़ा रंज है !

दारोगा—(हाथ जोड़कर) खैर, जो हो गया सो हो गया, अब अगर फिर कोई कसूर मुझसे हो तो जो चाहे सजा दीजियेगा, मैं उफ भी न करूँगा ।

मैं—खैर, एक दफा और सही, मगर इस कसूर के लिए आपको कुछ जुर्माना जरूर देना पड़ेगा ।

दारोगा—यद्यपि आप मुझे पहले ही पूरी तरह कंगाल कर चुके हैं मगर फिर भी मैं आपकी आज्ञा-पालन के लिए हाजिर हूँ ।

मैं—दो हजार अशर्फी ।

दारोगा—(आलमारी में से एक थैली निकाल कर और मेरे सामने रखकर) बस, एक हजार अशर्फी को कबूल कीजिए और···

मैं—(मुस्कुराकर) मैं कबूल करता हूँ और अपनी तरफ से यह थैली आपको देकर इसके बदले में सरयू को माँगता हूँ जो इस समय आपके घर में है ।

दारोगा—बेशक सरयू मेरे घर में है और मैं उसे अभी आपके हवाले करूँगा मगर इस थैली को आप कबूल कर लीजिए, नहीं तो मैं समझूंगा कि आपने मेरा कसूर माफ नहीं किया ।

मैं—नहीं-नहीं, मैं कसम खाकर कहता हूँ कि मैंने आपका कसूर माफ कर दिया और खुशी से यह थैली आपको वापस करता हूँ, अब मुझे सिवाय सरयू के और कुछ नहीं चाहिए ।

हम दोनों में देर तक इसी तरह की बातें हुईं और और इसके बाद मेरी आखिरी बात सुनकर दारोगा उठ खड़ा हुआ और मेरा हाथ पकड़ दूसरे कमरे की तरफ यह कहता हुआ ले चला कि "आओ मैं तुमको सरयू के पास ले चलूं, मगर अफसोस की बात है कि इस समय वह हद दर्जे की बीमार हो रही है !' खैर, वह मुझे घुमाता-फिराता एक दूसरे कमरे में ले गया और वहाँ मैंने एक पलंग पर सरयू को बीमार पड़े देखा । एक मामूली चिराग उससे थोड़ी ही दूर पर जल रहा था । (लम्बी साँस लेकर) अफसोस, मैंने देखा कि बीमारी ने उसे आखिरी मंजिल के करीब पहुँचा दिया है और वह इतनी कमजोर हो रही है कि बात करना भी उसके लिए कठिन हो रहा है। मुझे देखते ही उसकी आँखें डबडबा आईं और मुझे भी रुलाई आने लगी । उस समय मैं उसके पास बैठ गया और अफसोस के साथ उसका मुँह देखने लगा । उस वक्त दो लौंडियाँ उसकी खिदमत के लिए हाजिर थीं जिनमें से एक ने आगे बढ़कर रूमाल से उसके आँसू पोंछे और पीछे हट गई ! मैंने अफसोस के साथ पूछा—"सरयू, यह तेरा क्या हाल है ?"

इसके जवाब में सरयू ने बहुत बारीक आवाज में रुककर कहा, "भैया, (क्योंकि वह प्रायः मुझे भैया कह कर ही पुकारा करती थी) मेरी बुरी अवस्था हो रही है । अब मेरे बचने की आशा न करनी चाहिए । यद्यपि दारोगा साहब ने मुझे कैद किया था मगर मैं इनका अहसान मानती हूँ कि इन्होंने मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं दी बल्कि इस बीमारी में मेरी बड़ी हिफाजत की, दवा इत्यादि का भी पूरा प्रबन्ध रखा, मगर यह न

बताया कि मुझे कैद क्यों किया था। खैर, जो भी हो, इस समय तो मैं आखिरी दम का इन्तजार कर रही हूँ और सब तरफ से मोह-माया को छोड़ ईश्वर से लौ लगाने का उद्योग कर रही हूँ। मैं समझ गई हूँ कि तुम मुझे लेने के लिए आये हो। मगर दया करके मुझे इसी जगह रहने दो और इधर-उधर कहीं मत ले जाओ, क्योंकि इस समय मैं किसी अपने को देख मायामोह में आत्मा को फंसाना नहीं चाहती और न गंगाजी का सम्बन्ध छोड़ कर दूसरी किसी जगह मरना ही पसन्द करती हूँ, यहाँ यों भी अगर गंगाजी में फेंक दी जाऊँगी, तो मेरी सद्गति हो जायगी, बस यही आखिरी प्रार्थना है। एक बात और भी है कि मेरे लिए दारोगा साहब को किसी तरह की तकलीफ न देना और ऐसा करना जिसमें इनकी जरा बेइज्जती न हो, यह मेरी वसीयत है और यही मेरी आरजू है। अब श्रीगंगाजी को छुड़ाकर मुझे नरक में मत डालो।" इतना कह सरयू कुछ देर को चुप हो गई और मुझे उसकी अवस्था पर रुलाई आने लगी। मैं और भी कुछ देर तक उसके पास बैठा रहा और धीरे-धीरे बातें भी होती रहीं। मगर जो कुछ उसने कहा उसका तत्त्व यही था कि मुझे यहाँ से मत हटाओ और दारोगा को कुछ तकलीफ मत दो। उस समय मेरे दिल में यही बात आई कि इन्द्रदेव को इस बात की इत्तिला दे देनी चाहिए। वह जैसी आज्ञा देंगे किया जायगा। मगर अपना यह विचार मैंने दारोगा से नहीं कहा क्योंकि उसे मैं इन्द्रदेव की तरफ से बेफिक्र कर चुका था और कह चुका था कि सरयू और इन्दिरा के साथ जो कुछ बर्ताव तुमने किया है, उसकी इत्तिला मैं इन्द्रदेव को न दूँगा, दूसरे को कसूरवार ठहराकर तुम्हारा नाम बचा जाऊँगा। अतः मैं सरयू से दूसरे दिन मिलने का वायदा करके वहाँ से उठा और अपने डेरे पर चला आया। यद्यपि रात बहुत कम बाकी रह गई थी, परन्तु मैंने उसी समय अपने एक खास आदमी को पत्र देकर इन्द्रदेव के पास रवाना कर दिया और ताकीद कर दी कि एक घोड़ा किराये का लेकर दौड़ा-दौड़ चला जाय और जहाँ तक हो सके पत्र का जवाब लेकर जल्द ही लौट आवे। दूसरे दिन आधी रात जाते-जाते तक वह आदमी लौट आया और उसने इन्द्रदेव का पत्र मेरे हाथ में दिया, लिफाफा खोल कर मैंने पढ़ा। उसमें यह लिखा हुआ था—

"तुम्हारा पत्र पढ़ने से कलेजा हिल गया। सच तो यह है कि दुनिया में मुझ-सा बदनसीब भी कोई न होगा! खैर, परमेश्वर की मर्जी ही ऐसी है तो मैं क्या कर सकता हूँ। दारोगा के बारे में मैंने जो प्रतिज्ञा तुमसे की है, उसे झूठ न होने दूँगा। मैं अपने कलेजे पर पत्थर रख कर सब कुछ सहूँगा। मगर वहाँ जाकर बेचारी सरयू को अपना मुँह न दिखाऊँगा और न दारोगा से मिलकर उसके दिल में किसी तरह का शक ही आने दूँगा। हाँ, अगर सरयू की जान बचती नजर आवे या इस बीमारी से बच जाय तो उसे जिस तरह मुनासिब समझना मेरे पास पहुँचा देना और अगर वह मर जाय तो मेरी जगह तुम बैठे ही हो, उसकी अन्त्येष्टि क्रिया अपनी हिम्मत के मुताबिक करके मेरे पास आना। मेरी तबीयत अब दुनिया से हट गई, बस, इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता। हाँ, यदि कुछ कहना होगा तो तुमसे मुलाकात होने पर कहूँगा। आगे जो ईश्वर की मर्जी!

तुम्हारा वही—इन्द्रदेव!"

इस चिट्ठी को पढ़कर मैं बहुत देर तक रोता और अफसोस करता रहा। इसके बाद उठकर दारोगा के मकान की तरफ रवाना हुआ। मगर आज भी अपने बचाव का पूरा-पूरा इन्तजाम करता गया। मुलाकात होने पर दारोगा ने कल से ज्यादा खातिर-दारी के साथ मुझे बैठाया और देर तक बातचीत करता रहा। मगर जब मैं सरयू के पास गया तो उसकी हालत कल से ज्यादा खराब देखने में आई, अर्थात् आज उसमें बोलने की भी ताकत न थी। मुख्तसिर यह है कि तीसरे दिन बेहोश और चौथे दिन आधी रात के समय मैंने सरयू को मुर्दा पाया। उस समय मेरी क्या हालत थी, सो मैं बयान नहीं कर सकता। अस्तु, उस समय जो कुछ करना उचित था और मैं कर सकता था, उसे सवेरा होने के पहले ही करके छुट्टी किया, अपने खयाल से सरयू के शरीर की दाह-क्रिया इत्यादि करके पंचतत्व में मिला दिया और इस बात की इत्तिला इन्द्रदेव को दे दी। इसके बाद इन्दिरा के लिए अपने अड्डे पर गया और वहाँ उसे न पाकर बड़ा ताज्जुब हुआ। पूछने पर मेरे आदमियों ने जवाब दिया कि "हम लोगों को कुछ भी खबर नहीं कि वह कब और कहाँ भाग गई।" इस बात से मुझे सन्तोष न हुआ। मैंने अपने आद-मियों को सख्त सजा दी और बराबर इन्दिरा का पता लगाता रहा। अब सरयू के मिल जाने से मालूम हुआ कि उस दिन मेरी कम्बख्त आँखों ने मेरे साथ दगा की और दारोगा के मकान में बीमार सरयू को मैं पहचान न सका। मेरी आँखों के सामने सरयू मर चुकी थी और मैंने खुद अपने हाथ से इन्द्रदेव को यह समाचार लिखा था, इसलिए उन्हें किसी तरह का शक न हुआ और सरयू तथा इन्दिरा के गम में ये दीवाने से हो गये, हर तरह के चैन और आराम को इन्होंने इस्तीफा दे दिया और उदासीन हो एक प्रकार से साधू ही बन बैठे। मुझसे भी मुहब्बत कम कर दी और शहर का रहना छोड़ अपने तिलिस्म के अन्दर चले गये और उसी में रहने लगे, मगर न मालूम क्या सोचकर इन्होंने मुझे वहाँ का रास्ता न बताया। मुझ पर भी इस मामले का बड़ा असर पड़ा क्योंकि ये सब बातें मेरी ही नालायकी के सबब से हुई थीं। अतएव मैंने उदासीन हो रणधीरसिंहजी की नौकरी छोड़ दी और अपने बाल-बच्चों तथा स्त्री को भी उन्हीं के यहाँ छोड़, बिना किसी को कुछ कहे जंगल और पहाड़ का रास्ता लिया। उधर एक और स्त्री से मैंने शादी कर ली थी जिससे नानक पैदा हुआ है। उधर भी कई ऐसे मामले हो गये जिनसे मैं बहुत उदास और परेशान हो रहा था, उसका हाल नानक की जुबानी तेजसिंह को मालूम ही हो चुका है। बल्कि आप लोगों ने भी तो सुना ही होगा। अस्तु, हर तरह से अपने को नालायक समझकर मैं निकल भागा और फिर मुद्दत तक अपना मुँह किसी को न दिखाया। इधर जब जमाने ने पलटा खाया तब मैं कमलिनीजी से जा मिला। उन दिनों मेरे दिल में विश्वास हो गया था कि इन्द्रदेव मुझसे रंज हैं। अतः मैंने इनसे भी मिलना-जुलना छोड़ दिया, बल्कि यों कहना चाहिए कि हमारी इतनी पुरानी दोस्ती का उन दिनों अन्त हो गया था।

इन्द्रदेव—बेशक, यही बात थी। स्त्री के मरने की खबर सुन कर मुझे बड़ा ही रंज हुआ। मुझे कुछ तो भूतनाथ की जुबानी और कुछ तहकीकात करने पर मालूम ही हो चुका था कि मेरी लड़की और स्त्री इसी की बदौलत जहन्नुम चली गईं। अस्तु,

मैंने भूतनाथ की दोस्ती को तिलांजलि दे दी और मिलना-जुलना बिल्कुल बन्द कर दिया मगर इससे कहा कुछ भी नहीं क्योंकि मैं अपनी जुबान से दारोगा को माफ कर चुका था। इसके अतिरिक्त इसने मुझ पर कुछ अहसान भी जरूर ही किये थे, उनका भी मुझे खयाल था। अस्तु मैंने कुछ कहा तो नहीं, मगर इसकी तरफ से दिल हटा लिया और फिर अपना कोई भेद भी इसको नहीं बताया। कभी-कभी इसके साथ इधर-उधर की मुलाकात हो जाती थी, क्योंकि इसे मैंने अपने मकान का तिलिस्मी रास्ता नहीं दिखाया था। अगर यह कभी मेरे मकान पर आया भी तो अपनी आँखों पर पट्टी बाँध कर। यही सबब था कि इसे लक्ष्मीदेवी का हाल मालूम न हुआ। लक्ष्मीदेवी के बारे में भी मैं इसे कसूरवार समझता था और मुझे यह भी विश्वास था कि यह अपना बहुत-सा भेद मुझसे छिपाता है और वास्तव में छिपाता भी था।

भूतनाथ—(इन्द्रदेव से) नहीं, सो बात तो नहीं है, मेरे कृपालु मित्र !

इन्द्रजीतसिंह—अगर यह बात नहीं है तो कलमदान, जिसे तुम आखिरी मर्तबे इन्दिरा के साथ दारोगा के यहाँ से उठा लाये और मुझे दे गये थे, मेरे यहाँ से कैसे गायब हो गया ?

भूतनाथ—(मुस्करा कर) आपके किस मकान में से वह कलमदान गायब हो गया था ?

इन्द्रजीतसिंह—काशीजी वाले मकान में से। उसी दिन तुम मुझसे मिलने के लिए वहाँ आये थे और उसी दिन वह कलमदान गायब हो गया।

भूतनाथ—ठीक है, तो उस कलमदान को चुराने वाला मैं नहीं हूँ, बल्कि मेरा लड़का नानक है। मैं तो यों भी अगर जरूरत होती तो आपसे वह कलमदान माँग सकता था। दारोगा की आज्ञानुसार लाड़िली ने रामभोली बनकर नानक को धोखा दिया और अ के यहाँ से कलमदान चुरवा मंगवाया।[1]

गोपालसिंह—हाँ ठीक है, इस बात को तो मैं भी सकारूँगा क्योंकि मुझे इसका असल हाल मालूम है। बेशक इसी ढंग से वह कलमदान वहाँ पहुँचा था और अन्त में बड़ी मुश्किल से वह उस समय मेरे हाथ लगा, जब मैं कृष्ण जिन्न बन कर रोहतासगढ़ पहुँचा था। नानक को विश्वास है कि लाड़िली ने रामभोली बनकर उसे धोखा दिया था, मगर वास्तव में ऐसा नहीं हुआ। वह एक दूसरी ही ऐयारा थी जो रामभोली बनी थी, लाड़िली ने तो केवल एक ही दिन या दो दिन रामभोली का रूप धरा था।

जीतसिंह—(राजा गोपालसिंह से) वह कलमदान आपको कहाँ से मिल गया ? दारोगा ने तो उसे बड़ी ही हिफाजत से रखा होगा !

गोपालसिंह—बेशक ऐसा ही है। मगर भूतनाथ की बदौलत वह मुझे सहज ही में मिल गया। ऐसी-ऐसी चीजों को दारोगा बहुत गुप्त रीति से अपने अजायबघर में रखता था, जिसकी ताली मायारानी से लेकर भूतनाथ ने मुझे दी थी। उस अजायबघर का भेद मेरे पिता और उस दारोगा के सिवाय कोई नहीं जानता था। मेरे पिता ही ने

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, चौथा भाग छठवाँ बयान।

दारोगा को वहाँ का मालिक बना दिया था। जब भूतनाथ ने उसकी ताली मुझे दी, तब मुझे भी वहाँ का पूरा-पूरा हाल मालूम हुआ।

जीतसिंह—(भूतनाथ से) खैर, यह बताओ कि मनोरमा और नागर का तुमसे क्या सम्बन्ध था ?

यह सवाल सुनकर भूतनाथ सन्न हो गया और सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। उस समय गोपालसिंह ने उसकी मदद की और जीतसिंह की तरफ देख कर कहा, "इस सवाल को छोड़ दीजिए, क्योंकि वह जमाना भूतनाथ का बहुत ही बुरा तथा ऐयाशी का था। इसके अतिरिक्त जिस तरह राजा वीरेन्द्रसिंहजी ने रोहतासगढ़ के तहखाने में भूतनाथ का कसूर माफ किया था, उसी तरह कमलिनी ने भी इसका वह कसूर कसम खिलाकर माफ किया और साथ ही उन ऐबों को छिपाने का बन्दोबस्त कर दिया है।"

इसके जवाब में जीतसिंह ने कहा, "खैर, जाने दो, देखा जायेगा।"

गोपालसिंह—जब से भूतनाथ ने कमलिनी का साथ किया है, तब से इसने (भूतनाथ ने) जो-जो काम किये हैं, उन पर ध्यान देने से आश्चर्य होता है। वास्तव में इसने ऐसे काम किये हैं, जिनकी ऐसे समय हमें सख्त जरूरत थी। मगर इसका लड़का नानक तो बिल्कुल ही बोदा और खुदगर्ज निकला। न तो कमलिनी के साथ मिल कर उसने कोई तारीफ का काम किया और न अपने बाप ही को किसी तरह की मदद दी।

भूतनाथ—बेशक ऐसा ही है, मैंने कई दफा उसे समझाया, मगर…

सुरेन्द्रसिंह—(गोपाल से) अच्छा, अजायबघर में क्या बात है जिससे ऐसा अनूठा नाम उसका रखा गया ? अब तो तुम्हें उसका पूरा-पूरा हाल मालूम हो ही गया होगा।

गोपालसिंह—जी हाँ। एक किताब है जिसे 'ताली' के नाम से सम्बोधित करते हैं। उसके पढ़ने से वहाँ का कुल हाल मालूम होता है। वह बड़ी हिफाजत और तमाशे की जगह थी और कुछ है भी, क्योंकि अब उसका काफी हिस्सा मायारानी की बदौलत बर्बाद हो गया।

जीतसिंह—उस किताब (ताली) की बदौलत मायारानी को भी वहाँ का हाल मालूम हो गया होगा ?

गोपालसिंह—कुछ-कुछ, क्योंकि उस किताब की भाषा वह अच्छी तरह समझ नहीं सकती थी। इसके अतिरिक्त उस अजायबघर का जमानिया के तिलिस्म से भी सम्बन्ध है। इसलिए कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को वहाँ का हाल मुझसे भी ज्यादा मालूम हुआ होगा।

जीतसिंह—ठीक है, (सुरेन्द्रसिंह की तरफ देख कर) आज यद्यपि बहुत-सी नई बातें मालूम हुई हैं। परन्तु फिर भी जब तक दोनों कुमार यहाँ न आ जायेंगे तब तक बहुत-सी बातों का पता न लगेगा।

सुरेन्द्रसिंह—सो तो होगा ही, परन्तु इस समय हम केवल भूतनाथ के मामले को तय करना चाहते हैं। जहाँ तक मालूम हुआ है भूतनाथ ने हम लोगों के साथ सिवाय भलाई के बुराई कुछ भी नहीं की। अगर उसने बुराई की तो इन्द्रदेव के साथ या कुछ गोपालसिंह के साथ, सो भी उस जमाने में जब इनसे और हमसे कुछ सम्बन्ध नहीं था।

आज ईश्वर की कृपा से ये लोग हमारे साथ हैं, बल्कि हमारे अंग हैं। इससे कहा भी जा सकता है कि भूतनाथ हमारा ही कसूरवार है। मगर फिर भी हम इसके कसूरों की माफी का अख्तियार इन्हीं दोनों अर्थात् गोपालसिंह और इन्द्रदेव को देते हैं। ये दोनों अगर भूतनाथ का कसूर माफ कर दें तो हम इस बात को खुशी से मंजूर कर लेंगे। हाँ, लोग यह कह सकते हैं कि इस माफी देने में बलभद्रसिंह को भी शरीक करना चाहिए था। मगर हम इस बात को जरूरी नहीं समझते, क्योंकि इस समय बलभद्रसिंह को कैद से छुड़ा कर भूतनाथ ने उन पर बल्कि सच तो ये है कि हम लोगों पर भी बहुत बड़ा अहसान किया है, इसलिए अगर बलभद्रसिंह को इससे कुछ रंज हो तो भी माफी देने में वे कुछ उज्र नहीं कर सकते।

गोपालसिंह—इसी तरह हम दोनों को भी माफी देने में किसी तरह का उज्र न होना चाहिए। इस समय भूतनाथ ने मेरी बहुत बड़ी मदद की है और मेरे साथ मिल कर ऐसे अनूठे काम किये हैं कि जिनकी तारीफ सहज में नहीं हो सकती। इस हमदर्दी और मदद के सामने उन कसूरों की कुछ भी हकीकत नहीं, अतः मैं इससे बहुत प्रसन्न हूँ और सच्चे दिल से इसे माफी देता हूँ।

इन्द्रदेव—माफी देनी ही चाहिए! जब आप माफी दे चुके तो मैं भी दे चुका! ईश्वर भूतनाथ पर कृपा करें, जिससे अपनी नेकनामी बढ़ाने का शौक इसके दिल में दिन-दिन तरक्की करता रहे। सच बात तो यह है कि कमलिनी की बदौलत इस समय हम लोगों को यह शुभ दिन देखने में आया और जब कमलिनी ने इससे प्रसन्न हो इसके कसूर माफ कर दिए तो हम लोगों को बाल-बराबर भी उज्र नहीं हो सकता।

जीतसिंह—बेशक, बेशक!

सुरेन्द्रसिंह—इसमें कुछ भी शक नहीं! (भूतनाथ की तरफ देख कर) अच्छा, भूतनाथ, तुम्हारा सब कसूर माफ किया जाता है। इन दिनों हम लोगों के साथ तुमने जो-जो नेकियाँ की हैं उनके बदले में हम तुम पर भरोसा करके तुम्हें अपना ऐयार बनाते हैं।

इतना कहकर सुरेन्द्रसिंह उठ बैठे और अपने सिरहाने के नीचे से अपना खास बेशकीमत खंजर निकालकर भूतनाथ की तरफ बढ़ाया। भूतनाथ खड़ा हो गया और झुककर सलाम करने के बाद खंजर ले लिया और इसके बाद जीतसिंह, गोपालसिंह और इन्द्रदेव को भी सलाम किया। जीतसिंह ने अपना खास ऐयारी का बटुआ भूतनाथ को दिया। गोपालसिंह ने वह तिलिस्मी तमंचा, जिससे आखिरी वक्त मायारानी ने काम लिया था और जो इस समय उनके पास था, गोली बनाने की तरकीब सहित भूतनाथ को दिया और इन्द्रदेव ने यह कहकर उसे गले से लगा लिया कि "मुझ फकीर के पास इससे बढ़कर और कोई चीज नहीं है कि मैं फिर तुम्हें अपना भाई बना कर ईश्वर से प्रार्थना करूँ कि अब इस नाते में किसी तरह का फर्क न पड़ने पावे।"

इसके बाद दोनों आदमी अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये और भूतनाथ ने हाथ जोड़कर सुरेन्द्रसिंह से कहा, "आज मैं समझता हूँ कि मुझ-सा खुशनसीब इस दुनिया में दूसरा कोई भी नहीं है। बदनसीबी के चक्कर में पड़कर मैं वर्षों परेशान रहा, तरह-तरह की तकलीफें उठाईं, पहाड़-पहाड़ और जंगल-जंगल मारा फिरा, साथ ही इसके पैदा भी

बहुत किया और बिगाड़ा भी बहुत, परन्तु सच्चा सुख नाम मात्र के लिए एक दिन भी न मिला और न किसी को मुँह दिखाने की अभिलाषा ही रह गई। अन्त में न मालूम किस जन्म का पुण्य सहायक हुआ जिसने मेरे रास्ते को बदल दिया और जिसकी बदौलत आज मैं इस दर्जे को पहुँचा। अब मुझे किसी बात की परवाह न रही। आज तक जो मुझसे दुश्मनी रखते थे, कल से वे मेरी खुशामद करेंगे, क्योंकि दुनिया का कायदा ही ऐसा है। महाराज इस बात का भी निश्चय रखें कि उस पीतल की सन्दूकड़ी से महाराज या महाराज के पक्षपातियों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, जो नकली बलभद्रसिंह की गठरी में से निकली है और जिसके बयान ही से मेरे रोंगटे खड़े होते हैं। मैं उस भेद को भी महाराज से छिपाना नहीं चाहता, हाँ, यह अच्छा है कि सर्वसाधारण में वह भेद न फैलने पाये। मैंने उसका कुछ हाल देवीसिंह से कह दिया है, आशा है कि वे महाराज से जरूर अर्ज करेंगे।

जीतसिंह—खैर, उसके लिए तुम चिन्ता न करो, जैसा होगा देखा जायेगा। अब अपने डेरे पर जाकर आराम करो, महाराज भी आज रात भर जागते ही रहे हैं।

गोपालसिंह—जी हाँ, अब तो नाममात्र को रात बच गई होगी।

इतना कहकर राजा गोपालसिंह उठ खड़े हुए और सबको साथ लिए हुए कमरे के बाहर चले गये।

3

इस समय रात बहुत कम बाकी थी और सुबह की सफेदी आसमान पर फैलना ही चाहती थी। और लोग तो अपने-अपने ठिकाने चले गए और दोनों नकाबपोशों ने भी अपने घर का रास्ता लिया, मगर भूतनाथ सीधे देवीसिंह के डेरे पर चला गया। दरवाजे पर ही पहरेवाले की जुबानी मालूम हुआ कि वे सोये हैं परन्तु देवीसिंह को न मालूम किस तरह भूतनाथ के आने की आहट मिल गई (शायद जागते हों)अतः वे तुरन्त बाहर निकल आए और भूतनाथ का हाथ पकड़कर कमरे के अन्दर ले गए। इस समय वहाँ केवल एक शमादान की मद्धिम रोशनी हो रही थी, दोनों आदमी फर्श पर बैठ गए और यों बातचीत होने लगी—

देवीसिंह—कहो, इस समय तुम्हारा आना कैसे हुआ? क्या कोई नई बात हुई?

भूतनाथ—बेशक नई बात हुई और वह इतनी खुशी की हुई है जिसके योग्य मैं नहीं था।

देवीसिंह—(ताज्जुब से) वह क्या?

भूतनाथ—आज महाराज ने मुझे अपना ऐयार बना लिया और इस इज्जत के लिए मुझे अपना खंजर भी बख्शा है।

इतना कहकर भूतनाथ ने महाराज का दिया हुआ खंजर और जीतसिंह तथा गोपालसिंह का दिया हुआ बटुआ और तमंचा देवीसिंह को दिखाया और कहा, "इसी

बात की मुबारकबाद देने के लिए मैं आया हूँ कि तुम्हारा एक नालायक दोस्त इस दर्जे को पहुँच गया।"

देवीसिंह—(प्रसन्न होकर और भूतनाथ को गले से लगाकर) बेशक यह बड़ी खुशी की बात है, ऐसी अवस्था में तुम्हें अपने पुराने मालिक रणधीरसिंह को भी सलाम करने के लिए जाना चाहिए।

भूतनाथ—जरूर जाऊँगा!

देवीसिंह—यह कार्रवाई कब हुई?

भूतनाथ—अभी थोड़ी ही देर पहले हुई। मैं इस समय महाराज के पास से ही चला आ रहा हूँ।

इतना कहकर भूतनाथ ने आज की रात का कुल हाल देवीसिंह से बयान किया। इसके बाद भूतनाथ और देवीसिंह में देर तक बातचीत होती रही, और जब दिन अच्छी तरह निकल आया, तब दोनों ऐयार वहाँ से उठे और स्नान-संध्या की फिक्र में लगे।

जरूरी कामों से निश्चिन्ती पा और स्नान-पूजा से निवृत्त होकर भूतनाथ अपने पुराने मालिक रणधीरसिंह के पास चला गया। बेशक उसके दिल में इस बात का खुटका लगा हुआ था कि उसका पुराना मालिक उसे देखकर प्रसन्न न होगा, बल्कि सामना होने पर भी कुछ देर तक उसके दिल में इस बात का गुमान बना रहा, मगर जिस समय भूतनाथ ने अपना खुलासा हाल बयान किया, उस समय बहुत परेशान रणधीरसिंह को और प्रसन्न पाया। रणधीरसिंह ने उसको खिलअत और इनाम भी दिया और बहुत देर तक उससे तरह-तरह की बातें करते रहे।

4

यह बात तो तय पा चुकी थी कि सब कामों के पहले कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की शादी हो जानी चाहिए, अतः इसी खयाल से जीतसिंह शादी के इन्तजाम में जी-जान से कोशिश कर रहे हैं और इस बात की खबर पाकर सभी प्रसन्न हो रहे हैं कि आज दोनों कुमार आ जायेंगे और शीघ्र ही उनकी शादी भी हो जायेगी। महाराज की आज्ञानुसार जीतसिंह मुलाकात करने के बाद इस बात का फैसला भी कर आये कि किशोरी के साथ-ही-साथ कामिनी का भी कन्यादान रणधीरसिंह ही करेंगे। साथ ही इसके रणधीरसिंह की यह बात भी जीतसिंह ने मंजूर कर ली कि इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के आने के पहले किशोरी और कामिनी उनके (रणधीरसिंह के) खेमे में पहुँचा दी जायेंगी। आखिर ऐसा ही हुआ अर्थात् किशोरी और कामिनी बड़ी हिफाजत के साथ रणधीरसिंह के खेमे में पहुँचा दी गईं और बहुत से फौजी सिपाहियों के साथ पन्नालाल, रामनारायण, चुन्नीलाल और पण्डित बद्रीनाथ ऐयार खास उनकी हिफाजत के लिए छोड़ दिए गए।

आज कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के आने की उम्मीद में लोग खुशी-खुशी तरह-तरह के चर्चे कर रहे हैं। आज ही के दिन आने के लिए दोनों कुमारों ने चिट्ठी लिखी थी, इसलिए आज उनके दादा-दादी, माँ-बाप, दोस्तों और प्रेमियों को भी उम्मीद हो रही है कि उनकी तरसती हुई आँखें ठण्डी होंगी, और जुदाई के सदमों से मुरझाया हुआ दिल हरा होगा। अलहकार और खैरख्वाह लोग जरूरी कामों को भी छोड़कर तिलिस्मी इमारत में इकट्ठे हो रहे हैं। इसी तरह हर एक अदना और आला दोनों कुमारों के आने की उम्मीद में खुश हो रहा है। गरीबों और मोहताजों की खुशी का तो कोई ठिकाना ही नहीं, उन्हें इस बात का पूरा विश्वास हो रहा है कि अब उनका दारिद्र्य दूर हो जायगा!

दो पहर दिन ढलने के बाद दोनों नकाबपोश भी आकर हाजिर हो गए हैं, केवल वे ही नहीं, बल्कि उनके साथ और भी कई नकाबपोश हैं, जिनके बारे में लोग तरह-तरह के चर्चे कर रहे हैं और साथ ही यह भी कह रहे हैं कि "जिस समय ये नकाबपोश लोग अपने चेहरों से नकाबें हटायेंगे, उस समय जरूर कोई-न-कोई अनूठी घटना देखने-सुनने में आयेगी।"

नकाबपोशों की जुबानी यह तो मालूम हो ही चुका था कि दोनों कुमार उसी पत्थर वाले तिलिस्मी चबूतरे के अन्दर से प्रकट होंगे जिस पर पत्थर का आदमी सोया हुआ है, इसलिए इस समय महाराज, राजासाहब और सलाहकार लोग उसी दालान में इकट्ठे हो रहे हैं, और वह दालान भी सज-सजाकर लोगों के बैठने के लायक बना दिया गया है।

तीन पहर दिन बीत जाने पर तिलिस्मी चबूतरे के अन्दर से कुछ विचित्र ही ढंग के बाजे की आवाज आने लगी जोकि भारी मगर सुरीली थी और जिसके सबब से लोगों का ध्यान उसकी तरफ खिंचा। महाराज सुरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह, जीतसिंह, तेजसिंह और गोपालसिंह तथा दोनों नकाबपोश उठकर उस चबूतरे के पास गये। ये लोग बड़े गौर से उस चबूतरे की अवस्था पर ध्यान देते रहे, क्योंकि इस बात का पूरा गुमान था कि पहले की तरह आज भी उस चबूतरे का अगला हिस्सा किवाड़ के पल्ले की तरह खुलकर जमीन के साथ लग जायेगा। आखिर ऐसा ही हुआ अर्थात् जिस तरह बलभद्रसिंह के आने और जाने के वक्त उस चबूतरे का अगला हिस्सा खुल गया था, उसी तरह इस समय भी वह किवाड़ के पल्ले की तरह धीरे-धीरे खुलकर जमीन के साथ लग गया और उसके अन्दर से कुँअर इन्द्रजीतसिंह तथा आनन्दसिंह बाहर निकलकर महाराज सुरेन्द्रसिंह के पैरों पर गिर पड़े। उन्होंने बड़े प्रेम से उठाकर छाती से लगा लिया। इसके बाद दोनों कुमारों ने अपने पिता के चरण छूए, फिर जीतसिंहजी और तेजसिंह को प्रणाम करने के बाद राजा गोपालसिंह से मिले। इसके बाद नकाबपोशों, ऐयारों व दोस्तों से भी मुलाकात की।

बन्दोबस्त पहले से हो चुका था और इशारा भी बँधा हुआ था, अतएव जिस समय दोनों कुमार महाराज के चरणों पर गिरे उसी समय फाटक पर से बाजों की आवाज आने लगी जिससे बाहर वालों को भी मालूम हो गया कि कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह आ गये।

इस समय की खुशी का हाल लिखना हमारी ताकतसे बाहर है। हाँ, इसका

अन्दाज पाठक स्वयं कर सकते हैं कि जब दोनों कुमार मिलने के लिए महल के अन्दर गए तो औरतों में खुशी का दरिया कितने जोश के साथ उमड़ा होगा। महल के अन्दर दोनों कुमारों का इन्तजार बनिस्बत बाहर से ज्यादा होगा, यह सोचकर ही महाराज ने दोनों कुमारों को ज्यादा देर तक बाहर रोकना मुनासिब न समझकर शीघ्र ही महल में जाने की आज्ञा दी, और दोनों कुमार भी खुशी-खुशी महल के अन्दर जाकर सबसे मिले। उनकी माँ और दादी की बढ़ती हुई खुशी का तो आज अन्दाज करना ही कठिन है, जिन्होंने लड़कों की जुदाई तथा रंज और नाउम्मीदी के साथ-ही-साथ तरह-तरह की खबरों से पहुँची हुई चोटों को अपने नाजुक कलेजों पर झेलकर और देवताओं की मिन्नतें मान-मानकर आज का दिन देखने के लिए अपनी नन्हीं-सी जान को बचाकर रखा था। अगर उन्हें समय और नीति पर विशेष ध्वान न रहता तो आज घण्टों तक अपने बच्चों को कलेजे से अलग करके बातचीत करने और महल के बाहर जाने का मौका न देतीं।

दोनों कुमार खुशी-खुशी सबसे मिले। एक-एक करके सबसे कुशल-मंगल पूछा, कमलिनी और लाड़िली से भी चार आँखें हुईं, मगर वहाँ किशोरी और कामिनी की सूरत दिखाई न पड़ी, जिनके बारे में सुन चुके थे कि महल के अन्दर पहुँच चुकी हैं। इस सबब से उनके दिल को जो कुछ तकलीफ हुई उसका अन्दाज औरों को तो नहीं, मगर कुछ-कुछ कमलिनी और लाड़िली को मिल गया और उन्होंने बात-ही-बात में इस भेद को खुलवाकर कुमारों की तसल्ली करवा दी।

थोड़ी देर तक दोनों भाई महल के अन्दर रहे, और इस बीच में बाहर से कई दफे तलबी का सन्देश पहुँचा, अतः पुनः मिलने का वादा करके वहाँ से उठकर वह बाहर की तरफ रवाना हुए और उस आलीशान कमरे में पहुँचे, जिसमें कई खास-खास आदमियों और आपस वालों के साथ महाराज सुरेन्द्रसिंह और वीरेन्द्रसिंह उनका इन्तजार कर रहे थे। इस समय इस कमरे में यद्यपि राजा गोपालसिंह, नकाबपोश लोग, जीतसिंह, तेजसिंह, भूतनाथ और ऐयार लोग भी उपस्थित थे, मगर कोई आदमी ऐसा न था, जिसके सामने भेद की बातें करने में किसी तरह का संकोच हो। दोनों कुमार इशारा पाकर अपने दादा साहब के बगल में बैठ गए और धीरे-धीरे बातचीत होने लगी।

सुरेन्द्रसिह—(दोनों कुमारों की तरफ देखकर) भैरोंसिह और तारासिंह तुम्हारे पास गये थे, उन दोनों को कहाँ छोड़ा ?

इन्द्रजीतसिंह—(मुस्कराते हुए) जी वे दोनों तो हम लोगों के आने से पहले ही से हजूर में हाजिर हैं!

सुरेन्द्रसिह—(ताज्जुब से चारों तरफ देखकर) कहाँ ?

महाराज के साथ-ही-साथ और लोगों ने भी ताज्जुब के साथ एक-दूसरे पर निगाह डाली।

इन्द्रजीतसिह—(दोनों सरदार नकाबपोशों की तरफ बताकर जिनके साथ और भी कई नकाबपोश थे) रामसिंह और लक्ष्मणसिंह का काम आज वे ही दोनों पूरा कर रहे हैं।

इतना सुनते ही दोनों नकाबपोशों ने अपने-अपने चेहरे पर से नकाबें हटा दीं,

और उनके बदले में भैरोंसिंह तथा तारासिंह दिखाई देने लगे। इस जादू के से मामले को देखकर सबकी विचित्र अवस्था हो गई और सब ताज्जुब में आकर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। भूतनाथ और देवीसिंह की तो और ही अवस्था हो रही थी। बड़े जोरों के साथ कलेजा उछलने लगा और वे कुछ बातें उन्हें याद आ गईं जो नकाबपोशों के मकान में जाकर देखी-सुनी थीं और वे दोनों ही ताज्जुब के साथ गौर करने लगे।

सुरेन्द्रसिंह—(दोनों कुमारों से) जब भैरोंसिंह और तारासिंह तुम्हारे पास नहीं गये और यहाँ मौजूद थे, तब भी तो रामसिंह और लक्ष्मणसिंह कई दफे आये थे, उस समय इस विचित्र पर्दे (नकाब)के अन्दर कौन छिपा हुआ था ?

इन्द्रजीतसिंह—(और सब नकाबपोशों की तरफ बताकर) कई दफे इन लोगों में से बारी-बारी से समयानुसार और कई दफे स्वयं हम दोनों भाई इसी पोशाक और नकाब को पहनकर हाजिर हुए थे।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह की इस बात ने इन लोगों को और भी ताज्जुब में डाल दिया और सब कोई हैरानी के साथ उनकी तरफ देखने लगे। भूतनाथ और देवीसिंह की तो बात ही निराली थी, इनको तो विश्वास हो गया कि नकाबपोशों की टोह में जिस मकान के अन्दर हम लोग गए थे, उस मालिक ये ही दोनों हैं, इन्हीं दोनों की मर्जी से हम लोग गिरफ्तार हुए थे, और इन्हीं दोनों के सामने पेश किए गए थे। देवीसिंह यद्यपि अपने दिल को बार-बार समझा-बुझाकर सम्हालते थे, मगर इस बात का खयाल हो ही जाता था कि अपने ही लोगों ने मेरी बेइज्जती की, और मेरे ही लड़के ने इस काम में शरीक होकर मेरे साथ दगा की। मगर देखना चाहिए, इन सब बातों का भेद, सबब और नतीजा क्या खुलता है।

भूतनाथ इस सोच में घड़ी-घड़ी सिर झुका लेता था कि मेरे पुराने ऐब, जिन्हें मैं बड़ी कोशिश से छिपा रहा था, अब छिपे न रहे, क्योंकि इन नकाबपोशों को मेरा रत्ती-रत्ती हाल मालूम है, और दोनों कुमार इन सबके मालिक और मुखिया हैं, अतः इनसे कोई बात छिपी न रह गई होगी। इसके अतिरिक्त मैं अपनी आँखों से देख चुका हूँ, कि मुझसे बदला लेने की नीयत रखने वाला मेरा दुश्मन उस विचित्र तस्वीर को लिए हुए इनके सामने हाजिर हुआ था और मेरा लड़का हरनामसिंह भी वहाँ मौजूद था। यद्यपि इस बात की आशा नहीं हो सकती कि ये दोनों कुमार मुझे जलील और बे-आबरू करेंगे, मगर फिर भी शर्मिन्दगी मेरा पल्ला नहीं छोड़ती। इत्तिफाक की बात है कि जिस तरह मेरी स्त्री और लड़के ने इस मामले में शरीक होकर मुझे छकाया है, उसी तरह देवीसिंह की स्त्री-लड़के ने उनके दिल में भी चुटकी ली है।

देवीसिंह और भूतनाथ की तरह हमारे और ऐयारों के दिलों में भी करीब-करीब इसी ढंग की बातें पैदा हो रही थीं, और इन सब भेदों को जानने के लिए वे बनिस्बत पहले के अब और ज्यादा बेचैन हो रहे थे, तथा यही हाल हमारे महाराज सुरेन्द्रसिंह और गोपालसिंह वगैरह का भी था।

कुछ देर तक ताज्जुब के साथ सन्नाटा रहा, और इसके बाद पुनः महाराज ने दोनों कुमारों की तरफ देखकर कहा—

सुरेन्द्रसिंह—ताज्जुब की बात है कि तुम दोनों भाई यहाँ आकर भी अपने को छिपाये रहे !

इन्द्रजीतसिंह—(हाथ जोड़कर) मैं यहाँ हाजिर होकर पहले ही अर्ज कर चुका था कि "हम लोगों का भेद जानने के लिए उद्योग न किया जाये, हम लोग मौका पाकर स्वयं अपने को प्रकट कर देंगे।" इसके अतिरिक्त तिलिस्मी नियमों के अनुसार तब तक हम दोनों भाई प्रकट नहीं हो सकते थे, जब तक कि अपना सारा काम पूरा करके इसी तिलिस्मी चबूतरे की राह से तिलिस्म के बाहर नहीं निकल आते। साथ ही इसके हम लोगों की यह भी इच्छा थी कि जब तक निश्चिन्त होकर खुले तौर पर यहाँ न आ जायें, तब तक कैदियों के मुकदमे का फैसला न होने पाये, क्योंकि इस तिलिस्म के अन्दर जाने के बाद हम लोगों को बहुत से नए-नए भेद मालूम हुए हैं जो(नकाबपोशों की तरफ इशारा करके)इन लोगों से सम्बन्ध रखते हैं, और जिनका आपसे अर्ज करना बहुत जरूरी था।

सुरेन्द्रसिंह—(मुस्कराते हुए और नकाबपोशों की तरफ देखकर) अब तो इन लोगों को भी अपने चेहरों से नकाबें उतार देनी चाहिए। हम समझते हैं इस समय इन लोगों का चेहरा साफ होगा।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह का इशारा पाकर उन नकाबपोशों ने भी अपने-अपने चेहरे से नकाबें हटा दीं, और खड़े होकर अदब के साथ महाराज को सलाम किया। ये नकाबपोश गिनती में पाँच थे और इन्हीं पाँचों में इस समय वे दोनों सूरतें भी दिखाई पड़ीं, जो यहाँ दरबार में पहले दिखाई पड़ चुकी थी, या जिन्हें देखकर दारोगा और बेगम के छक्के छूट गए थे।

अब सबका ध्यान उन पाँचों नकाबपोशों की तरफ खिंच गया, जिनका असल हाल जानने के लिए लोग पहले ही से बेचैन हो रहे थे, क्योंकि इन्होंने कैदियों के मामले में कुछ विचित्र ढंग की कैफियत और उलझन पैदा कर दी थी। यद्यपि कह सकते हैं कि यहाँ पर इन पाँचों को पहचानने वाला कोई न था, मगर भूतनाथ और राजा गोपालसिंह बड़े गौर से उनकी तरफ देखकर अपने हाफजे(स्मरणशक्ति)पर जोर दे रहे थे, और उम्मीद करते थे कि इन्हें हम पहचान लेंगे।

सुरेन्द्रसिंह—(गोपालसिंह की तरफ देखकर)केवल हम लोग नहीं बल्कि हजारों आदमी इनका हाल जानने के लिए बेताब हो रहे हैं, अतः ऐसा करना चाहिए कि एक साथ ही इनका हाल मालूम हो जाये।

गोपालसिंह—मेरी भी यही राय है।

एक नकाबपोश—कैदियों के सामने ही हम लोगों का किस्सा सुना जाये तो ठीक है, क्योंकि ऐसा होने ही से महाराज का विचार पूरा होगा। इसके अतिरिक्त हम लोगों के किस्से में वही कैदी हामी भरेंगे, और कई अधूरी बातों को पूरा करके महाराज का शक दूर करेंगे, जिन्हें हम लोग भी नहीं जानते, और जिनके लिए महाराज भी उत्सुक होंगे।

इन्द्रजीतसिंह—(सुरेन्द्रसिंह से) बेशक ऐसा ही है। यद्यपि हम दोनों भाई इन लोगों का किस्सा सुन चुके हैं, मगर कई भेदों का पता नहीं लगा, जिनके जाने बिना जी

बेचैन हो रहा है, और उनका मालूम होना कैदियों की इच्छा पर निर्भर है।

सुरेन्द्रसिंह—(कुछ सोचकर) खैर, ऐसा ही किया जायेगा।

इसके बाद उन लोगों में दूसरे तरह की बातचीत होने लगी, जिसके लिखने की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इसके घण्टे भर बाद यह दरबार बर्खास्त हुआ और सब कोई अपने-अपने स्थान पर चले गए।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह का दिल किशोरी को देखने के लिए बेताब हो रहा था। उन्हें विश्वास था कि यहाँ पहुँचकर उससे अच्छी तरह मुलाकात होगी और बहुत दिनों का अरमान-भरा दिल उसकी सोहबत से तस्कीन पाकर पुनः उसके कब्जे में आ जायेगा मगर ऐसा नहीं हुआ अर्थात् कुमार के आने से पहले ही वह अपने नाना के डेरे में भेज दी गई, और उनका अरमान-भरा दिल उसी तरह तड़पता रह गया। यद्यपि उन्हें इस बात का भी विश्वास था कि अब उनकी शादी किशोरी के साथ बहुत जल्द होने वाली है, मगर फिर भी उनका मनचला दिल जिसे उनके कब्जे के बाहर हुए मुद्दत हो चुकी थी, इन चापलूसियों को कब मानता था! इसी तरह कमलिनी से भी मीठी-मीठी बातें करने के लिए वे कम बेताब न थे, मगर बड़ों का लिहाज उन्हें इस बात की इजाजत नहीं देता था कि उससे एकान्त में मुलाकात करें, यद्यपि वे ऐसा करते तो कोई हर्ज की बात न थी। मगर इसलिए कि उसके साथ भी शादी होने की उम्मीद थी, शर्म और लिहाज के फेर में पड़े हुए थे। परन्तु कमलिनी को इस बात का सोच-विचार कुछ भी न था। हम इसका सबब भी बयान नहीं कर सकते, हाँ, इतना कहेंगे कि जिस कमरे में कुँअर इन्द्रजीतसिंह का डेरा था उसी के पीछे वाले कमरे में कमलिनी का डेरा था, और उस कमरे से कुँअर इन्द्रजीतसिंह के कमरे के आने-जाने के लिए एक छोटा-सा दरवाजा भी था जो इस समय भीतर की तरफ से अर्थात् कमलिनी की तरफ से बन्द था और कुमार को इस बात की कुछ भी खबर न थी।

रात पहर भर से ज्यादा जा चुकी थी। कुँअर इन्द्रजीतसिंह अपने पलंग पर लेटे हुए किशोरी और कमलिनी के विषय में तरह-तरह की बातें सोच रहे थे। उनके पास कोई दूसरा आदमी न था और एक तरह पर सन्नाटा छाया हुआ था, यकायक पीछे वाले कमरे का (जिसमें कमलिनी का डेरा था) दरवाजा खुला और अन्दर से एक लौंडी आती हुई दिखाई पड़ी।

कुमार ने चौंककर उसकी तरफ देखा और उसने हाथ जोड़कर अर्ज किया, "कमलिनीजी आपसे मिलना चाहती हैं, आज्ञा हो तो स्वयं यहाँ आवें या आप ही वहाँ तक चलें।"

कुमार—वे कहाँ हैं?

लौंडी—(पिछले कमरे की तरफ बताकर) इसी कमरे में तो उनका डेरा है।

कुमार—(ताज्जुब से) इसी कमरे में! मुझे इस बात की कुछ भी खबर न थी। अच्छा मैं स्वयं चलता हूँ, तू इस कमरे का दरवाजा बन्द कर दे।

आज्ञा पाते ही लौंडी ने कुमार के कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया जिसमें बाहर से कोई यकायक आ न जाय। इसके बाद इशारा पाकर लौंडी कमलिनी के कमरे

की तरफ रवाना हुई और कुमार उसके पीछे-पीछे चले। चौखट के अन्दर पैर रखते ही कुमार की निगाह कमलिनी पर पड़ी और वे भौचक्के से होकर उसकी सूरत देखने लगे।

इस समय कमलिनी की सुन्दरता बनिस्बत पहले के बहुत ही बढ़ी-चढ़ी देखने में आई। पहले जिन दिनों कुमार ने कमलिनी की सूरत देखी थी, उन दिनों वह बिल्कुल उदासीन और मामूली ढंग पर रहा करती थी। मायारानी के झगड़े की बदौलत उसकी जान जोखिम में पड़ी हुई थी और इस कारण से दिमाग को एक पल के लिए भी छुट्टी नहीं मिलती थी। इन्हीं सब कारणों से उसके शरीर और चेहरे की रौनक में भी बहुत बड़ा फर्क पड़ गया था, तिस पर भी वह कुमार की सच्ची निगाह में एक ही दिखाई देती थी। फिर आज उसकी खुशी और खूबसूरती का क्या कहना है जब कि ईश्वर की कृपा से वह अपने तमाम दुश्मनों पर फतह पा चुकी है, तरद्दुदों के बोझ से हलकी हो चुकी है और मनमानी उम्मीदों के साथ अपने को बनाने-सँवारने का भी मुनासिब मौका उसे मिल गया है! यही सबब है कि इस समय वह रानियों की सी पोशाक और सजावट में दिखाई देती है।

कमलिनी की इस समय की खूबसूरती ने कुमार पर बहुत बड़ा असर किया और बनिस्बत पहले के इस समय बहुत ज्यादा कुमार के दिल पर अपना अधिकार जमा लिया, कुमार को देखते ही कमलिनी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कुमार ने आगे बढ़कर बड़े प्रेम से उसका हाथ पकड़कर पूछा, "कहो, अच्छी तो हो?"

"अब भी अच्छी न होऊँगी!" कहकर मुस्कुराती हुई कमलिनी ने कुमार को ले जाकर एक ऊँची गद्दी पर बैठाया और आप भी उनके पास बैठकर यों बातचीत करने लगी।

कमलिनी—कहिये, तिलिस्म के अन्दर आपको किसी तरह की तकलीफ तो नहीं हुई?

इन्द्रजीतसिंह—ईश्वर की कृपा से हम लोग कुशलपूर्वक यहाँ तक चले आये और अब तुम्हें धन्यवाद देते हैं, क्योंकि यह सब बातें हमें तुम्हारी ही बदौलत नसीब हुई हैं। अगर तुम मदद न करतीं तो न मालूम हम लोगों की क्या दशा होती! हमारे साथ तुमने जो कुछ उपकार किया है, उसका बदला चुकाना मेरी सामर्थ्य के बाहर है, सिवाय इसके मैं क्या कह सकता हूँ कि मेरी (अपनी छाती पर हाथ रख के) यह जान और शरीर तुम्हारा है।

कमलिनी—(मुस्कुरा कर) अब कृपा कर इन सब बातों को तो रहने दीजिए, क्योंकि इस समय मैंने इसलिए आपको तकलीफ नहीं दी है कि अपनी बढ़ाई सुनूँ या आप पर अपना अधिकार जमाऊँ।

इन्द्रजीतसिंह—अधिकार तो तुमने उसी दिन मुझ पर जमा लिया जिस दिन ऐयार के हाथ से मेरी जान बचाई और मुझसे तलवार की लड़ाई लड़कर यह भी दिखा दिया कि मैं तुमसे ताकत में कम नहीं हूँ।

कमलिनी—(हँसकर) क्या खूब! मैं और आपका मुकाबला करूँ! आपने मुझे भी क्या कोई पहलवान समझ लिया है?

इन्द्रजीतसिंह—आखिर बात क्या थी जो उस दिन मैं तुमसे हार गया था ?

कमलिनी—आपको उस बेहोशी की दवा ने कमजोर और खराब कर दिया था जो एक अनाड़ी ऐयार की बनाई हुई थी। उस समय केवल आपको चैतन्य करने के लिए मैं लड़ पड़ी थी, नहीं तो कहाँ मैं और कहाँ आप !

इन्द्रजीतसिंह—खैर, ऐसा ही होगा। मगर इसमें तो कोई शक नहीं कि तुमने मेरी जान बचाई, केवल उसी दफे नहीं बल्कि उसके बाद भी कई दफे।

कमलिनी—छोड़िए भी, अब इन सब बातों को जाने दीजिये, मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती। हाँ, यह बतलाइये कि तिलिस्म के अन्दर आपने क्या-क्या देखा, और क्या-क्या किया ?

इन्द्रजीतसिंह—मैं सब हाल तुमसे कहूँगा, बल्कि उन नकाबपोशों की कैफियत भी तुमसे बयान करूँगा जो मुझे तिलिस्म के अन्दर कैद मिले और जिनका हाल अभी तक मैंने किसी से बयान नहीं किया। मगर तुम यह सब हाल अपनी जुबान से किसी से न कहना।

कमलिनी—बहुत खूब।

इसके बाद कुंअर इन्द्रजीतसिंह ने अपना कुल हाल कमलिनी से बयान किया और कमलिनी ने भी अपना पिछला किस्सा और उसी के साथ-साथ भूतनाथ, नानक तथा तारा वगैरह का हाल बयान किया जो कुमार को मालूम न था। इसके बाद पुनः उन दोनों में यों बातचीत होने लगी—

इन्द्रजीतसिंह—आज तुम्हारी जुबानी बहुत-सी ऐसी बातें मालूम हुई हैं जिनके विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता था।

कमलिनी—इसी तरह आपकी जुबानी उन नकाबपोशों का हाल सुनकर मेरी अजीब हालत हो रही है, क्या करूँ, आपने मना कर दिया है कि किसी से इस बात का जिक्र न करना, नहीं तो अपने सुयोग्य पति से उनके विषय में···

इन्द्रजीतसिंह—(चौंककर) हैं ! क्या तुम्हारी शादी हो गई ?

कमलिनी—(कुमार के चेहरे का रंग उड़ा हुआ देख मुस्कुराकर) मैं अपने उस तालाब वाले मकान में अर्ज कर चुकी थी कि मेरी शादी बहुत जल्द होने वाली है !

इन्द्रजीतसिंह—(लम्बी साँस लेकर) हाँ, मुझे याद है, मगर यह उम्मीद न थी कि वह इतनी जल्दी हो जायगी।

कमलिनी—तो क्या आप मुझे हमेशा कुँआरी ही देखना पसन्द करते थे ?

इन्द्रजीतसिंह—नहीं, ऐसा तो नहीं है, मगर···

कमलिनी—मगर क्या ? कहिए-कहिए, रुके क्यों ?

इन्द्रजीतसिंह—यही कि मुझसे पूछ तो लिया होता।

कमलिनी—क्या खूब ! आपने क्या मुझसे पूछकर इन्द्रानी के साथ शादी की थी जो मैं आपसे पूछ लेती !

इतना कहकर कमलिनी हँस पड़ी और कुमार ने शरमाकर सिर झुका लिया। मगर इस समय कुमार के चेहरे से भी मालूम होता था कि उन्हें हद दर्जे का रंज है और

कलेजे में बेहिसाब तकलीफ हो रही है।

कुमार—(कमलिनी के पास से कुछ खिसककर) मुझे विश्वास था कि जन्म-भर तुमसे हँसने-बोलने का मौका मिलेगा।

कमलिनी—मेरे दिल में भी यही बात बैठी हुई थी और यही तय करके मैंने शादी की है कि आपसे कभी अलग होने की नौबत न आवे। मगर आप हट क्यों गये ? आइये-आइये, जिस जगह बैठे थे, वहीं बैठिए।

कुमार—नहीं-नहीं, पराई स्त्री के साथ एकान्त में बैठना ही धर्म के विरुद्ध है न कि साथ सटकर, मगर आश्चर्य है कि तुम्हें इस बात का कुछ भी खयाल नहीं है ! मुझे विश्वास था कि तुमसे कभी कोई काम धर्म के विरुद्ध न हो सकेगा।

कमलिनी—मुझमें आपने कौन-सी बात धर्म-विरुद्ध पाई ?

कुमार—यही कि तुम इस तरह एकान्त में बैठकर मुझसे बातें कर रही हो ! इससे भी बढ़कर वह बात जो अभी तुमने अपनी जुबान से कबूल की है कि 'तुमसे कभी अलग न होऊँगी'। क्या यह धर्म-विरुद्ध नहीं है ? क्या तुम्हारा पति इस बात को जानकर भी तुम्हें पतिव्रता कहेगा ?

कमलिनी—कहेगा, और जरूर कहेगा। अगर न कहे तो इसमें उसकी भूल है। उसे निश्चय है और आप सच समझिये कि कमलिनी प्राण दे देना स्वीकार करेगी, परन्तु धर्म-विरुद्ध पथ पर चलना कदापि नहीं। आपको मेरी नीयत पर ध्यान देना चाहिए। दिल्लगी की बातों पर नहीं, क्योंकि मैं ऐयार भी हूँ। यदि मेरा पति इस समय यहाँ आ जाय तो आपको मालूम हो जाय कि मुझ पर वह जरा भी शक नहीं करता और मेरा इस तरह बैठना उसे कुछ भी नहीं अखरता।

कुमार—(कुछ सोचकर) ताज्जुब है !

कमलिनी—अभी क्या, आगे आपको और भी ताज्जुब होगा।

इतना कहकर कमलिनी ने कुमार की कलाई पकड़ ली और अपनी तरफ खींचकर कहा, "पहले आप अपनी जगह पर आकर बैठ जाइये तब मुझसे बात कीजिए।"

कुमार—नहीं-नहीं कमलिनी, तुम्हें ऐसा उचित नहीं है। दुनिया में धर्म से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। अतएव तुम्हें भी धर्म पर ध्यान रखना चाहिए। अब तुम स्वतन्त्र नहीं हो, पराये की स्त्री हो।

कमलिनी—यह सच है, परन्तु मैं आपसे पूछती हूँ कि यदि मेरी शादी आपके साथ होती तो क्या मैं आनन्दसिंह से हँसने-बोलने या दिल्लगी करने लायक न रहती ?

कुमार—बेशक, उस हालत में तुम आनन्द से हँस-बोल और दिल्लगी भी कर सकती थीं, क्योंकि यह बात हम लोगों में लौकिक व्यवहार के ढंग पर प्रचलित है।

कमलिनी—बस, तो मैं आपसे भी उसी तरह हँस-बोल सकती हूँ और ऐसा करने के लिए मेरे पति ने मुझे आज्ञा भी दे दी है, मैं उनका पत्र आपको दिखा सकती हूँ इसलिए कि मेरा-आपका नाता ही ऐसा है, एक नहीं बल्कि तीन-तीन नाते हैं।

इन्द्रजीतसिंह—सो कैसे ?

कमलिनी—सुनिये, मैं कहती हूँ। एक तो मैं किशोरी को अपनी बहिन समझती

हूँ अतएव आप मेरे बहनोई हुए, कहिए कि हाँ ।

कुमार—यह कोई बात नहीं है, क्योंकि अभी किशोरी की शादी मेरे साथ नहीं हुई है ।

कमलिनी—खैर, जाने दीजिये । मैं दूसरा और तीसरा नाता बताती हूँ । जिनके साथ मेरी शादी हुई है, वे राजा गोपालसिंह के भाई हैं । इसके अतिरिक्त लक्ष्मीदेवी की मैं छोटी बहिन हूँ अतएव आपकी साली भी हुई ।

कुमार—(कुछ सोचकर) हाँ, इस बात से तो मैं कायल हुआ । मगर तुम्हारी नीयत में किसी तरह फर्क न आना चाहिए ।

कमलिनी—इससे आप बेफिक्र रहिये । मैं अपना धर्म किसी तरह नहीं बिगाड़ सकती और न दुनिया में कोई ऐसा पैदा हुआ है जो मेरी नीयत बिगाड़ सके, आइए अब तो अपने ठिकाने पर बैठ जाइए ।

लाचार कुँअर इन्द्रजीतसिंह अपने ठिकाने आ बैठे और पुनः बातचीत करने लगे, मगर उदास बहुत थे और यह बात उनके चेहरे से जाहिर हो रही थी ।

यकायक कमलिनी ने मसखरेपन के साथ हँस दिया जिससे कुमार को खयाल हो गया कि इसने जो कुछ कहा सब झूठ और केवल दिल्लगी के लिए था । मगर साथ ही इसके उनके दिल का खुटका साफ नहीं हुआ ।

कमलिनी—अच्छा आप यह बताइए कि तिलिस्म की कैफियत देखने के लिए राजा साहब तिलिस्म के अन्दर जायेंगे या नहीं ?

कुमार—जरूर जायेंगे ।

कमलिनी—कब ?

कुमार—सो मैं ठीक नहीं कह सकता, शायद कल या परसों ही जायें । कहते थे कि तिलिस्म के अन्दर चलकर उसे देखने का इरादा है । इसके जवाब में भाई गोपालसिंह ने कहा कि कि जरूर और जल्द चलकर देखना चाहिए ।

कमलिनी—तो क्या हम लोगों को साथ ले जायेंगे ?

कुमार—सो मैं कैसे कहूँ ? तुम गोपाल भाई से कहो, वह इसका बन्दोबस्त जरूर कर देंगे, मुझे तो कुछ शर्म मालूम होगी ।

कमलिनी—सो तो ठीक है, अच्छा, मैं कल उनसे कहूँगी ।

कुमार—मगर तुम लोगों के साथ किशोरी भी अगर तिलिस्म के अन्दर जाकर वहाँ की कैफियत न देखेगी तो मुझे इस बात का रंज जरूर होगा ।

कमलिनी—बात तो वाजिब है, मगर वह इस मकान में तभी आवेंगी जब उनकी शादी आपके साथ हो जायगी और इसीलिए वह अपने नाना के डेरे में भेज दी गई हैं । खैर, तो आप इस मामले को तब तक के लिए टाल दीजिए जब तक आपकी शादी न हो जाय ।

कुमार—मैं भी यही उचित समझता हूँ, अगर महाराज मान जायें तो ।

कमलिनी—या आप हम लोगों को फिर दूसरी दफे ले जाइयेगा ।

कुमार—हाँ, यह भी हो सकता है । अबकी दफे का वहाँ जाना महाराज की

इच्छा पर ही छोड़ देना चाहिए, वे जिसे चाहें ले जायें।

कमलिनी -- बेशक, ऐसा ही ठीक होगा। अब तिलिस्म के अन्दर जाने में आपत्ति ही काहे की है, जब और जितनी दफे आप चाहेंगे हम लोगों को ले जायेंगे।

कुमार—नहीं, सो बात ठीक नहीं। बहुत सी जगहें ऐसी हैं जहाँ सैकड़ों दफे जाने में भी कोई हर्ज नहीं है, मगर बहुत-सी जगहें तिलिस्म टूट जाने पर भी नाजुक हालत में बनी हुई हैं और जहाँ बार-बार जाना कठिन है, तथापि मैं तुम लोगों को वहाँ की सैर जरूर कराऊँगा।

कमलिनी—मैं समझती हूँ कि मेरे उस तालाब वाले तिलिस्मी मकान के नीचे भी कोई तिलिस्म जरूर है। उस खून से लिखी हुई तिलिस्मी किताब का मजमून पूरी तरह से मेरी समझ में नहीं आता था, तथापि इस ढंग की बातों पर कुछ शक जरूर होता था।

कुमार— तुम्हारा ख्याल बहुत ठीक है, हम दोनों भाइयों को खून से लिखी उस तिलिस्मी किताब के पढ़ने से बहुत ज्यादा हाल मालूम हुआ है, इसके अतिरिक्त मुझे तुम्हारा वह स्थान भी ज्यादा पसन्द है और पहले भी मैं (जब तुम्हारे पास वहाँ था) यह विचार कर चुका था कि 'सब कामों से निश्चिन्त होकर कुछ दिनों के लिए जरूर वहाँ डेरा जमाऊँगा, परन्तु अब मेरा वह विचार कुछ काम नहीं दे सकता।

कमलिनी—सो क्यों ?

कुमार—इसलिए कि अगर तुम्हारी बातें ठीक हैं, तो अब वह स्थान तुम्हारे पति के अधिकार में होगा।

कमलिनी—(मुस्कुराकर) तो क्या हर्ज है, मैं उनसे कहकर आपको दिला दूँगी।

कुमार—मैं किसी से भीख माँगना पसन्द नहीं करता और न उनसे लड़कर वह स्थान छीन लेना ही मुझे मंजूर होगा। कमलिनी, सच तो ये है कि तुमने मुझे धोखा दिया और बहुत बड़ा धोखा दिया ! मुझे तुमसे यह उम्मीद न थी। (कुछ सोचकर) एक दफे तुम मुझसे फिर कह दो कि सचमुच शादी हो गई।

इसके जवाब में कमलिनी खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली, "हाँ, हो गई।"

कुमार—मेरे सिर पर हाथ रखकर कसम खाओ।

कमलिनी—(कुमार के पैरों पर हाथ रख के) आपसे मैं कसम खाकर कहती हूँ कि मेरी शादी हो गई।

हम लिख नहीं सकते कि इस समय कुमार के दिल की कैसी बुरी हालत थी, रंज और अफसोस से उनका दिल बैठा जाता था और कमलिनी हँस-हँसकर चुटकियाँ लेती थी। बड़ी मुश्किल से कुमार थोड़ी देर तक और उसके पास बैठे और फिर उठकर लम्बी साँसें लेते हुए अपने कमरे में चले गए। रात भर उन्हें नींद न आई।

5

महाराज की आज्ञानुसार कुंअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के विवाह की तैयारी वड़ी धूमधाम से हो रही है। यहाँ से चुनार तक की सड़कें दोनों तरफ जाफरी वाली टट्टियों से सजाई हैं, जिन पर रोशनी की जायेगी और जिनके बीच में थोड़ी-थोड़ी दूर पर बड़े फाटक बने हुए हैं और उन पर नौबतखाने का इन्तजाम किया गया है। टट्टियों के दोनों तरफ बाजार बसाया जायेगा, जिसकी तैयारी कारिन्दे लोग बड़ी खूबी और मुस्तैदी के साथ कर रहे हैं। इसी तरह और भी तरह-तरह के तमाशों का इन्तजाम बीच-बीच में हो रहा है, जिसके सबब से बहुत ज्यादा भीड़-भाड़ होने की उम्मीद है और अभी से तमाशबीनों का जमावड़ा भी हो रहा है। रोशनी के साथ-साथ आतिशबाजी के इन्तजाम में भी बड़ी सरगर्मी दिखाई जा रही है, कोशिश हो रही है कि उम्दा से उम्दा तथा अनूठी आतिशबाजी का तमाशा लोगों को दिखाया जाये। इसी तरह और भी कई तरह के खेल-तमाशे और नाच इत्यादि का बन्दोबस्त हो रहा है, मगर इस समय हमें इन सब बातों से कोई मतलब नहीं है क्योंकि हम अपने पाठकों को उस तिलिस्मी मकान की तरफ ले चलना चाहते हैं, जहाँ भूतनाथ और देवीसिंह ने नकाबपोशों के फेर में पड़कर शर्मिन्दगी उठाई थी और जहाँ इस समय दोनों कुमार अपने दादा, पिता तथा और सब आपस वालों को तिलिस्मी तमाशा दिखाने के लिए ले जा रहे हैं।

सुबह का सुहावना समय है और ठंडी हवा चल रही है। जंगली फूलों की खुशबू से मस्त सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगी खूबसूरत चिड़ियाएँ हमारे सर्वगुण-सम्पन्न मुसाफिरों को मुबारकबाद दे रही हैं, जो तिलिस्म की सैर करने की नीयत से मीठी-मीठी बातें करते हुए जा रहे हैं।

घोड़े पर सवार महाराज सुरेन्द्रसिंह, राजा वीरेन्द्रसिंह, जीतसिंह, गोपालसिंह, इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह तथा पैदल तेजसिंह, देवीसिंह, भूतनाथ, पंडित बद्रीनाथ, रामनारायण, पन्नालाल वगैरह अपने ऐयार लोग जा रहे थे। तिलिस्म के अन्दर मिले हुए कैदी अर्थात् नकाबपोश लोग तथा भैरोंसिंह और तारासिंह इस समय साथ न थे। इस समय देवीसिंह से ज्यादा भूतनाथ का कलेजा उछल रहा था और वह अपनी स्त्री का असली भेद जानने के लिए बेताब हो रहा है। जब से उसे इस बात का पता लगा कि वे दोनों सरदार नकाबपोश यही दोनों कुमार हैं तथा उस विचित्र मकान के मालिक भी यही हैं, तब से उसके दिल का खुटका कुछ कम तो हो गया, मगर खुलासा हाल जानने और पूछने का मौका न मिलने के सबब उसकी बेचैनी दूर नहीं हुई थी। वह यह भी जानना चाहता था कि अब उसकी स्त्री तथा लड़का हरनामसिंह किस फिक्र में हैं। इस समय जब वह फिर उसी ठिकाने जा रहा था, जहाँ अपनी स्त्री की बदौलत गिरफ्तार होकर अपने लड़के का विचित्र हाल देखा था, तब उसका दिल और बेचैन हो उठा था मगर साथ ही इसके उसे इस बात की भी उम्मीद हो रही थी कि अब उसे उसकी स्त्री का हाल मालूम हो जायेगा या कुछ पूछने का मौका ही मिलेगा।

ये लोग धीरे-धीरे बातचीत करते हुए उसी खोह या सुरंग की तरफ जा रहे थे। दिन पहर भर से ज्यादा न चढ़ा होगा, जब ये लोग उस ठिकाने पहुँच गए। महाराज सुरेन्द्रसिंह और वीरेन्द्रसिंह वगैरह घोड़ों पर से नीचे उतर पड़े, साईसों ने घोड़े थाम लिए और इसके बाद उन सभी ने सुरंग के अन्दर पैर रखा। इस सुरंग वाले रास्ते का कुछ खुलासा हाल हम इस सन्तति के उन्नीसवें भाग में लिख आये हैं, जब भूतनाथ यहाँ आया था, अब उसे पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हाँ, इतना लिख देना जरूरी जान पड़ता है कि दोनों कुमारों ने सभी को यह बात समझा दी कि यह रास्ता बन्द क्योंकर हो सकता है। बन्द होने का स्थान वही चबूतरा था जो सुरंग के बीच में पड़ता था।

जिस समय ये लोग सुरंग तय करके मैदान में पहुँचे, सामने वही छोटा बँगला दिखाई दिया, जिसका हाल हम पहले लिख चुके हैं। इस समय उस बँगले के आगे वाले दालान में दो नकाबपोश औरतें हाथ में तीर-कमान लिए टहलती पहरा दे रही थीं जिन्हें देखते ही खास करके भूतनाथ और देवीसिंह को बड़ा ताज्जुब हुआ और उनके दिल में तरह-तरह की बातें पैदा होने लगीं। भूतनाथ का इशारा पाकर देवीसिंह ने कुँअर इन्द्रजीतसिंह से पूछा, "ये दोनों नकाबपोश औरतें कौन हैं जो पहरा दे रही हैं?" इसके जवाब में कुमार तो चुप रह गए, मगर महाराज सुरेन्द्रसिंह ने कहा, "इसके जानने की तुम लोगों को क्या जल्दी पड़ी हुई है? जो कोई होंगी, सब मालूम ही हो जायेगा!"

इस जवाब ने देवीसिंह और भूतनाथ को देर तक के लिए चुप कर दिया और विश्वास दिला दिया कि महाराज को इनका हाल जरूर मालूम है।

जब उन औरतों ने इन सभी को पहचाना और अपनी तरफ आते देखा, तो बँगले के अन्दर घुसकर गायब हो गईं, तब तक ये लोग भी उस दालान में जा पहुँचे। इस [illegible] भी यह बँगला उसी हालत में था जैसा कि भूतनाथ और देवीसिंह ने देखा था।

हम पहले लिख चुके हैं और अब भी लिखते हैं कि यह बँगला जैसा बाहर से सादा और साधारण मालूम होता था वैसा अन्दर से न था और यह बात दालान में पहुँचने के साथ ही सभी को मालूम हो गई। दालान की दीवारों में निहायत खूबसूरत और आला दर्जे की कारीगरी का नमूना दिखाने वाली तस्वीरों को देखकर सब कोई दंग हो गए और मुसौवर के हाथों की तारीफ करने लगे। ये तस्वीरें एक निहायत आलीशान इमारत की थीं और उसके ऊपर बड़े-बड़े हरफों में यह लिखा हुआ था—

"यह तिलिस्म चुनारगढ़ के पास ही एक निहायत खूबसूरत जंगल में कायम किया गया है, जिसे महाराज सुरेन्द्रसिंह के लड़के बीरेन्द्रसिंह तोड़ेंगे।"

इस तस्वीर को देखते ही सभी को विश्वास हो गया कि वह तिलिस्मी खँडहर जिसमें तिलिस्मी बगुला था और जिस पर इस समय निहायत आलीशान इमारत बनी हुई है पहले इसी शक्ल-सूरत में था, जिसे जमाने के हेर-फेर ने अच्छी तरह बर्बाद करके उजाड़ और भयानक बना दिया। इमारत की उस बड़ी और पूरी तस्वीर के नीचे उसके भीतर वाले छोटे-छोटे टुकड़े भी बनाकर दिखलाए गए थे और उस बगुले की तस्वीर भी बनी हुई थी जिसे राजा बीरेन्द्रसिंह ने बखूबी पहचान लिया और कहा, "बेशक अपने

जमाने में वह बहुत अच्छी इमारत थी।"

सुरेन्द्रसिंह—यद्यपि आजकल जो इमारत तिलिस्मी खँडहर पर बनी है और जिसके बनवाने में जीतसिंह ने अपनी तबीयतदारी और कारीगरी का अच्छा नमूना दिखाया है, बुरी नहीं है, मगर हमें इस पहली इमारत का ढंग कुछ अनूठा और सुन्दर मालूम पड़ता है।

जीतसिंह—बेशक ऐसा ही है। यदि इस तस्वीर को मैं पहले देखे हुए होता तो जरूर इसी ढंग की इमारत बनवाता।

वीरेन्द्रसिंह—और ऐसा होने से वह तिलिस्म एक दफे नया मालूम पड़ता।

इन्द्रजीतसिंह—यह चुनारगढ़ वाला तिलिस्म साधारण नहीं बल्कि बहुत बड़ा है। नौगढ़, विजयगढ़ और जमानिया तक इसकी शाखा फैली हुई है। इस बँगले को इस बहुत बड़े और फैले तिलिस्म का 'केन्द्र' समझना चाहिए, बल्कि ऐसा भी कह सकते हैं कि यह बँगला तिलिस्म का नमूना है।

थोड़ी देर तक दालान में खड़े इसी किस्म की बातें होती रहीं और इसके बाद सभी को साथ लिए हुए दोनों कुमार बँगले के अन्दर रवाना हुए।

सदर दरवाजे का पर्दा उठाकर अन्दर जाते ही ये लोग एक गोल कमरे में पहुँचे, जो भूतनाथ और देवीसिंह का देखा हुआ था। इस गोल और गुम्बददार खूबसूरत कमरे की दीवारों पर जंगलों, पहाड़ों और रोहतासगढ़ की तस्वीरें बनी हुई थीं। घड़ी-घड़ी तारीफ न करके एक ही दफे लिख देना ठीक होगा कि इस बँगले में जितनी तस्वीरें देखने में आईं, सभी आला दर्जे की कारीगरी का नमूना थीं और यही मालूम होता था कि आज ही बनकर तैयार हुई हैं। इस रोहतासगढ़ की तस्वीर को देखकर सब कोई बड़े प्रसन्न हुए और राजा वीरेन्द्रसिंह ने तेजसिंह की तरफ देखकर कहा, "रोहतासगढ़ किले और पहाड़ी की बहुत ठीक और साफ तस्वीर बनी हुई है।"

तेजसिंह—जंगल भी उसी ढंग का बना हुआ है, कहीं-कहीं से ही फर्क मालूम पड़ता है, नहीं तो बाज जगहें तो ऐसी बनी हुई हैं जैसी मैंने अपनी आँखों से देखी हैं। (उँगली का इशारा करके) देखिये यह वही कब्रिस्तान है जिस राह से हम लोग रोहतासगढ़ के तहखाने में घुसे थे। हाँ, यह देखिए, बारीफ हरफों में लिखा हुआ भी है—"तहखाने में जाने का बाहरी फाटक।"

इन्द्रजीतसिंह—इस तस्वीर को अगर गौर से देखेंगे तो वहाँ का बहुत ज्यादा हाल मालूम होगा। जिस जमाने में यह इमारत तैयार हुई थी, उस जमाने में वहाँ की और उसके चारों तरफ की जैसी अवस्था थी, वैसी ही इस तस्वीर में दिखाई है, आज चाहे कुछ फर्क पड़ गया हो!

तेजसिंह—बेशक ऐसा ही है।

इन्द्रजीतसिंह—इसके अतिरिक्त एक और ताज्जुब की बात अर्ज करूँगा।

वीरेन्द्रसिंह—वह क्या?

इन्द्रजीतसिंह—इसी दीवार में से वहाँ (रोहतासगढ़) जाने का रास्ता भी है!

सुरेन्द्रसिंह—वाह-वाह! क्या तुम इस रास्ते को खोल भी सकते हो?

इन्द्रजीतसिंह—जी हाँ, हम लोग इसमें बहुत दूर तक जाकर घूम आये हैं।

सुरेन्द्रसिंह—यह भेद तुम्हें क्योंकर मालूम हुआ?

इन्द्रजीतसिंह—उसी 'रिक्तगन्थ' की बदौलत हम दोनों भाइयों को इन सब जगहों का हाल और भेद पूरा-पूरा मालूम हो चुका है। यदि आज्ञा हो तो दरवाजा खोल कर मैं आपको रोहतासगढ़ के तहखाने में ले जा सकता हूँ। वहाँ के तहखाने में भी एक छोटा-सा तिलिस्म है, जो इसी बड़े तिलिस्म से सम्बन्ध रखता है और हम लोग उसे खोल या तोड़ भी सकते हैं परन्तु अभी तक ऐसा करने का इरादा नहीं किया।

सुरेन्द्रसिंह—उस रोहतासगढ़ वाले तिलिस्म के अन्दर क्या चीज है?

इन्द्रजीतसिंह—उसमें केवल अनूठे अद्भुत आश्चर्य गुण वाले हर्बे रखे हुए हैं, उन्हीं हरबों पर वह तिलिस्म बँधा है। जैसा तिलिस्मी खंजर हम लोगों के पास है या जैसे तिलिस्मी जिरह-बख्तर और हरबों की बदौलत राजा गोपालसिंह ने कृष्ण जिन्न का रूप धरा था, वैसे हरबों और असबाबों का तो वहाँ ढेर लगा हुआ है, हाँ, खजाना वहाँ कुछ भी नहीं है।

सुरेन्द्रसिंह—ऐसे अनूठे हर्बे खजाने से क्या कम हैं?

जीतसिंह—बेशक! (इन्द्रजीतसिंह से) जिस हिस्से को तुम दोनों भाइयों ने तोड़ा है, उसमें भी तो ऐसे अनूठे हरबे होंगे?

इन्द्रजीतसिंह—जी हाँ, मगर बहुत कम हैं।

वीरेन्द्रसिंह—अच्छा यदि ईश्वर की कृपा हुई तो फिर किसी मौके पर इस रास्ते से रोहतासगढ़ जाने का इरादा करेंगे। (मकान की सजावट और परदों की तरफ देखकर) क्या यह सब सामान, कन्दील, पर्दे और बिछावन वगैरह तुम लोग तिलिस्म के अन्दर से लाए थे?

इन्द्रजीतसिंह—जी नहीं, जब हम लोग यहाँ आए, तो इस बंगले को इसी तरह सजा-सजाया पाया और तीन-चार आदमियों को भी देखा जो इस बंगले की हिफाजत और मेरे आने का इन्तजार कर रहे थे।

सुरेन्द्रसिंह—(ताज्जुब से) वे लोग कौन थे और अब कहाँ हैं?

इन्द्रजीतसिंह—दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि वे लोग इन्द्रदेव के मुलाजिम थे, जो इस समय अपने मालिक के पास चले गए हैं। इस तिलिस्म का दारोगा असल में इन्द्रदेव है, और आज के पहले भी इसी के बुजुर्ग लोग दारोगा होते आए हैं।

सुरेन्द्रसिंह—यह तुमने बड़ी खुशी की बात सुनाई, मगर अफसोस यह है कि इन्द्रदेव ने हमें इन बातों की कुछ भी ख़बर न की।

आनन्दसिंह—अगर इन्द्रदेव ने इन सब बातों को आपसे छिपाया, तो यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है, तिलिस्मी कायदे के मुताबिक ऐसा होना ही चाहिए था।

सुरेन्द्रसिंह—ठीक है, तो मालूम होता है कि यह सब सामान तुम्हारी खातिर-दारी के लिए इन्द्रदेव की आज्ञानुसार किया गया है।

आनन्दसिंह—जी हाँ, उसके आदमियों की जबानी मैंने भी यही सुना है।

इसके बाद बड़ी देर तक ये लोग इन तस्वीरों को देखते और ताज्जुब भरी बातें

करते रहे और फिर आगे की तरफ बढ़े। जब पहले भूतनाथ और देवीसिंह यहाँ आये थे, तब हम लिख चुके हैं कि इस कमरे में सदर दरवाजे के अतिरिक्त और भी तीन दरवाजे थे—इत्यादि। अतः उन दोनों ऐयारों की तरह इस समय भी सभी को साथ लिए हुए दोनों कुमार दाहिनी तरफ वाले दरवाजे के अन्दर गए, और घूमते हुए उसी बहुत बड़े और आलीशान कमरे में पहुँचे, जिसमें पहले भूतनाथ और देवीसिंह ने पहुँच कर आश्चर्य-भरा तमाशा देखा था।

इस आलीशान कमरे की तस्वीरें खूबी और खूबसूरती में सब तस्वीरों से बढ़ी-चढ़ी थीं तथा दीवारों पर जंगल, मैदान पहाड़, खोह, दर्रे, झरने, शिकारगाह तथा शहरपनाह, किले, मोर्चे और लड़ाई इत्यादि की बहुत तस्वीरें बनी हुई थीं, जिन्हें सब कोई गौर और ताज्जुब के साथ देखने लगे।

सुरेन्द्रसिंह—(किले की तरफ इशारा करके) यह तो चुनारगढ़की तस्वीर है।

इन्द्रजीतसिंह—जी हाँ, (उँगली का इशारा करके) और यह जमानिया के किले तथा खास बाग की तस्वीर है। इसी दीवार में से वहाँ जाने का भी रास्ता है। महाराज सूर्यकान्त के जमाने में उनके शिकारगाह और जंगल की यह सूरत थी।

वीरेन्द्रसिंह—और यह लड़ाई की तस्वीर कैसी है? इसका क्या मतलब है?

इन्द्रजीतसिंह—इन तस्वीरों में बड़ी कारीगरी खर्च की गई है। महाराज सूर्यकान्त ने अपनी फौज को जिस तरह की कवायद और व्यूह-रचना इत्यादि का ढंग सिखाया था वे सब बातें इन तस्वीरों में भरी हुई हैं। एक तरकीब करने से ये सब तस्वीरें चलती-फिरती और काम करती नजर आएँगी और साथ ही इसके फौजी बाजा भी बजता हुआ सुनाई देगा अर्थात् इन तस्वीरों में जितने बाजे वाले हैं वे सब भी अपना-अपना काम करते हुए मालूम पड़ेंगे, परन्तु इस फौजी तमाशे का आनन्द रात को मालूम पड़ेगा, दिन को नहीं। इन्हीं तस्वीरों के कारण इस कमरे का नाम 'व्यूह-मण्डल' रक्खा गया है, वह देखिए ऊपर की तरफ बड़े हरफों में लिखा हुआ है।

सुरेन्द्रसिंह—यह बहुत अच्छी कारीगरी है। इस तमाशे को हम जरूर देखेंगे बल्कि और भी कई आदमियों को दिखाएँगे।

इन्द्रदेव—बहुत अच्छा, रात हो जाने पर मैं इसका बन्दोबस्त करूँगा, तब तक आप और चीजों को देखें।

ये लोग जिस दरवाजे से इस कमरे में आये थे, उसके अतिरिक्त एक दरवाजा और भी था जिस राह से सभी को लिए दोनों कुमार दूसरे कमरे में पहुँचे। इस कमरे की दीवार बिल्कुल साफ थी अर्थात् उस पर किसी तरह की तस्वीर बनी हुई न थी। कमरे के बीचोंबीच दो चबूतरे संगमरमर के बने हुए थे जिसमें एक तो खाली था और दूसरे चबूतरे के ऊपर सफेद पत्थर की एक खूबसूरत पुतली बैठी हुई थी। इस जगह पर ठहर कर कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने अपने दादा और पिता की तरफ देखा और कहा, "नकाबपोशों की जुबानी हम लोगों का तिलिस्मी हाल जो कुछ आपने सुना है, वह तो याद ही होगा, अतः हम लोग पहली दफा तिलिस्म से बाहर निकलकर जिस सुहावनी

घाटी में पहुँचे थे वह यही स्थान है।[1] इसी चबूतरे के अन्दर से हम लोग बाहर हुए थे। उस 'रिक्तगंथ' की बदौलत हम दोनों भाई यहाँ तक तो पहुँच गए मगर उसके बाद इस चबूतरे वाले तिलिस्म को खोल न सके, हाँ इतना जरूर है कि उस 'रिक्तगंथ' की बदौलत इस चबूतरे में से (जिस पर एक पुतली बैठी हुई थी उसकी तरफ इशारा करके) एक दूसरी किताब हाथ लगी जिसकी बदौलत हम लोगों ने उस चबूतरे वाले तिलिस्म को खोला और उसी राह से आपकी सेवा में जा पहुँचे।

"आप सुन चुके हैं कि जब हम दोनों भाई राजा गोपालसिंह को मायारानी की कैद से छुड़ा कर जमानिया के खास बाग वाले देवमन्दिर में गये थे तब वहाँ पहले आनन्दसिंह तिलिस्म के फन्दे में फँस गये थे, उन्हें छुड़ाने के लिए जब मैं भी उसी गड़हे या कुएँ में कूद पड़ा तो चलता-चलता एक दूसरे बाग में पहुँचा जिसके बीचोंबीच में एक मन्दिर था। उस मन्दिर वाले तिलिस्म को जब मैंने तोड़ा तो वहाँ एक पुतली के अन्दर कोई चमकती हुई चीज मुझे मिली।"[2]

वीरेन्द्रसिंह—हाँ, हमें याद है, उस मूरत को तुमने उखाड़ कर किसी कोठरी के अन्दर फेंक दिया था और वह फूट कर चूने की कली की तरह हो गई थी। उसी के पेट में से···

इन्द्रजीतसिंह—जी हाँ।

सुरेन्द्रसिंह—तो वह चमकती हुई चीज क्या थी और वह कहाँ है?

इन्द्रजीतसिंह—वह हीरे की बनी हुई एक चाबी थी जो अभी तक मेरे पास मौजूद है, (जेब में से निकाल कर और महाराज को दिखा कर) देखिये, यही ताली इस पुतली के पेट में लगती है।

सभी ने उस चाबी को गौर से देखा और इन्द्रजीतसिंह ने सभी के देखते-देखते उस चबूतरे पर बैठी हुई पुतली की नाभि में वह ताली लगाई। उसका पेट छोटी आलमारी के पल्ले की तरह खुल गया।

इन्द्रजीतसिंह—बस इसी में से वह किताब मेरे हाथ लगी जिसकी बदौलत वह चबूतरे वाला तिलिस्म खोला।

सुरेन्द्रसिंह—अब वह किताब कहाँ है?

इन्द्रजीतसिंह—आनन्दसिंह के पास मौजूद है।

इतना कहकर इन्द्रजीतसिंह ने आनन्दसिंह की तरफ देखा और उन्होंने एक छोटी-सी किताब, जिसके अक्षर बहुत बारीक थे, महाराज के हाथ में दे दी। यह किताब भोजपत्र की थी जिसे महाराज ने बड़े गौर से देखा और दो-तीन जगहों से कुछ पढ़ कर आनन्दसिंह के हाथ में देते हुए कहा, "इसे निश्चिन्ती में एक दफा पढ़ेंगे।"

इन्द्रजीतसिंह—यह पुतलीवाला चबूतरा उस तिलिस्म में घुसने का दरवाजा है।

इतना कहकर इन्द्रजीतसिंह ने उस पुतली के पेट में (जो खुल गया था) हाथ

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, बीसवाँ भाग, नौवां बयान।
2. देखिए ,, ,, दसवाँ भाग, पहला बयान।

डाल के कोई पेंच घुमाया जिससे चबूतरे के दाहिनी तरफ वाली दीवार किवाड़ के पल्ले की तरह धीरे-धीरे खुल कर जमीन के साथ सट गई और नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई देने लगीं। इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी खंजर हाथ में लिया और उसका कब्जा दबा कर रोशनी करते हुए चबूतरे के अन्दर घुसे तथा सभी को अपने पीछे आने के लिए कहा। सभी के पीछे आनन्दसिंह तिलिस्मी खंजर की रोशनी करते हुए चबूतरे के अन्दर घुसे। लगभग पन्द्रह-बीस चक्करदार सीढ़ियों के नीचे उतरने के बाद ये लोग एक बहुत बड़े कमरे में पहुँचे जिसमें सोने-चाँदी के सैकड़ों बड़े-बड़े हण्डे, अशर्फियों और जवाहिरात से भरे हुए पड़े थे जिन्हें सभी ने बड़े गौर और ताज्जुब के साथ देखा और महाराज ने कहा, "इस खजाने का अन्दाज करना भी मुश्किल है।"

इन्द्रजीतसिंह—जो कुछ खजाना इस तिलिस्म के अन्दर मैंने देखा और पाया है उसका यह पासंगा भी नहीं है। उसे बहुत जल्द ऐयार लोग आपके पास पहुँचावेंगे। उन्हीं के साथ-साथ कई चीजें दिल्लगी की भी हैं जिसमें एक चीज वह भी है जिसकी बदौलत हम लोग एक दफा हँसते-हँसते दीवार के अन्दर कूद पड़े थे और मायारानी के हाथ में गिरफ्तार हो गए थे।

जीतसिंह—(ताज्जुब से) हाँ! अगर वह चीज शीघ्र बाहर निकाल ली जाय तो (सुरेन्द्रसिंह से) कुमारों की शादी में सर्वसाधारण को भी उसका तमाशा दिखाया जा सकता है।

सुरेन्द्रसिंह—बहुत अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।

इन्द्रजीतसिंह—इस तिलिस्म में घुसने के पहले ही मैंने सभी का साथ छोड़ दिया अर्थात् नकाबपोशों को (कैदियों को) बाहर ही छोड़कर केवल हम दोनों भाई ही इसके अन्दर घुसे और काम करते हुए धीरे-धीरे आपकी सेवा में जा पहुँचे।

सुरेन्द्रसिंह—तो शायद उसी तरह हम लोग भी यह सब तमाशा देखते हुए उसी चबूतरे की राह बाहर निकलेंगे?

जीतसिंह—मगर क्या उन चलती-फिरती तस्वीरों का तमाशा न देखिएगा?

सुरेन्द्रसिंह—हाँ, ठीक है, उस तमाशे को तो जरूर देखेंगे।

इन्द्रजीतसिंह—तो अब यहाँ से लौट चलना चाहिए, क्योंकि इस कमरे के आगे बढ़कर फिर आज ही लौट आना कठिन है, इसके अतिरिक्त अब दिन भी थोड़ा ही रह गया है, संध्या-वन्दन और भोजन इत्यादि के लिए भी कुछ समय चाहिए और फिर उन तस्वीरों का तमाशा भी कम-से-कम चार-पाँच घण्टे में पूरा होगा।

सुरेन्द्रसिंह—क्या हर्ज है, लौट चलो।

महाराज की आज्ञानुसार सब कोई वहाँ से लौटे और घूमते हुए बँगले के बाहर निकल आये, देखा तो वास्तव में दिन बहुत कम रह गया था।

6

रात आधे घण्टे से कुछ ज्यादा जा चुकी थी जब सब कोई अपने जरूरी कामों से निश्चिन्त हो बँगले के अन्दर घुसे और घूमते-फिरते उसी चलती-फिरती तस्वीरों वाले कमरे में पहुँचे। इस समय बँगले के अन्दर हर एक कमरे में रोशनी बखूबी हो रही थी जिसके विषय में भूतनाथ और देवीसिंह ने ताज्जुब के साथ खयाल किया कि यह काम बेशक उन्हीं लोगों का होगा जिन्हें यहाँ पहुँचने के साथ ही हम लोगों ने पहरा देते देखा था या जो हम लोगों को देखते ही बँगले के अन्दर घुसकर गायब हो गए थे। ताज्जुब है कि महाराज को तथा और लोगों को भी उनके विषय में कुछ खयाल नहीं है और न कोई पूछता ही है कि वे कौन थे और कहाँ गए, मगर हमारा दिल उनका हाल जाने बिना बेचैन हो रहा है।

चलती-फिरती तस्वीरों वाले कमरे में फर्श बिछा हुआ था और गद्दी लगी हुई थी जिस पर सब कोई कायदे से अपने-अपने ठिकाने पर बैठ गए और इसके बाद इन्द्रजीतसिंह की आज्ञानुसार रोशनी गुल कर दी गई। कमरे में बिल्कुल अन्धकार छा गया, यह नहीं मालूम होता था कि कौन क्या कर रहा है, खास करके इन्द्रजीतसिंह की तरफ लोगों का ध्यान था जो इस तमाशे को दिखाने वाले थे, मगर कोई कह नहीं सकता था कि वह क्या कर रहे हैं।

थोड़ी ही देर बाद चारों तरफ की दीवारें चमकने लगीं और उन पर की कुल तस्वीरें बहुत साफ और बनिस्वत पहले के अच्छी तरह पर दिखाई देने लगी। पहले तो वे तस्वीरें केवल चित्रकारी ही मालूम पड़ती थीं परन्तु अब सचमुच की बातें दिखाई देने लगीं। मालूम होता था कि जैसे हम बहुत दूर से सच्चे किले, पहाड़, जंगल, मैदान, आदमी, जानवर और फौज इत्यादि को देख रहे हैं। सब कोई बड़े ताज्जुब के साथ इस कैफियत को देख रहे थे कि यकायक बाजे की आवाज कान में आई। उस समय सभी का ध्यान जमानिया के किले की तस्वीर पर जा पड़ा, जिधर से बाजे की आवाज आ रही थी। देखा कि—

एक बहुत बड़े मैदान में बेहिसाब फौज खड़ी है जिसके आमने-सामने दो हिस्से हैं मानो दो फौजें लड़ने के लिए तैयार खड़ी हैं। पैदल और सवार दोनों तरह की फौजें हैं तथा तोप इत्यादि और भी जो कुछ सामान फौज में होना चाहिए, सब मौजूद है। इन दोनों फौजों में एक की पोशाक सुर्ख और दूसरे की आसमानी थी। बाजे की आवज केवल सुर्ख वर्दी वाली फौज में से आ रही थी बल्कि बाजे वाले अपना काम करते हुए साफ दिखाई दे रहे थे। यकायक सुर्ख वर्दी वाली फौज हिलती हुई दिखाई पड़ी। गौर करने पर मालूम हुआ कि सिपाहियों का मुँह घूम गया है और वे दाहिनी तरफ वाली एक पहाड़ी की तरफ तेजी के साथ बाजे की गत पर पैर रखते हुए जा रहे हैं। जैसे-जैसे फौज दूर होती जाती, वैसे ही वैसे बाजे की आवाज भी दूर होती जाती थी। देखते-ही-देखते वह फौज मानो कोसों दूर निकल गई और एक पहाड़ी के पीछे की तरफ जाकर

आँखों की ओट हो गई। अब यह मैदान ज्यादा खुलासा दिखाई देने लगा। जितनी जगह दोनों फौजों से भरी थी, वह एक फौज के हिस्से में रह गई। अब दूसरी अर्थात् आसमानी वर्दी वाली फौज में से बाजे की आवाज आने लगी और सवार तथा पैदल भी चलते हुए दिखाई देने लगे। एक सवार हाथ में झंडा लिए तेजी के साथ घोड़ा दौड़ा कर मैदान में आ खड़ा हुआ और झंडे के इशारे से फौज को कवायद कराने लगा। यह कवायद घण्टे भर तक होती रही और इस बीच में आला दर्जे की होशियारी, चालाकी, मुस्तैदी, सफाई और बहादुरी दिखाई दी जिससे सब कोई बहुत ही खुश हुए और महाराज बोले, "बेशक फौज को ऐसा ही तैयार करना चाहिए।"

कवायद खतम करने के बाद बाजा बन्द हुआ और वह फौज एक तरफ को रवाना हुई, मगर थोड़ी ही दूर गई होगी कि उस लाल वर्दी वाली फौज ने यकायक पहाड़ी के पीछे से निकल कर इस फौज पर धावा मारा। इस कैफियत को देखते ही आसमानी वर्दी वाली फौज के अफसर होशियार हो गए, झंडे का इशारा पाते ही बाजा पुनः बजने लगा, और फौजी सिपाही लड़ने के लिए तैयार हो गये। इस बीच में वह फौज भी आ पहुँची और दोनों में घमासान लड़ाई होने लगी।

इस कैफियत को देखकर महाराज सुरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह, गोपालसिंह, जीतसिंह, तेजसिंह वगैरह तथा ऐयार लोग हैरान हो गए और हद से ज्यादा ताज्जुब करने लगे। लड़ाई के फन की ऐसी कोई बात नहीं बच गई थी जो इसमें न दिखाई पड़ी हो। कई तरह की घुसबन्दी और किलेबन्दी के साथ ही साथ घुड़सवारों की कारीगरी ने सभी को सकते में डाल दिया और सभी के मुँह से बार-बार 'वाह-वाह' की आवाज निकलती रही। यह तमाशा कई घण्टे में खतम हुआ और इसके बाद एकदम से अन्धकार हो गया, उस समय इन्द्रजीतसिंह ने तिलिस्मी खंजर की रोशनी की और देवीसिंह ने इशारा पाकर कमरे में रोशनी कर दी जो पहले बुझा दी गई थी।

इस समय रात थोड़ी-सी बच गई थी जो सभी ने सोकर बिता दी, मगर स्वप्न में भी इसी तरह के खेल-तमाशे देखते रहे। जब सब की आँखें खुलीं तो दिन घण्टे भर से ज्यादा चढ़ चुका था। घबड़ा कर सब कोई उठ खड़े हुए और कमरे के बाहर निकल कर जरूरी कामों से छुट्टी पाने का बन्दोबस्त करने लगे। इस समय जिन चीजों की सभी को जरूरत पड़ी वे सब चीजें वहाँ मौजूद पाई गईं, मगर उन दोनों स्त्रियों पर किसी की निगाह न पड़ी जिन्हें यहाँ आने के साथ ही सभी ने देखा था।

7

जरूरी कामों से छुट्टी पाकर ऐयारों ने रसोई बनाई, क्योंकि इस बँगले में खाने-पीने की सभी चीजें मौजूद थीं और सभी ने खुशी-खुशी भोजन किया। इसके बाद सब कोई उसी कमरे में आ बैठे जिसमें रात को चलती-फिरती तस्वीरों का तमाशा देखा

था। इस समय भी सभी की निगाहें ताज्जुब के साथ उन्हीं तस्वीरों पर पड़ रही थीं।

सुरेन्द्रसिंह—मैं बहुत गौर कर चुका मगर अभी तक समझ में न आया कि इन तस्वीरों में किस तरह की कारीगरी खर्च की गई है जो ऐसा तमाशा दिखाती हैं। अगर मैं अपनी आँखों से इस तमाशे को देखे हुए न होता और कोई गैर आदमी मेरे सामने ऐसे तमाशे का जिक्र करता तो मैं उसे पागल ही समझता, मगर अब स्वयं देख लेने पर भी विश्वास नहीं होता कि दीवार पर लिखी तस्वीरें इस तरह काम करेंगी।

जीतसिंह—बेशक ऐसी ही बात है। इतना देखकर भी किसी के सामने यह कहने का हौसला न होगा कि मैंने ऐसा तमाशा देखा था और सुनने वाला भी कभी विश्वास न करेगा।

ज्योतिषीजी - आखिर यह एक तिलिस्म ही है, इसमें सभी बातें आश्चर्य की ही दिखायी देती हैं।

जीतसिंह—चाहे यह तिलिस्म हो मगर इसके बनाने वाले तो आदमी ही थे। जो बात मनुष्य के किये नहीं हो सकती वह तिलिस्म में भी नहीं दिखाई दे सकती।

गोपालसिंह—आपका कहना बहुत ठीक है, तिलिस्म की बातें चाहे कैसा ही ताज्जुब पैदा करने वाली क्यों न हों मगर गौर करने से उनकी कारीगरी का पता लग ही जायगा। आपने बहुत ठीक कहा, आखिर तिलिस्म के बनानेवाले भी तो मनुष्य ही थे!

वीरेन्द्रसिंह — जब तक समझ में न आवे तब तक उसे चाहे कोई जादू कहे या करामात कहे मगर हम लोग सिवाय कारीगरी के कुछ भी नहीं कह सकते और पता लगाने तथा भेद मालूम हो जाने पर यह बात सिद्ध हो ही जाती है। इन चित्रों की कारीगरी पर भी अगर गौर किया जायगा तो कुछ न कुछ पता लग ही जायगा। ताज्जुब नहीं कि इन्द्रजीतसिंह को इसका भेद मालूम हो।

सुरेन्द्रसिंह—बेशक इन्द्रजीत को इसका भेद मालूम होगा ही। (इन्द्रजीतसिंह की तरफ देखकर) तुमने किस तरकीब से इन तस्वीरों को चलाया था?

इन्द्रजीतसिंह—(मुस्कुराते हुए) मैं आपसे अर्ज करूँगा और यह भी बताऊँगा कि इसमें भेद क्या है। मालूम हो जाने पर आप इसे एक साधारण बात ही समझेंगे। पहली दफा जब मैंने इस तमाशे को देखा था, तो मुझे भी बड़ा ही ताज्जुब पैदा हुआ था, मगर तिलिस्मी किताब की मदद से जब मैं इस दीवार के अन्दर पहुँचा तो सब भेद खुल गया।

सुरेन्द्रसिंह—(खुश होकर) तब तो हम लोग बेकार ही परेशान हो रहे हैं और इतना सोच-विचार कर रहे हैं। तुम अब तक चुप क्यों थे?

गोपालसिंह—ऐयारों की तबीयत देख रहे थे।

सुरेन्द्रसिंह—खैर बताओ तो सही कि इसमें क्या कारीगरी है?

इतना सुनते ही इन्द्रजीतसिंह उठ कर उस दीवार के पास चले गये और सुरेन्द्रसिंह की तरफ देखकर बोले, "आप जरा तकलीफ कीजिए तो मैं इस भेद को भी समझा दूं!"

महाराज सुरेन्द्रसिंह उठकर कुमार के पास चले गये और उनके पीछे-पीछे और लोग भी वहाँ जाकर खड़े हो गये। इन्द्रजीतसिंह ने दीवार पर हाथ फेरकर सुरेन्द्रसिंह

से कहा, "देखिये, असल में इस दीवार पर किसी तरह की चित्रकारी या तस्वीर नहीं है, दीवार साफ है और वास्तव में शीशे की है, तस्वीरें जो दिखाई देती हैं वे इसके अन्दर और दीवार से अलग हैं।"

कुमार की बात सुनकर सभी ने ताज्जुब के साथ उस दीवार पर हाथ फेरा और जीतसिंह ने खुश होकर कहा—"ठीक है, अब हम इस कारीगरी को समझ गए ! ये तस्वीरें अलग-अलग किसी धातु के टुकड़ों पर बनी हुई हैं और ताज्जुब नहीं कि तार या कमानी पर जड़ी हों, किसी तरह की शक्ति पाकर उस तार या कमानी में हरकत होती है और उस समय ये तस्वीरें चलती हुई दिखाई देती हैं।"

इन्द्रजीतसिंह—बेशक यही बात है, देखिये, अब मैं इन्हें फिर चलाकर आपको दिखाता हूँ और इसके बाद दीवार के अन्दर ले चलकर सब भ्रम दूर कर दूँगा।

इस दीवार में जिस जगह जमानिया के किले की तस्वीर बनी थी, उसी जगह किले के बुर्ज के ठिकाने पर कई सूराख भी दिखाये गये थे जिनमें से एक छेद (सूराख) वास्तव में सच्चा था पर वह केवल इतना ही लम्बा-चौड़ा था कि एक मामूली खंजर का कुछ हिस्सा उसके अन्दर जा सकता था इन्द्रजीतसिंह ने कमर से तिलिस्मी खंजर निकाल कर उसके अन्दर डाल दिया और महाराज सुरेन्द्रसिंह तथा जीतसिंह की तरफ देखकर कहा "इस दीवार के अन्दर जो पुर्जे बने हैं, वे बिजली का असर पहुँचने ही से चलने-फिरने या हिलने लगते हैं। इस तिलिस्मी खंजर में आप जानते ही हैं कि पूरे दर्जे की बिजली भरी हुई है, अस्तु, उन पुर्जों के साथ इनका संयोग होने ही से काम हो जाता है।

इतना कहकर इन्द्रजीतसिंह चुपचाप खड़े हो गये और सभी ने बड़े गौर से उन तस्वीरों को देखना शुरू किया बल्कि महाराज सुरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह, जीतसिंह, तेजसिंह और राजा गोपालसिंह ने तो कई तस्वीरों के ऊपर हाथ भी रख दिया। इतने ही में दीवार चमकने लगी और इसके बाद तस्वीरों ने वही रंगत पैदा की जो हम ऊपर के बयान में लिख आये हैं। महाराज और राजा गोपालसिंह वगैरह ने जो अपना हाथ तस्वीरों पर रख दिया था वह ज्यों का त्यों बना रहा और तस्वीरें उनके हाथों के नीचे से निकलकर इधर-उधर आने-जाने लगीं जिसका असर उनके हाथों पर कुछ भी नहीं होता था। इस सबब से सभी को निश्चय हो गया कि उन तस्वीरों का इस दीवार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इस बीच में कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने अपना तिलिस्मी खंजर दीवार के अन्दर से खींच लिया। उसी समय दीवार का चमकना बन्द हो गया और तस्वीरें जहाँ की तहाँ खड़ी हो गईं अर्थात् जो जितनी चल चुकी थीं, उतनी ही चलकर रुक गईं। दीवार पर गौर करने से मालूम होता था कि तस्वीरें पहले ढंग की नहीं बल्कि दूसरे ही ढंग की बनी हुई हैं।

जीतसिंह—यह भी बड़े मजे की बात है, लोगों को तस्वीरों के विषय में धोखा देने और ताज्जुब में डालने के लिए इससे बढ़कर कोई खेल नहीं हो सकता।

तेजसिंह—जी हाँ, एक दिन में पचासों तरह की तस्वीरें इस दीवार पर लोगों को दिखा सकते हैं, पता लगना तो दूर रहा गुमान भी नहीं हो सकता कि यह क्या मामला है और ऐसी अनूठी तस्वीरें नित्य क्यों बन जाती हैं।

सुरेन्द्रसिंह—बेशक यह खेल मुझे बहुत अच्छा मालूम हुआ। परन्तु अब इन तस्वीरों को ठीक अपने ठिकाने पर पहुँचाकर छोड़ देना चाहिए।

"बहुत अच्छा" कहकर इन्द्रजीतसिंह आगे बढ़ गये और पुनः तिलिस्मी खंजर उसी सूराख में डाल दिया जिससे उसी तरह दीवार चमकने और तस्वीरें चलने लगीं। ताज्जुब के साथ लोग उसका तमाशा देखते रहे। कई घण्टे के बाद जब तस्वीरों की यह लीला समाप्त हुई और एक विचित्र ढंग के खटके की आवाज आई, तब इन्द्रजीतसिंह ने दीवार के अन्दर से तिलिस्मी खंजर निकाल लिया और दीवार का चमकना भी बन्द हो गया।

इस तमाशे से छुट्टी पाकर महाराज सुरेन्द्रसिंह ने इन्द्रजीतसिंह की तरफ देखा और कहा, "अब हम लोगों को इस दीवार के अन्दर ले चलो।"

इन्द्रजीतसिंह—जो आज्ञा, पहले बाहर से जाँच कर आप अन्दाजा कर लें कि यह दीवार कितनी मोटी है।

सुरेन्द्रसिंह—इसका अन्दाज हमें मिल चुका है, दूसरे कमरे में जाने के लिए इसी दीवार में जो दरवाजा है उसकी मोटाई से पता लग जाता है जिस पर हमने गौर किया है।

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा तो अब एक दफे आप पुनः उसी दूसरे कमरे में चलें क्योंकि इस दीवार के अन्दर जाने का रास्ता उधर ही से है।

इन्द्रजीतसिंह की बात सुनकर महाराज सुरेन्द्रसिंह तथा और सब लोग उठ खड़े हुए और कुमार के साथ-साथ पुनः उसी कमरे में गए जिसमें दो चबूतरे बने हुए थे।

इस कमरे में तस्वीर वाले कमरे की तरफ जो दीवार थी, उसमें एक आलमारी का निशान दिखाई दे रहा था और उसके बीचोंबीच में लोहे की एक खूँटी गड़ी हुई थी जिसे इन्द्रजीतसिंह ने उमेठना शुरू किया। तीस-पैंतीस दफे उमेठ कर अलग हो गए और दूर खड़े होकर उस निशान की तरफ देखने लगे। थोड़ी देर बाद वह आलमारी हिलती हुई मालूम पड़ी और फिर यकायक उसके दोनों पल्ले दरवाजे की तरह खुल गए। साथ ही उसके अन्दर से दो औरतें निकलती हुई दिखाई पड़ी जिनमें एक तो भूतनाथ की स्त्री थी और दूसरी देवीसिंह की स्त्री चम्पा। दोनों औरतों पर निगाह पड़ते ही भूतनाथ और देवीसिंह चमक उठे और उनके ताज्जुब की कोई हद न रही, साथ ही इसके दोनों ऐयारों को क्रोध भी चढ़ आया और लाल-लाल आँखें करके उन औरतों की तरफ देखने लगे। उन्हीं के साथ-ही-साथ और लोगों ने भी ताज्जुब के साथ उन औरतों को देखा।

इस समय उन दोनों औरतों का चेहरा नकाब से खाली था, मगर भूतनाथ और देवीसिंह के चेहरे पर निगाह पड़ते ही उन दोनों ने आँचल से अपना चेहरा छिपा लिया और पलट कर पुनः उसी आलमारी के अन्दर जा लोगों की निगाह से गायब हो गईं। उनकी इस करतूत ने भूतनाथ और देवीसिंह के क्रोध को और भी बढ़ा दिया।

8

अब हम पीछे की तरफ लौटते हैं और पुनः उस दिन का हाल लिखते हैं जिस दिन महाराज सुरेन्द्रसिंह और वीरेन्द्रसिंह वगैरह तिलिस्मी तमाशा देखने के लिए रवाना हुए हैं। हम ऊपर के बयान में लिख आये हैं कि उस समय महाराज और कुमार लोगों के साथ भैरोंसिंह और तारासिंह न थे, अर्थात् वे दोनों घर पर ही रह गए थे, अतः इस समय उन्हीं दोनों का हाल लिखना बहुत जरूरी हो गया है।

महाराज सुरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह, कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह वगैरह के चले जाने के बाद भैरोंसिंह अपनी माँ से मिलने के लिए तारासिंह को साथ लिए हुए महल में गये। उस समय चपला अपनी प्यारी सखी चम्पा के कमरे में बैठी हुई धीरे-धीरे कुछ बातें कर रही थी जो भैरोंसिंह और तारासिंह को आते देख चुप हो गई और इन दोनों की तरफ देखकर बोली, "क्या महाराज तिलिस्मी तमाशा देखने के लिए गए?"

भैरोंसिंह—हाँ, अभी थोड़ी ही देर हुई है कि वे लोग उसी पहाड़ी की तरफ रवाना हो गए।

चपला—(चम्पा से) तो अब तुम्हें भी तैयार हो जाना पड़ेगा।

चम्पा—जरूर, मगर तुम भी क्यों नहीं चलतीं?

चपला—जी तो मेरा यही चाहता है मगर मामा साहब की आज्ञा हो तब तो!

चम्पा—जहाँ तक मैं खयाल करती हूँ, वे कभी इनकार न करेंगे। बहिन, जब से मुझे यह मालूम हुआ कि इन्द्रदेव तुम्हारे मामा होते हैं तब से मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

चपला—मगर मेरी खुशी का तुम अन्दाजा नहीं कर सकतीं, खैर, इस समय असल काम की तरफ ध्यान देना चाहिए। (भैरोंसिंह और तारासिंह की तरफ देखकर) कहो, तुम लोग इस समय यहाँ कैसे आये?

तारासिंह—(चपला के हाथ में एक पुर्जा देकर) जो कुछ है, इसी से मालूम हो जायगा।

चपला ने तारासिंह के हाथ से पुर्जा लेकर पढ़ा और फिर चम्पा के हाथ में देकर कहा, "अच्छा, जाओ कह दो कि हम लोगों के लिए किसी तरह का तरद्दुद न करें, मैं अभी जाकर कमलिनी और लक्ष्मीदेवी से मुलाकात करके सब बातें तय कर लेती हूँ।"

"बहुत अच्छा" कहकर भैरोंसिंह और तारासिंह वहाँ से रवाना हुए और इन्द्रदेव के डेरे की तरफ चले गये।

जिस समय महाराज सुरेन्द्रसिंह वगैहर तिलिस्मी कैफियत देखने के लिए रवाना हुए हैं उसके दो या तीन घड़ी बाद घोड़े पर सवार इन्द्रदेव भी अपने चेहरे पर नकाब डाले हुए उसी पहाड़ी की तरफ रवाना हुए मगर वे अकेले न थे, बल्कि और भी तीन नकाबपोश उनके साथ थे। जब ये चारों आदमी उस पहाड़ी के पास पहुँच गए तो कुछ देर के लिए रुके और आपस में यों बातचीत करने लगे—

इन्द्रदेव—ताज्जुब है कि अभी तक हमारे आदमी लोग यहाँ नहीं पहुँचे।

दूसरा—और जब तक वे लोग न आवेंगे तब तक हमें यहाँ अटकना पड़ेगा।

इन्द्रदेव—बेशक !

तीसरा—व्यर्थ यहाँ अटके रहना तो अच्छा न होगा।

इन्द्रदेव—तब क्या किया जाय ?

तीसरा—आप लोग जल्दी से वहाँ पहुँचकर अपना काम कीजिये और मुझे अकेले इसी जगह छोड़ दीजिए, मैं आपके आदमियों का इन्तजार करूँगा और जब वे आ जायँगे तो सब चीजें लिए आपके पास पहुँच जाऊँगा।

इन्द्रदेव—अच्छी बात है, मगर उन सब चीजों को क्या तुम अकेले उठा लोगे ?

तीसरा—उन सब चीजों की क्या हकीकत है, कहिए तो आपके आदमियों को भी उन चीजों के साथ पीठ पर लाद कर लेता आऊँ।

इन्द्रदेव—शाबाश ! अच्छा रास्ता तो न भूलोगे ?

तीसरा—कदापि नहीं, अगर मेरी आँखों पर पट्टी बाँध कर भी आप वहाँ तक ले गये होते तब भी मैं रास्ता न भूलता और टटोलता हुआ वहाँ तक पहुँच ही जाता।

इन्द्रदेव—(हँस कर) बेशक तुम्हारी चालाकी के आगे यह कोई कठिन काम नहीं है। अच्छा हम लोग जाते हैं, तुम सब चीजें लेकर हमारे आदमियों को फौरन वापस कर देना।

इतना कह कर इन्द्रदेव ने उस तीसरे नकाबपोश को उसी जगह छोड़ा और दो नकाबपोशों को साथ लिए हुए आगे की तरफ बढ़े।

जिस सुरंग की राह से राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह उस तिलिस्मी बँगले में गये थे उससे लगभग आध कोस उत्तर को हटकर और भी एक सुरंग का छोटा सा मुहाना था जिसका बाहरी हिस्सा जंगली लताओं और बेलों से बहुत ही छिपा हुआ था। इन्द्रदेव दोनों नकाबपोशों को साथ लिए तथा पेड़ों की आड़ देकर चलते हुए इसी दूसरी सुरंग के मुहाने पर पहुँचे और जंगली लताओं को हटा कर बड़ी होशियारी से इस सुरंग के अन्दर घुस गये।

9

देवीसिंह को चम्पा की सचाई पर भरोसा था और वह उसे बहुत ही नेक तथा पतिव्रता भी समझते थे, जिस पर चम्पा ने देवीसिंह के चरणों की कसम खाकर विश्वास दिला दिया था कि वह नकाबपोशों के घर में नहीं गई और कोई सबब न था कि देवीसिंह चम्पा की बात झूठ समझते। इस जगह यद्यपि देवीसिंह पुनः चम्पा को देखकर क्रोध में आ गये थे, मगर तुरन्त ही नीचे लिखी बातें विचार कर ठण्डे हो गये और सोचने लगे—

"क्या मुझे पहचानने में धोखा हुआ ? नहीं-नहीं, मेरी आँखें ऐसी गन्दी नहीं है। तो क्या वास्तव में वह चम्पा ही थी जिसे अभी मैंने देखा या पहले भी देखा था !

यह भी नहीं हो सकता! चम्पा जैसी नेक औरत कसम खाकर मुझसे झूठ भी नहीं बोल सकती। हाँ, उसने क्या कसम खाई थी? यही कि "मैं आपके चरणों की कसम खाकर कहती हूँ कि मुझे कुछ भी याद नहीं कि आप कब की बात कर रहे हैं।" ये ही उसके शब्द हैं, मगर यह कसम तो ठीक नहीं। यहाँ आने के बारे में उसने कसम नहीं खाई बल्कि अपनी याद के बारे में कसम खाई है, जिसे ठीक नहीं भी कह सकते। तो क्या उसने वास्तव में मुझे भूलभुलैये में डाल रक्खा है? खैर यदि ऐसा भी हो तो मुझे रंज न होना चाहिए क्योंकि वह नेक है। यदि ऐसा किया भी होगा तो किसी अच्छे ही मतलब से किया होगा या फिर कुमारों की आज्ञा से किया होगा।"

ऐसी बातों को सोचकर देवीसिंह ने अपने क्रोध को ठण्डा किया, मगर भूतनाथ की बेचैनी दूर नहीं हुई।

वे दोनों औरतें जब आलमारी के अन्दर घुसकर गायब हो गईं तब हमारे दोनों कुमार तथा महाराज सुरेन्द्रसिंह और वीरेन्द्रसिंह ने भी उसके अन्दर पैर रक्खा। दरवाजे के साथ दाहिनी तरफ एक तहखाने के अन्दर जाने का रास्ता था जिसके बारे में दरियाफ्त करने पर इन्द्रजीतसिंह ने बयान किया कि "यह जमानिया जाने का रास्ता है, तहखाने में उतर जाने के बाद एक सुरंग मिलेगी जो बराबर जमानिया तक चली गई है।" इन्द्रजीतसिंह की बात सुनकर देवीसिंह और भूतनाथ को विश्वास हो गया कि दोनों औरतें इसी तहखाने में उतर गई हैं जिससे उन्हें भागने के लिए काफी जगह मिल सकती है। भूतनाथ ने देवीसिंह की तरफ देखकर इशारे से कहा कि "इस तहखाने में चलना चाहिए।" मगर जवाब में देवीसिंह ने इशारे से ही इनकार करके अपनी लापरवाही जाहिर कर दी।

उस दीवार के अन्दर इतनी जगह न थी कि सब कोई एक साथ ही जाकर वहाँ की कैफियत देख सकते, अतएव दो-तीन दफे करके सब कोई उसके अन्दर गये और उन सब पुरजों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए जिनके सहारे वे तस्वीरें चलती-फिरती और काम करती थीं। जब सब लोग उस कैफियत को देख चुके तब उस दीवार का दरवाजा बंद कर दिया गया।

इस काम से छुट्टी पाकर सब लोग इन्द्रजीतसिंह की इच्छानुसार उस चबूतरे के पास आए जिस पर सुफेद पत्थर की खूबसूरत पुतली बैठी हुई थी। इन्द्रजीतसिंह ने सुरेन्द्रसिंह की तरफ देखकर कहा, "यदि आज्ञा हो तो मैं इस दरवाजे को खोलूँ और आपको तिलिस्म के अन्दर ले चलूँ।"

सुरेन्द्रसिंह—हम भी यही चाहते हैं कि अब तिलिस्म के अन्दर चलकर वहाँ की कैफियत देखें, मगर यह तो बताओ कि जब इस चबूतरे के अन्दर जाने के बाद हम यह तिलिस्म देखते हुए चुनारगढ़ वाले तिलिस्म की तरफ रवाना होंगे, तो वहाँ पहुँचने में कितनी देर लगेगी?

इन्द्रजीतसिंह—कम-से-कम बारह घण्टे। तमाशा देखने के सबब से यदि इससे ज्यादा देर हो जाय तो भी कोई ताज्जुब नहीं।

सुरेन्द्रसिंह—रात हो जाने के सबब किसी तरह का हर्ज तो न होगा?

इन्द्रजीतसिंह—कुछ भी नहीं ! रात-भर बराबर तमाशा देखते हुए हम लोग चले जा सकते हैं।

सुरेन्द्रसिंह—खैर, तब तो कोई हर्ज नहीं।

इन्द्रजीतसिंह ने पुतली वाले चबूतरे का दरवाजा उसी ढंग से खोला जैसे पहले खोल चुके थे और सभी को लिए हुए नीचे वाले तहखाने में पहुँचे, जिसमें बड़े-बड़े हण्डे अशर्फियों और जवाहरात से भरे हुए रखे थे।

इस कमरे में दो दरवाजे भी थे जिनमें से एक तो खुला हुआ था और दूसरा बन्द। खुले हुए दरवाजे के बारे में दरियाफ्त करने पर कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने बयान किया कि यह रास्ता जमानिया को गया है और हम दोनों भाई तिलिस्म तोड़ते हुए इसी राह से आये हैं। यहाँ से बहुत दूर पर एक स्थान है जिसका नाम तिलिस्मी किताब में 'ब्रह्म-मण्डल' लिखा हुआ है, उस जगह से भी मुझे एक छोटी-सी किताब मिली थी जिसमें इस विचित्र बँगले का पूरा हाल लिखा हुआ था कि तिलिस्म (चुनारगढ़ वाला) तोड़ने वाले के लिए क्या-क्या जरूरी है। उस किताब को चुनारगढ़ तिलिस्म की चाबी कहें तो अनुचित न होगा। वह किताब इस समय मौजूद नहीं है क्योंकि पढ़ने के बाद वह तिलिस्म तोड़ने के काम में खर्च कर दी गई। उस स्थान (ब्रह्म-मण्डल) में बहुत-सी तस्वीरें देखने योग्य हैं और वहाँ की सैर करके भी आप बहुत प्रसन्न होंगे।"

सुरेन्द्रसिंह—हम जरूर उस स्थान को देखेंगे, मगर अभी नहीं। हाँ, और यह दूसरा दरवाजा जो बन्द है, कहाँ जाने के लिए है ?

इन्द्रजीतसिंह—यही चुनारगढ़ वाले तिलिस्म में जाने का रास्ता है। इस समय यही दरवाजा खोला जायगा और हम लोग इसी राह से जायँगे।

सुरेन्द्रसिंह—खैर, तो अब इसे खोलना चाहिए।

पाठक, आपको इस सन्तति के पढ़ने से मालूम होता ही होगा कि अब यह उपन्यास समाप्ति की तरफ चला जा रहा है। हमारे लिखने के लिए अब सिर्फ दो बातें रह गई हैं, एक तो इस चुनारनगढ़ वाले तिलिस्म की कैफियत और दूसरे दुष्ट कैदियों का मुकदमा, जिसके साथ बचे-बचाये भेद भी खुल जायेंगे। हमारे पाठकों में से बहुत से ऐसे हैं जिनकी रुचि अब तिलिस्मी तमाशे की तरफ कम झुकती है परन्तु उन पाठकों की संख्या बहुत ज्यादा है जो तिलिस्म के तमाशे को पसन्द करते हैं और उसकी अवस्था विस्तार के साथ दिखाने अथवा लिखने के लिए बराबर जोर दे रहे हैं। इस उपन्यास में जो कुछ तिलिस्मी बातें लिखी गई हैं यद्यपि वे असम्भव नहीं और विज्ञान-वेत्ता अथवा साइंस जानने वाले जरूर कहेंगे कि 'हाँ ऐसी चीजें तैयार हो सकती हैं।' तथापि बहुत से अनजान आदमी ऐसे भी हैं जो इसे बिल्कुल खेल ही समझते हैं और कई इसकी देखा-देखी अपनी लिखी अनूठी किताबों में असम्भव बातें लिखकर तिलिस्म के नाम को बदनाम भी करने लग गये हैं, इसलिए हमारा ध्यान अब तिलिस्म लिखने की तरफ नहीं झुकता मगर क्या किया जाय लाचारी है, एक तो पाठकों की रुचि की तरफ ध्यान देना पड़ता है दूसरे चुनारगढ़ के चबूतरे वाले तिलिस्म की कैफियत लिखे बिना भीकाम नहीं चलता जिसे इस उपन्यास की बुनियाद ही कहना चाहिए और जिसके लिए

चन्द्रकान्ता उपन्यास में वादा कर चुके हैं। अतः इस जगह चुनारगढ़ के चबूतरे वाले तिलिस्म की कैफियत लिखकर इस पक्ष को पूरा करते हैं, तब उसके बाद दोनों कुमारों की शादी और कैदियों के मामले की तरफ ध्यान देकर इस उपन्यास को पूरा करेंगे।

महाराज की आज्ञानुसार इन्द्रजीतसिंह दरवाजा खोलने के लिए तैयार हो गये। इस दरवाजे के ऊपर वाले महराब में किसी धातु के तीन मोर बने हुए थे जो हरदम हिला ही करते थे। कुमार ने उन तीनों मोरों की गर्दन घुमाकर एक में मिला दी, उसी समय दरवाजा भी खुल गया और कुमार ने सभी को अन्दर जाने के लिए कहा। जब सब उसके अन्दर चले गये, तब कुमार ने भी उन मोरों को छोड़ दिया और दरवाजे के अन्दर जाकर महाराज से कहा, "यह दरवाजा इसी ढंग से खुलता है, मगर इसके बन्द करने की कोई तरकीब नहीं है, थोड़ी देर में आप से आप बन्द हो जायगा। देखिए, इस तरफ भी दरवाजे के ऊपर वाले महराब में उसी तरह के मोर बने हुए हैं अतएव इधर से भी दरवाजा खोलने के समय वही तरकीब करनी होगी।"

दरवाजे के अन्दर जाने के बाद तिलिस्मी खंजर से रोशनी करने की जरूरत न रही क्योंकि यहाँ की छत में कई सूराख ऐसे बने हुए थे जिनमें से रोशनी बखूबी आ रही थी और आगे की तरफ निगाह दौड़ाने से यह भी मालूम होता था कि थोड़ी दूर जाने के बाद हम लोग मैदान में पहुँच जायेंगे जहाँ से खुला आसमान बखूबी दिखाई देगा, अतः तिलिस्मी खंजर की रोशनी बन्द कर दी गई और दोनों कुमारों के पीछे-पीछे सब कोई आगे की तरफ बढ़े। लगभग डेढ़ सौ कदम तक जाने के बाद एक खुला हुआ दरवाजा मिला जिसमें चौखट या किवाड़ कुछ भी न था। इस दरवाजे के बाहर होने पर सभी ने अपने को संगमर्मर के छोटे से एक दालान में पाया और आगे की तरफ छोटा-सा बाग देखा जिसकी रविशें निहायत खूबसूरत स्याह और सुफेद पत्थरों से बनी हुई थीं मगर पेड़ों की किस्म में से केवल कुछ जंगली पौधों और लताओं की हरियाली मात्र ही बाग का नाम चरितार्थ करने के लिए दिखाई दे रही थी। इस बाग के चारों तरफ चार दालान चार ढंग के बने हुए थे और बीच में छोटे-छोटे कई चबूतरे और नहर की तौर पर सुन्दर और पतली नालियाँ बनी हुई थीं जिनमें पहाड़ से गिरते हुए झरने का साफ जल बहकर वहाँ के पेड़ों को तरी पहुँचा रहा था और देखने में भी बहुत भला मालूम होता था। मैदान में से निकलकर और आँख उठाकर देखने पर बाग के चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे हरे-भरे पहाड़ दिखाई दे रहे थे और वे इस बात की गवाही दे रहे थे कि यह बाग पहाड़ी की तराई अथवा घाटी में इस ढंग से बना हुआ है कि बाहर से किसी आदमी की इसके अन्दर आने की हिम्मत नहीं हो सकती और न कोई इसके अन्दर से निकलकर बाहर ही जा सकता है।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने महाराज सुरेन्द्रसिंह की तरफ देखकर कहा, "उस चबूतरे वाले तिलिस्म के दो दर्जे हैं, एक तो यही बाग है और दूसरा उस चबूतरे के पास पहुँचने पर मिलेगा। इस बाग में आप जितने खूबसूरत चबूतरे देख रहे हैं सभी के अन्दर बेअन्दाज दौलत भरी पड़ी है। जिस समय हम दोनों यहाँ आये थे इन चबूतरों का छूना बल्कि इनके पास पहुँचना भी कठिन हो रहा था। (एक चबूतरे के पास ले जाकर)

देखिये, चबूतरे के बगल में नीचे की तरफ कड़ी लगी हुई है और इसके साथ नथी हुई जो बारीक जंजीर है वह (हाथ का इशारा करके) इस तरफ एक कुएँ में गिरी हुई है। इसी तरह हरएक चबूतरे में कड़ी और जंजीर लगी हुई है जो सब उसी कुएँ में जाकर इकट्ठी हुई हैं। मैं नहीं कह सकता कि उस कुएँ के अन्दर क्या है, मगर उसकी तासीर यह थी कि इन चबूतरों को कोई छू नहीं सकता था। इसके अतिरिक्त आपको यह सुनकर ताज्जुब होगा कि उस चुनार वाले तिलिस्मी चबूतरे में भी जिस पर पत्थर का (असल में किसी धातु का) आदमी सोया हुआ है, एक जंजीर लगी हुई है और वह जंजीर भी भीतर-ही-भीतर यहाँ तक आकर उसी कुएँ में गिरी हुई है जिसमें वे सब जंजीरें इकट्ठी हुई हैं, बस यही और इतना ही यहाँ का तिलिस्म है। इसके अतिरिक्त दरवाजों को छिपाने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। हम दोनों भाइयों को तिलिस्मी किताब की बदौलत यह सब हाल मालूम हो चुका था, अतएव जब हम दोनों भाई यहाँ आए थे तो इन चबूतरों से बिल्कुल हटे रहते थे। पहला काम हम लोगों ने जो किया वह यही था कि ये नालियाँ जो पानी से भरी और बहती हुई आप देख रहे हैं, जिस पहाड़ी झरने की बदौलत लबालब हो रही हैं उसमें से एक नई नाली खोदकर उसका पानी उसी कुएँ में गिरा दिया जिसमें सब जंजीरें इकट्ठी हुई हैं क्योंकि वह चश्मा भी उस कुएँ के पास ही है और अभी तक उसका पानी उस कुएँ में बराबर गिर रहा है। जब उस चश्मे का पानी (कई घण्टे तक) कुएँ के अन्दर गिरा तब इन चबूतरों का तिलिस्मी असर जाता रहा और ये छूने के लायक हुए मानो उस कुएँ में बिजली की आग भरी हुई थी जो पानी गिरने से ठंडी हो गई। हम दोनों भाइयों ने तिलिस्मी खंजर से सब जंजीरों को काट-काट इन चबूतरों का और उस चुनारगढ़ वाले तिलिस्मी चबूतरे का भी सम्वन्ध उस कुएँ से छुड़ा दिया, इसके बाद इन चबूतरों को खोलकर देखा और मालूम किया कि इनके अन्दर क्या है। अब आपकी आज्ञा होगी तो ऐयार लोग इस दौलत को चुनारगढ़ या जहाँ आप कहेंगे, वहाँ पहुँचा देंगे।"

इसके बाद इन्द्रजीतसिंह ने महाराज की आज्ञानुसार उन चबूतरों का ऊपरी हिस्सा, जो सन्दूक के पल्ले की तरह खुलता था, खोल-खोलकर दिखाया। महाराज तथा और सब कोई यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि उनमें बेहिसाब धन-दौलत और जेवरों के अतिरिक्त बहुत-सी अनमोल चीजें भी भरी हुई हैं जिनमें से दो चीजें महाराज ने बहुत पसन्द कीं। एक तो जड़ाऊ सिंहासन जिसमें अनमोल हीरे और माणिक विचित्र ढंग से जड़े हुए थे और दूसरा किसी धातु का बना हुआ एक चन्द्रमा था। इस चन्द्रमा में दो पल्ले थे, जब दोनों पल्ले एक साथ मिला दिये जाते तो उसमें से चन्द्रमा की तरह साफ और निर्मल तथा बहुत दूर तक फैलने वाली रोशनी पैदा होती थी।

उन चबूतरों के अन्दर की चीजों को देखते-ही-देखते तमाम दिन बीत गया। उस समय कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने महाराज की तरफ देखकर कहा, "इस बाग में इन चबूतरों के सिवाय और कोई चीज देखने योग्य नहीं है और अब रात भी हो गई है, इसलिए यद्यपि आगे की तरफ जाने में कोई हर्ज तो नहीं है, मगर आज की रात इसी बाग में ठहर जाते तो अच्छा था।"

भूतनाथ—क्या आज की रात भूखे-प्यासे ही बितानी पड़ेगी ?

इन्द्रजीतसिंह—(मुस्कुराते हुए) प्यासे तो नहीं कह सकते, क्योंकि पानी का चश्मा बह रहा है जितना चाहो पी सकते हो, मगर खाने के नाम पर तब तक कुछ नहीं मिल सकता जब तक कि हम चुनारगढ़ वाले तिलिस्मी चबूतरे से बाहर न हो जायँ।

जीतसिंह—खैर, कोई चिन्ता नहीं, ऐयारों के बटुए खाली न होंगे, कुछ-न-कुछ खाने की चीजें उनमे जरूर होंगी।

सुरेन्द्रसिंह—अच्छा, अब जरूरी कामों से छुट्टी पाकर किसी दालान में आराम करने का बन्दोबस्त करना चाहिए।

महाराज की आज्ञानुसार सब कोई जरूरी कामों से निपटने की फिक्र में लगे और इसके बाद एक दालान में आराम करने के लिए बैठ गये। खास-खास लोगों के लिए ऐयारों ने अपने सामान में से बिस्तरे का इन्तजाम कर दिया।

10

यह दालान जिसमें इस समय महाराज सुरेंद्रनसिंह वगैरह आराम कर रहे हैं, बनिस्बत उस दालान के, जिसमें ये लोग पहले-पहल पहुँचे थे, वड़ा और खूबसूरत बना हुआ था। तीन तरफ दीवार थी और बाग की तरफ तेरह खम्भे और महराब लगे हुए थे जिससे इसे वारहदरी भी कह सकते हैं। इसकी कुर्सी लगभग ढाई हाथ के ऊँची थी और इसके ऊपर चढ़ने के लिए पाँच सीढ़ियाँ बनी हुई थी। बारहदरी के आगे की तरफ कुछ सहन छूटा हुआ था जिसकी जमीन (फर्श) संगमर्मर और संगमूसा के चौखूटे पत्थरों से बनी हुई थी। बारहदरी की छत में मीनाकारी का काम किया हुआ था और तीनों तरफ की दीवारों में कई आलमारियाँ भी थीं।

रात पहर भर से कुछ ज्यादा जा चुकी थी। इस बारहदरी में, जिसमें सब कोई आराम कर रहे थे, एक आलमारी की कार्निस के ऊपर मोमबत्ती जल रही थी जो देवीसिंह ने अपने ऐयारी के बटुए में से निकालकर जलाई थी। किसी को नींद नहीं आयी थी बल्कि सब लग बैठे हुए आपस में बातें कर रहे थे। महाराज सुरेन्द्रसिंह बाग की तरफ मुँह किए बैठे थे और उन्हें सामने की पहाड़ी का आधा हिस्सा भी, जिस पर इस समय अन्धकार की बारीक चादर पड़ी हुई थी, दिखाई दे रहा था। उस पहाड़ी पर यकायक मशाल की रोशनी देखकर महाराज चौंके और सभी को उस तरफ देखने का इशारा किया।

सभी ने उस रोशनी की तरफ ध्यान दिया और दोनों कुमार ताज्जुब के साथ सोचने लगे कि यह क्या मामला है ? इस तिलिस्म में हमारे सिवाय किसी गैर आदमी का आना कठिन ही नहीं बल्कि एकदम असम्भव है, तब फिर यह मशाल की रोशनी कैसी ! खाली रोशनी ही नहीं, बल्कि उसके पास चार-पाँच आदमी भी दिखाई देते हैं।

हाँ, यह नहीं जान पड़ता कि वे सब औरत हैं या मर्द।

और लोगों के विचार भी दोनों कुमारों की ही तरह के थे और मशाल के साथ कई आदमियों को देखकर सभी ताज्जुब कर रहे थे। यकायक वह रोशनी गायब हो गई और आदमी दिखाई देने से रह गये, मगर थोड़ी ही देर बाद वह रोशनी फिर दिखाई दी। अबकी दफे रोशनी और भी नीचे की तरफ थी और उसके साथ के आदमी साफ-साफ दिखाई देते थे।

गोपालसिंह—(इन्द्रजीतसिंह से) मैं समझता था कि आप दोनों भाइयों के सिवाय कोई गैर आदमी इस तिलिस्म में नहीं आ सकता।

इन्द्रजीतसिंह—मेरा भी यही खयाल था मगर क्या आप भी यहाँ तक नहीं आ सकते? आप तो तिलिस्म के राजा हैं।

गोपालसिंह—हाँ मैं आ तो सकता हूँ मगर सीधी राह से और अपने को बचाते हुए, वे काम मैं नहीं कर सकता जो आप कर सकते हैं। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि वे लोग पहाड़ पर से आते हुए दिखाई दे रहे हैं जहाँ से आने का कोई रास्ता ही नहीं है। तिलिस्म बनाने वालों ने इस बात को जरूर अच्छी तरह विचार लिया होगा।

इन्द्रजीतसिंह—बेशक ऐसा ही है, मगर यहाँ पर क्या समझा जाय? मेरा खयाल है कि थोड़ी ही देर में वे लोग इस बाग में आ पहुँचेंगे।

गोपालसिंह—बेशक ऐसा ही होगा। (रुककर) देखिए, रोशनी फिर गायब हो ग़ई, शायद वे लोग किसी गुफा में घुस गये।

कुछ देर तक सन्नाटा रहा और सब कोई बड़े गौर से उसी तरफ देखते रहे। इसके बाद यकायक बाग के पश्चिम तरफ वाले दालान में रोशनी मालूम होने लगी जो उस दालान के ठीक सामने था जिसमें हमारे महाराज तथा ऐयार लोग टिके हुए थे, मगर पेड़ों के सबब से साफ नहीं दिखाई देता था कि दालान में कितने आदमी आए हैं और क्या कर रहे हैं।

जब सभी को निश्चय हो गया कि वे लोग धीरे-धीरे पहाड़ों के नीचे उतरकर बाग के दालान या बारहदरी में आ गए हैं तब महाराज सुरेन्द्रसिंह ने तेजसिंह को हुक्म दिया कि जाकर देखो और पता लगाओ कि वे लोग कौन हैं और वहाँ क्या कर रहे हैं।

गोपालसिंह—(महाराज से) तेजसिंहजी का वहाँ जाना उचित न होगा क्योंकि यह तिलिस्म का मामला है और यहाँ की बातों से ये बिल्कुल बेखबर हैं, यदि आज्ञा हो तो कुंअर इन्द्रजीतसिंह को साथ लेकर मैं जाऊँ।

महाराज—ठीक है, अच्छा तुम्हीं दोनों आदमी जाकर देखो, क्या मामला है।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह और राजा गोपालसिंह वहाँ से उठे और धीरे-धीरे तथा पेड़ों की आड़ में अपने को छिपाते हुए उस दालान की तरफ रवाना हुए जिसमें रोशनी दिखाई दे रही थी, यहाँ तक कि उस दालान अथवा बारहदरी के बहुत पास पहुँच गये और एक पेड़ की आड़ में खड़े होकर गौर से देखने लगे।

इस दालान में उन्हें पन्द्रह आदमी दिखाई दिए, जिनके विषय में यह जानना कठिन था कि वे मर्द हैं या औरत, क्योंकि सभी की पोशाक एक ही रंग-ढंग की तथा

सभी के चेहरे पर नकाब पड़ी हुई थी। इन्हीं पन्द्रह आदमियों में से दो आदमी मशा- का काम दे रहे थे। जिस तरह उनकी पोशाक खूबसूरत और बेशकीमत थी, उसी त मशाल भी सुनहरी तथा जड़ाऊ काम की दिखाई दे रही थी और उसके सिरे की त- बिजली की तरह रोशनी हो रही थी, इसके अतिरिक्त उनके हाथ में तेल की कुप्पी न थी और इस बात का कुछ पता नहीं लगता था कि इस मशाल की रोशनी का सबब क्या है।

राजा गोपालसिंह और इन्द्रजीतसिंह ने देखा कि वे लोग शीघ्रता के साथ उस दालान के सजाने और फर्श वगैरह के ठीक करने का इन्तजाम कर रहे हैं। बारहदरी के दाहिनी तरफ एक खुला हुआ दरवाजा है, जिसके अन्दर वे लोग बार-बार जाते हैं और जिस चीज की जरूरत समझते हैं, ले आते हैं। यद्यपि उन सभी की पोशाक एक ही ढंग की है और इसलिए बड़ाई-छुटाई का पता लगाना कठिन है, तथापि उन सभी में से एक आदमी ऐसा है, जो स्वयं कोई काम नहीं करता और एक किनारे कुर्सी पर बैठा हुआ अपने साथियों से काम ले रहा है। उसके हाथ मे एक विचित्र ढंग की छड़ी दिखाई दे रही है जिसके मुट्ठे पर निहायत खूबसूरत और कुछ बड़ा हिरन बना हुआ है। देखते-ही-देखते थोड़ी देर में बारहदरी सज कर तैयार हो गई और कन्दीलों की रोशनी से जग-मगाने लगी। उस समय वह नकाबपोश जो कुर्सी पर बैठा था और जिसे हम उस मण्डली का सरदार भी कह सकते हैं, अपने साथियों से कुछ कह-सुन कर बारहदरी के नीचें उतर आया और धीरे-धीरे उधर रवाना हुआ जिधर महाराज सुरेन्द्रसिंह वगैरह टिके हुए थे।

यह कैफियत देख कर राजा गोपालसिंह और इन्द्रजीतसिंह जो छिपे सब तमाशा देख रहे थे वहाँ से लौटे और शीघ्र ही महाराज के पास पहुँच कर जो कुछ देखा था, संक्षेप में सब बयान किया। उसी समय एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया। सभी का ध्यान उसी तरफ चला गया और इन्द्रजीतसिंह तथा राजा गोपालसिंह ने समझा कि यह वही नकाबपोशों का सरदार होगा जिसे अभी हम उस बारहदरी में देख आये हैं और जो हमारे देखते-देखते वहाँ से रवाना हो गया था। मगर जब पास आया तो सभी का भ्रम जाता रहा और एकाएक इन्द्रदेव पर निगाह पड़ते ही सब कोई चौंक पड़े। राजा गोपाल-सिंह और इन्द्रजीतसिंह को इस बात का भी शक हुआ कि वह नकाबपोशों का सरदार शायद इन्द्रदेव ही हो, मगर यह देख कर उन्हें ताज्जुब मालूम हुआ कि इन्द्रदेव उस (नकाबपोशों की-सी) पोशाक में न था, जैसा कि उस बारहदरी में देखा था, बल्कि वह अपनी मामूली दरबारी पोशाक में था।

इन्द्रदेव ने वहाँ पहुँचकर महाराज सुरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह, जीतसिंह, तेजसिंह, राजा गोपालसिंह तथा दोनों कुमारों को अदब के साथ झुक कर सलाम किया और इसके बाद बाकी ऐयारों से भी "जय माया की" कहा।

सुरेन्द्रसिंह—इन्द्रदेव, जब से हमने इन्द्रजीतसिंह की जुबानी यह सुना है कि इस तिलिस्म के दारोगा तुम हो, तब से हम बहुत ही खुश हैं। मगर ताज्जुब होता था कि तुमने इस बात की हमें कुछ भी खबर नहीं की और न हमारे साथ यहाँ आये हो। अब यकायक इस समय यहाँ पर तुम्हें देख कर हमारी खुशी और भी ज्यादा हो गई। आओ, हमारे पास बैठ जाओ और यह कहो कि हम लोगों के साथ तुम यहाँ क्यों नहीं आये?

इन्द्रदेव—(बैठ कर) आशा है कि महाराज मेरा वह कसूर माफ करेंगे। मुझे कई जरूरी काम करने थे, जिनके लिए अपने ढंग पर अकेले आना पड़ा। बेशक मैं इस तिलिस्म का दरोगा हूँ और इसीलिए अपने को बड़ा ही खुशकिस्मत समझता हूँ कि ईश्वर ने इस तिलिस्म को आप ऐसे प्रतापी राजा के हाथ में सौंपा है। यद्यपि आपके फर्मा-बर्दार और होनहार पोतों ने इस तिलिस्म को फतह किया है और इस सबब से वे इसके मालिक हुए हैं, तथापि इस तिलिस्म का सच्चा आनन्द और तमाशा दिखाना मेरा ही काम है, यह मेरे सिवाय किसी दूसरे के किए नहीं हो सकता। जो काम कुँअर इन्द्रजीत-सिंह और आनन्दसिंह का था, उसे ये कर चुके अर्थात् तिलिस्म तोड़ चुके और जो कुछ इन्हें मालूम होना था, हो चुका। परन्तु उन बातों, भेदों और स्थानों का पता इन्हें नहीं लग सकता, जो मेरे हाथ में हैं और जिसके सबब से मैं इस तिलिस्म का दारोगा कहलाता हूँ। तिलिस्म बनाने वालों ने तिलिस्म के सम्बन्ध में दो किताबें लिखी थीं जिनमें से वे एक तो दारोगा के सुपुर्द कर गये और दूसरी तिलिस्म तोड़ने वाले के लिए छिपा कर रख गये जो कि अब दोनों कुमारों के हाथ लगी या कदाचित इनके अतिरिक्त और भी कोई किताब उन्होंने लिखी हो तो उसका हाल मैं नहीं जानता। हाँ, जो किताब दारोगा के सुपुर्द कर गये थे, वह वसीयतनामे के तौर पर पुश्त-दर-पुश्त से हमारे क़ब्जे में चली आ रही है और आजकल मेरे पास मौजूद है। यह मैं जरूर कहूँगा कि तिलिस्म में बहुत से मुकाम ऐसे हैं जहाँ दोनों कुमारों का जाना तो असम्भव ही है, परन्तु तिलिस्म टूटने के पहले मैं भी नहीं जा सकता था। हाँ, अब मैं वहाँ बखूबी जा सकता हूँ। आज मैं इसी-लिए इस तिलिस्म के अन्दर-ही-अन्दर आपके पास आया हूँ कि इस तिलिस्म का पूरा-पूरा तमाशा आपको दिखाऊँ। जिसे कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह नहीं दिखा सकते। परन्तु इन कामों के पहले मैं महाराज से एक चीज माँगता हूँ जिसके बिना मेरा काम नहीं चल सकता।

महाराज—वह क्या ?

इन्द्रदेव—जब तक इस तिलिस्म में आप लोगों के साथ हूँ, तब तक अदब-लिहाज और कायदे की पाबन्दी से माफ रखा जाऊँ !

महाराज—इन्द्रदेव, हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। जब तक तिलिस्म में हम लोगों के साथ हो, तभी तक के लिए नहीं, बल्कि हमेशा के लिए हमने इन बातों से तुम्हें छुट्टी दी। तुम विश्वास रखो कि हमारे बाल-बच्चे और सच्चे साथी भी हमारी इस बात का पूरा-पूरा लिहाज रखेंगे।

यह सुनते ही इन्द्रदेव ने उठकर महाराज को सलाम किया और फिर बैठ कर कहा, "अब आज्ञा हो तो खाने-पीने का सामान जो आप लोगों के लिए लाया हूँ, हाजिर करूँ।"

महाराज—अच्छी बात है लाओ, क्योंकि हमारे साथियों में से कई ऐसे हैं जो भूख के मारे बेताब हो रहे होंगे।

तेजसिंह—मगर इन्द्रदेव, तुमने इस बात का परिचय तो दिया ही नहीं कि तुम वास्तव में इन्द्रदेव ही हो या कोई और ?

इन्द्रदेव—(मुस्करा कर) मेरे सिवाय कोई गैर यहाँ आ नहीं सकता ।

तेजसिंह—तथापि—'चिलेण्डोला' ।

इन्द्रदेव—'चक्रधर' ।

वीरेन्द्रसिंह—मैं एक बात और पूछना चाहता हूँ ।

इन्द्रदेव—आज्ञा !

वीरेन्द्रसिंह—वह स्थान कैसा है, जहाँ तुम रहा करते हो और जहाँ मायारानी अपने दारोगा को लेकर तुम्हारे पास गई थी ?

इन्द्रदेव—वह स्थान तिलिस्म से सम्बन्ध रखता है और यहाँ से थोड़ी ही दूर पर है । मैं स्वयं आप लोगों को ले चल कर वहाँ की सैर कराऊँगा । इसके अतिरिक्त अभी मुझे बहुत-सी बातें कहनी हैं, पहले आप लोग भोजन इत्यादि से छुट्टी पा लें ।

तेजसिंह—हम लोग अभी मशाल की रोशनी में क्या आप ही लोगों को पहाड़ से उतरते देख रहे थे ?

इन्द्रदेव—जी हाँ, मैं एक निराले ही रास्ते से यहाँ आया हूँ । आप लोग बेशक ताज्जुब करते होंगे कि पहाड़ से कौन उतर रहा है । परन्तु मैं अकेला ही नहीं आया हूँ । बल्कि कई तमाशे भी अपने साथ लाया हूँ, मगर उनके जिक्र का अभी मौका नहीं है ।

इतना कह कर इन्द्रदेव उठ खड़ा हुआ और देखते-देखते दूसरी तरफ चला गया, मगर अपनी इस बात से कि—"कई तमाशे भी अपने साथ लाया हूँ" कइयों को ताज्जुब और घबराहट में डाल गया ।

11

थोड़ी ही देर बाद इन्द्रदेव फिर वहाँ आया । अबकी दफे उसके साथ कई नकाबपोश भी थे, जो अपने हाथ में तरह-तरह की खाने-पीने की चीजें लिए हुए थे । एक के हाथ में जल था । जल से जमीन धोई गई और खाने-पीने की चीजें वहाँ रख कर वे नकाबपोश लौट गये तथा पुनः कई जरूरी चीजें लेकर आ पहुँचे । इन्तजाम ठीक हो जाने पर इन्द्रदेव ने कायदे के साथ सभी को भोजन कराया और इस काम से छुट्टी मिलने पर उस बारहदरी में चलने के लिए अर्ज किया, जिसे उसने यहाँ पहुँच कर सजाया था और जिसका हाल ऊपर के बयान में लिख चुके हैं ।

वास्तव में यह बारहदरी बड़ी खूबी के साथ सजाई गई थी । यहाँ सभी के लिए कायदे के साथ बैठने और आराम करने का सामान मौजूद था । जिसे देख कर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और इन्द्रदेव की तरफ देख कर बोले, "क्या यह सब सामान इसी बाग में मौजूद था ?"

इन्द्रजीतसिंह—जी हाँ, केवल इतना ही नहीं बल्कि इस बाग में जितनी इमारतें हैं, उन सभी को सजाने और दुरुस्त करने के लिए यहाँ काफी सामान है, इसके अति-

रिक्त यहाँ से मेरा मकान बहुत नजदीक है। इसलिए जिस चीज की भी जरूरत हो, मैं बहुत जल्द ला सकता हूँ। (कुछ देर सोच कर और हाथ जोड़ कर) मैं एक और भी जरूरी बात अर्ज करना चाहता हूँ।

महाराज--वह क्या ?

इन्द्रजीतसिंह—यह तिलिस्म आप ही के बुजुर्गों की बदौलत बना है और उन्हीं की आज्ञानुसार जब से यह तिलिस्म तैयार हुआ है, तभी से मेरे बुजुर्ग लोग इसके दारोगा होते आये हैं। अब मेरे जमाने में इस तिलिस्म की क़िस्मत ने पलटा खाया है। यद्यपि कुमार इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह ने इस तिलिस्म को तोड़ा या फतह किया है और इसमें की बेहिसाब दौलत के मालिक हुए हैं तथापि यह तिलिस्म अभी दौलत से खाली नहीं हुआ है और न ऐसा खुल ही गया है कि ऐरे-गैरे जिसका जी चाहे इसमें घुस आयें। हाँ यदि आज्ञा हो तो दोनों कुमारों के हाथ से मैं इसके बचे-बचाये हिस्से को भी तुड़वा सकता हूँ, क्योंकि यह काम इस तिलिस्म के दारोगा का अर्थात् मेरा है, मगर मैं चाहता हूँ कि बड़े लोगों की इस कीर्ति को एकदम से मटियामेट न करके भविष्य के लिए भी कुछ छोड़ देना चाहिए। आज्ञा पाने पर मैं इस तिलिस्म की पूरी सैर कराऊँगा और तब अर्ज करूँगा कि बुजुर्गों की आज्ञानुसार इस दास ने भी जहाँ तक हो सका इस तिलिस्म की खिदमत की, अब महाराज को अख्तियार है कि मुझसे हिसाब-किताब समझ कर आइन्दा के लिए जिसे चाहें, यहाँ का दारोगा मुकर्रर करें।

महाराज—इन्द्रदेव, मैं तुमसे और तुम्हारे कामों से बहुत ही प्रसन्न हूँ। मगर मैं यह नहीं चाहता कि तुम मुझे बातों के जाल में फँसा कर बेवकूफ बनाओ और यह कहो कि "भविष्य के लिए किसी दूसरे को यहाँ का दारोगा मुकर्रर कर लो।" जो कुछ तुमने राय दी है वह बहुत ठीक है अर्थात् इस तिलिस्म के बचे-बचाये स्थानों को छोड़ देना चाहिए जिसमें कि बड़े लोगों का नाम-निशान बना रहे। मगर यहाँ के दारोगा की पदवी सिवाय तुम्हारे खानदान के कोई दूसरा कब पा सकता है ? बस दया करके इस ढंग की बातों को छोड़ दो और जो कुछ खुशी-खुशी कर रहे हो, सो करो।

इन्द्रजीतसिंह—(अदब के साथ सलाम करके) जो आज्ञा ! मैं एक बात और भी निवेदन करना चाहता हूँ।

महाराज—वह क्या ?

इन्द्रदेव—वह यह कि इस जगह से आप कृपा करके पहले मेरे स्थान को, जहाँ मैं रहता हूँ, पवित्र कीजिये और तब तिलिस्म की सैर करते हुए अपने चुनार गढ़ वाले तिलिस्मी मकान में पहुँचिये। इसके अतिरिक्त इस तिलिस्म के अन्दर जो कुछ कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह ने पाया है अथवा वहाँ से जिन चीजों को निकाल कर चुनारगढ़ पहुँचाने की आवश्यकता है, उनकी फेहरिस्त मुझे मिल जाय और ठीक तौर पर बता दिया जाय कि कौन चीज कहाँ पर है तो उन्हें वहाँ से बाहर करके आपके पास भेजने का बदोबस्त करूँ। यद्यपि यह काम भैरोंसिंह और तारासिंह भी कर सकते हैं, परन्तु जिस काम को मैं एक दिन में करूँगा, उसे वे चार दिन में भी पूरा न कर सकेंगे. जिस चीज को जिस राह से निकाल ले जाने में सुभीता देखूँगा, निकाल ले जाऊँगा।

महाराज—ठीक है, मैं भी इस बात को पसन्द करता हूँ और यह भी चाहता हूँ कि चुनार पहुँचने के पहले ही तुम्हारे विचित्र स्थान की सैर कर लूँ। चीजों की फेहरिस्त और उनका पता इन्द्रजीतसिंह तुमको देंगे।

इतना कह कर महाराज ने इन्द्रजीतसिंह की तरफ देखा और कुमार ने उन सब चीजों का पता इन्द्रदेव को बताया जिन्हें बाहर निकाल कर घर पहुँचाने की आवश्यकता थी और साथ-ही-साथ अपना तिलिस्मी किस्सा भी जिसके कहने की जरूरत थी, इन्द्रदेव से बयान किया और बाद में दूसरी बातों का सिलसिला छिड़ा।

वीरेन्द्रसिंह—(इन्द्रदेव से) आपने कहा था कि "मैं कई तमाशे भी साथ लाया हूँ," तो क्या वे तमाशे ढँके ही रह जायेंगे।

इन्द्रदेव—जी नहीं! आज्ञा हो तो अभी उन्हें पेश करूँ, परन्तु यदि आप मेरे मकान पर चल कर उन तमाशों को देखेंगे तो कुछ विशेष आनन्द मिलेगा।

महाराज—यही सही, हम लोग अभी तुम्हारे मकान पर चलने के लिए तैयार हैं।

इन्द्रदेव—अब रात बहुत चली गई है, महाराज दो-चार घण्टे आराम कर लें, दिन-भर की हरारत मिट जाय, जब कुछ रात बाकी रह जायेगी, तो मैं जगा दूंगा और अपने मकान की तरफ ले चलूंगा। तब तक मैं अपने साथियों को वहाँ रवाना कर देता हूँ जिसमें आगे चल कर सभी को होशियार कर दें और महाराज के लिए हरएक तरह का सामान दुरुस्त हो जाय।

इन्द्रदेव की बात को महाराज ने पसन्द करके सभी को आराम करने की आज्ञा दी और इन्द्रदेव भी वहाँ से बिदा होकर किसी दूसरी जगह चला गया।

इधर-उधर की बातचीत करते-करते महाराज को नींद आ गई। वीरेन्द्रसिंह, दोनों कुमार और राजा गोपालसिंह भी सो गये तथा और ऐयारों ने भी स्वप्न देखना आरम्भ किया। मगर भूतनाथ की आँखों में नींद का नाम-निशान भी न था और वह तमाम रात जागता ही रह गया।

जब रात घण्टे-भर से ज्यादा बाकी रह गई और सुबह को अठखेलियों के साथ चल कर खुशदिलों तथा नौजवानों के दिलों में गुदगुदी पैदा करने वाली ठंडी-ठंडी हवा ने खुशबूदार जंगली फूलों और लताओं से हाथापाई करके उनकी सम्पत्ति छीनना और अपने को खुशबूदार बनाना शुरू कर दिया तब इन्द्रदेव भी उस बारहदरी में आ पहुँचा और सभी को गहरी नींद में सोते देख जगाने का उद्योग करने लगा। इस बारहदरी के आगे की तरफ एक छोटा-सा सहन था जिसकी जमीन संगमूसा के स्याह और चौखूटे पत्थरों से मढ़ी हुई थी। इस सहन के दाहिने और बाएँ कोनों पर दो-तीन आदमी बखूबी बैठ सकते थे। इन्द्रदेव दाहिने तरफ वाले सिंहासन पर जाकर बैठ गया और उसके पायों को बारी-बारी से क़िसी हिसाब से घुमाने या उमेठने लगा। उसी समय सिंहासन के अन्दर से सरस और मधुर बाजे की आवाज आने लगी और थोड़ी ही देर बाद गाने की आवाज भी पैदा हुई। मालूम होता था कि कई नौजवान औरतें बड़ी खूबी के साथ गा रही हैं और कई आदमी पखावज-बीन-वंशी-मजीरा इत्यादि बजा कर उन्हें मदद पहुँचा रहे हैं। यह आवाज धीरे-धीरे बढ़ने और फैलने लगी, यहाँ तक कि उस बारहदरी में

सोने वाले सभी लोगों को जगा दिया अर्थात् सब कोई चौंक कर उठ बैठे और ताज्जुब के साथ इधर-उधर देखने लगे। केवल इतने ही से बेचैनी दूर न हुई और सब कोई बारहदरी से बाहर निकल कर सहन में चले आये, उसी समय इन्द्रदेव ने सामने आकर महाराज को सलाम किया।

महाराज—यह तो मालूम हो गया कि यह सब तुम्हारी कारीगरी का नतीजा है, मगर बताओ तो सही कि यह गाने-बजाने की आवाज कहाँ से आ रही है?

इन्द्रदेव—आइये, मैं बताता हूँ। महाराज को जगाने ही के लिए यह तरकीब की गई थी, क्योंकि अब यहाँ से रवाना होने का समय हो गया है, और विलम्ब न करना चाहिए।

इतना कहकर इन्द्रदेव सभी को उस सिंहासन के पास ले गया जिसमें से गाने की आवाज आ रही थी। और उसका असल भेद समझाकर बोला, "इसमें मौके पर हर एक रागिनी पैदा हो सकती है।"

इस अनूठे गाने-बजाने से महाराज बहुत प्रसन्न हुए और इसके बाद सभी को लिए हुए इन्द्रदेव के मकान की तरफ रवाना हुए।

उस बारहदरी की बगल में ही एक कोठरी थी जिसमें सभी को साथ लिए हुए इन्द्रदेव चला गया! इस समय इन्द्रदेव के पास तिलिस्मी खंजर था जिससे उसने हलकी रोशनी पैदा की और उसी के सहारे सभी को लिए हुए आगे की तरफ बढ़ा।

उस कोठरी में जाने के बाद पहले सभी को एक छोटे से तहखाने में उतरना पड़ा, वहाँ सभी ने लाल रंग की एक समाधि देखी जिसके बारे में दरियाफ्त करने पर इन्द्रदेव ने कहा कि यह समाधि नहीं है, सुरंग का दरवाजा है। इन्द्रदेव उस समाधि के पास बैठ गया और कोई ऐसी तरकीब की कि जिससे वह बीचोंबीच से खुल गई और नीचे उतरने के लिए चार-पाँच सीढ़ियाँ दिखाई दीं। इन्द्रदेव के कहे मुताबिक सब कोई नीचे उतर गये और इसके बाद सीधी सुरंग में चलने लगे। सुरंग की हालत और ऊँची-नीची जमीन से साफ-साफ मालूम होता था कि वह पहाड़ काटकर बनाई हुई है और सब लोग ऊँचे की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। हमारे मुसाफिरों को दो-ढाई घड़ी के लगभग चलना पड़ा और तब इन्द्रदेव ने ठहरने के लिए कहा, क्योंकि यहाँ पर सुरंग खत्म हो चुकी थी और सामने एक बन्द दरवाजा दिखाई दे रहा था। इन्द्रदेव ने ताली लगाकर ताला खोला और सभी को साथ लिए हुए उसके अन्दर गया। सभी ने अपने को एक सुन्दर कमरे में पाया और जब इस कमरे के बाहर हुए तब मालूम हुआ कि सवेरा हो चुका है।

यह इन्द्रदेव का वही मकान है जिसमें बुड्ढे दारोगा के साथ मदद पाने की उम्मीद में मायारानी गई थी। इस सुन्दर और सुहावने स्थान का हाल हम पहले लिख चुके हैं, इसलिए अब पुनः बयान करने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती।

इन्द्रदेव सभी को लिए हुए पुनः अपने छोटे से बगीचे में गया, वहाँ चारों तरफ की सुन्दर छटा दिखाई दे रही थी और खुशबूदार ठण्डी-ठण्डी हवा दिल और दिमाग के साथ दोस्ती का हक अदा कर रही थी।

महाराज सुरेन्द्रसिंह और वीरेन्द्रसिंह तथा दोनों कुमारों को यह स्थान बहुत ही

पसन्द आया और बार-बार इसकी तारीफ करने लगे। यद्यपि इस बगीचे में सभी के लायक दर्जे-बदर्जे कुर्सियाँ बिछी हुई थीं, मगर किसी का जी बैठने को नहीं चाहता था। सब कोई घूम-घूमकर यहाँ का आनन्द लेना चाहते थे और ले रहे थे, मगर इस बीच में एक ऐसा मामला हो गया जिसने भूतनाथ और देवीसिंह दोनों ही को चौंका दिया। एक आदमी जल से जरा हुआ चाँदी का घड़ा और सोने की झारी लेकर आया और संगमरमर की चौकी पर, जो बगीचे में पड़ी हुई थी, रखकर लौट चला। इसी आदमी को देखकर भूतनाथ और देवीसिंह चौंके थे, क्योंकि यह वही आदमी था जिसे ये दोनों ऐयार नकाबपोशों के मकान में देख चुके थे। इसी आदमी ने नकाबपोशों के सामने एक तस्वीर पेश की की थी और कहा था कि "कृपानाथ, बस मैं इसी का दावा भूतनाथ पर करूँगा।"[1]

केवल इतना ही नहीं, भूतनाथ ने वहाँ से थोड़ी दूर पर एक झाड़ी में अपनी स्त्री को भी फूल तोड़ते देखा और धीरे-से देवीसिंह को छेड़कर कहा, "वह देखिये मेरी स्त्री भी वहाँ मौजूद है, ताज्जुब नहीं कि आपकी चम्पा भी कहीं घूम रही हो।"

12

यद्यपि भूतनाथ को तरद्दुदों से छुट्टी मिल चुकी थी, यद्यपि उसका कसूर माफ हो चुका था, और वह महाराज के खास ऐयारों में मिला लिया गया था, मगर इस जगह उस आदमी को, जिसने नकाबपोशों के मकान में तस्वीर पेश की और साथ उस पर दावा करना चाहा था, देखकर उसकी अवस्था फिर बिगड़ गई और साथ ही इसके अपनी स्त्री को भी वहाँ काम करते हुए देखकर उसे क्रोध चढ़ आया।

जब वह आदमी पानी का घड़ा और झारी रखकर लौट चला, तब इन्द्रदेव ने उसे पुकारकर कहा, "अर्जन, जरा वह तस्वीर भी तो ले आओ जिसे बार-बार तुम दिखाया करते हो और जो हमारे दोस्त भूतनाथ को डराने और धमकाने के लिए एक औजार के तौर पर तुम्हारे पास रखी हुई है।"

इस नाम ने भूतनाथ के कलेजे को और भी हिला दिया। वास्तव में उस आदमी का यही नाम था और इस खयाल ने तो उसे और भी बदहवास कर दिया कि अब वह तस्वीर लेकर आयेगा।

इस समय सब कोई बाग में टहल रहे थे और इसलिए एक-दूसरे से कुछ दूर हो रहे थे। भूतनाथ बढ़कर देवीसिंह के पास चला गया और उनका हाथ पकड़कर धीरे से बोला, "देखा, इन्द्रदेव का रंग-ढंग?"

देवीसिंह—(धीरे-से) मैं सब देख और समझ रहा हुँ, मगर तुम घबराओ नहीं।

भूतनाथ—मालूम होता है कि इन्द्रदेव का दिल अभी तक मेरी तरफ से साफ

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, बीसवाँ भाग, दूसरा बयान।

नहीं हुआ।

देवीसिंह—शायद ऐसा ही हो, मगर इन्द्रदेव से ऐसी उम्मीद नहीं हो सकती, मेरा दिल इसे कबूल नहीं करता। मगर भूतनाथ, तुम भी अजीब सिड़ी हो।

भूतनाथ—सो क्यों ?

देवीसिंह—यही कि नकाबपोशों का पीछा करके तुमने कैसे-कैसे तमाशे देखे और तुम्हें विश्वास भी हो गया कि इन नकाबपशों से तुम्हारा कोई भेद छिपा नहीं है, फिर अन्त में यह भी मालूम हो गया कि उन नकाबपोशों के सरदार कुँअर इन्दद्रजीतसिंह और आनन्दसिंह थे, फिर इन दोनों से भी अब कोई बात छिपी नहीं रही।

भूतनाथ—बेशक ऐसा ही है।

देवीसिंह—तो फिर अब क्यों तुम्हारा दम बेकार ही घुटा जाता है ? अब तुम्हें किसका डर रह गया ?

भूतनाथ—कहते तो ठीक हो। खैर, कोई चिन्ता नहीं, जो कुछ होगा, सो देखा जायगा।

देवीसिंह—बल्कि तुम्हें यह जानने की कोशिश करनी चाहिए कि दोनों कुमारों को तुम्हारे भेदों का पता कैसे लगा। ताज्जुब नहीं, अब वे सब बातें खुलना चाहती हों।

भूतनाथ—शायद ऐसा ही हो, मगर मेरी स्त्री के बारे में तुम भी क्या खयाल करते हो ?

देवीसिंह—इस बारे में मेरा-तुम्हारा मामला एक-सा ही रहा है, अब इस विषय में मैं कुछ भी नहीं कह सकता। वह देखो, इन्द्रदेव, तेजसिंह के पास चला गया है और तुम्हारी स्त्री की तरफ इशारा करके कुछ कह रहा है। तेजसिंह अलग हों तो मैं उनसे कुछ पूछूं ! यहां की छटा ने तो लोगों का दिल ऐसा लुभा लिया है कि सभी ने एक-दूसरे का साथ ही छोड़ दिया।(चौंककर) लो देखो, तुम्हारा लड़का नानक भी तो आ पहुँचा, उसके हाथ में भी कोई तस्वीर मालूम पड़ती है, अर्जुन भी उसी के साथ है।

भूतनाथ—(ताज्जुब से) आश्चर्य की बात है ! नानक और अर्जुन का साथ कैसे हुआ ? और नानक यहाँ आया ही क्यों ? क्या अपनी मां के साथ आया है ? क्या सपूत छोकरे ने भी मेरी तरफ से आँखें फेर ली हैं ? ओफ, यह तिलिस्मी जमीन तो मेरे लिए भयानक सिद्ध हो रही है, अच्छा-खासा तिलिस्म मुझे दिखाई दे रहा है। जिन पर मुझे विश्वास था, जिनका मुझे भरोसा था, जो मेरी इज्जत करते थे, यहाँ उन्हीं को मैं अपना विपक्षी पाता हूँ और कोई मुझसे बात तक करना पसन्द नहीं करते।

नानक और और अर्जुन को भूतनाथ और देवीसिंह ताज्जुब के साथ देख रहे थे, नानक ने भी भूतनाथ को देखा, मगर दूर ही से प्रणाम करके रह गया, पास न आया और और अर्जुन को लिए सीधे इन्द्रदेव की तरफ चला गया जो तेजसिंह से बातें कर रहे थे। इस समय आज्ञानुसार अर्जुन अपने हाथ में एक तस्वीर लिए हुए था और नानक के हाथ में भी एक तस्वीर थी।

नानक और अर्जुन को अपने पास आते देख इन्द्रदेव ने हाथ के इशारे से उन्हें दूर ही खड़े रहने के लिए कहा और उन्होंने भी ऐसा ही किया। कुछ देर तक और भी

इन्द्रदेव, तेजसिंह के साथ बातें करता रहा, इसके बाद इशारे से अर्जुन और नानक को अपने पास बुलाया और जब वे दोनों पास आ गये तो कुछ कह-सुनकर बिदा किया।

भूतनाथ यह सब तमाशा देखकर ताज्जुब कर रहा था। अर्जुन और नानक को बिदा करने के बाद तेजसिंह को साथ लिए हुए इन्द्रदेव महाराज सुरेन्द्रसिंह के पास गया जो एक सुन्दर चट्टान पर खड़े-खड़े ढलवाँ जमीन और पहाड़ी पर से नीचे की तरफ गिरते हुए सुन्दर झरने की शोभा देख रहे थे और वीरेन्द्रसिंह भी उन्हीं के पास खड़े थे। वहाँ भी कुछ देर तक इन्द्रदेव ने महाराज से बातचीत की और इसके बाद चारों आदमी लौटकर बगीचे में चले आये। महाराज को बगीचे में आते देख और सब लोग भी जो इधर-उधर फैले हुए तमाशा देख रहे थे, बगीचे में आकर इकट्ठे हो गए और अब मानो महाराज का यह एक छोटा-सा दरबार बगीचे में ही लग गया।

वीरेन्द्रसिंह—(इन्द्रदेव से) हाँ, तो अब वे तमाशे कब देखने में आवेंगे जो आप अपने साथ तिलिस्म में लेते गये थे?

इन्द्रदेव—जब आज्ञा हो तभी दिखाये जायें।

वीरेन्द्रसिंह—हम लोग तो देखने के लिए तैयार बैठे हैं।

जीतसिंह—मगर पहले यह मालूम हो जाना चाहिए कि उनके देखने में जितना समय लगेगा, अगर थोड़ी देर का काम हो तो अभी देख लिया जाय।

इन्द्रदेव—जी, वह थोड़ी देर का काम तो नहीं है। इससे यही बेहतर होगा कि पहले जरूरी कामों से छुट्टी पाकर स्नान-ध्यान तथा भोजन इत्यादि से निवृत्त हो लें।

महाराज—हमारी भी यही राय है।

महाराज का मतलब समझ कर सब कोई उठ खड़े हुए और जरूरी कामों से छुट्टी पाने की फिक्र में लगे। महाराज सुरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह तथा और भी सब कोई इन्द्रदेव के उचित प्रबन्ध को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। किसी को किसी तरह की तकलीफ न हुई और न कोई चीज माँगने की जरूरत ही पड़ी। इन्द्रदेव के ऐयार और कई खिदमतगार आकर मौजूद हो गये और बात की बात में सब सामान ठीक हो गया।

स्नान तथा संध्या-पूजा इत्यादि से छुट्टी पाकर सभी ने भोजन किया और इसके बाद इन्द्रदेव ने (बँगले के अन्दर) एक बहुत बड़े और सजे हुए कमरे में सभी को बैठाया जहाँ सभी के योग्य दर्जे-ब-दर्जे बैठने का इन्तजाम किया गया था। एक ऊँची गद्दी पर महाराज सुरेन्द्रसिंह और उनके दाईं तरफ वीरेन्द्रसिंह, गोपालसिंह, तेजसिंह, देवीसिंह, पण्डित बद्रीनाथ, रामनारायण, पन्नालाल तथा भूतनाथ वगैरह बैठे।

कुछ देर तक इधर-उधर की बातचीत होती रही। इसके बाद इन्द्रदेव ने हाथ जोड़कर पूछा—"अब यदि आज्ञा हो तो तमाशों को···

महाराज—हाँ-हाँ, अब तो हम लोग हर तरह से निश्चिन्त हैं।

सलाम करके इन्द्रदेव कमरे के बाहर चला गया और घड़ी भर तक लौट के नहीं आया, इसके बाद जब आया तो चुपचाप अपने स्थान पर आकर बैठ गया। सब कोई (भूतनाथ, पन्नालाल वगैरह) ताज्जुब के साथ उसका मुँह देख रहे थे कि इतने में ही सामने वाले दरवाजे का परदा हटा और नानक कमरे के अन्दर आता हुआ दिखाई दिया,

नानक ने बड़े अदब के साथ महाराज को सलाम किया और इन्द्रदेव का इशारा पाकर एक किनारे बैठ गया। इस समय नानक के हाथ में एक बहुत बड़ी मगर लपेटी हुई तस्वीर थी जो कि उसने अपने बगल में लगा रखी थी।

नानक के बाद हाथ में तस्वीर लिए अर्जुन भी पहुँचा और महाराज को सलाम कर नानक के पास बैठ गया। उसी समय कमला का भाई अथवा भूतनाथ का लड़का हरनामसिंह दिखाई दिया, वह भी महाराज को प्रणाम करके अर्जुन के बगल में बैठ गया, हरनामसिंह के हाथ में एक छोटी-सी सन्दूकड़ी थी जिसे उसने अपने सामने रख लिया।

इसके बाद नकाब पहने हुए तीन औरतें कमरे के अन्दर आईं और अदब के साथ महाराज को सलाम करती हुई दूसरे दरवाजे से कमरे के बाहर निकल गईं।

इस समय भूतनाथ और देवीसिंह के दिल की क्या हालत थी, सो वे ही जानते होंगे। उन्हें इस बात का तो विश्वास ही था कि इन औरतों में एक तो भूतनाथ की स्त्री और दूसरी चम्पा जरूर है, मगर तीसरी औरत के बारे में कुछ भी नहीं कह सकते थे।

महाराज—(इन्द्रदेव से) इन औरतों में भूतनाथ की स्त्री और चम्पा जरूर होगी ?

इन्द्रदेव—(हाथ जोड़कर) जी हाँ कृपानाथ।

महाराज—और तीसरी औरत कौन है ?

इन्द्रदेव—तीसरी एक बहुत ही गरीब, नेक, सीधी और जमाने की सताई हुई औरत है जिसे देखकर और जिसका हाल सुनकर महाराज को भी बड़ी ही दया आयेगी। यह वह औरत है जिसे मरे हुए एक जमाना हो गया, मगर अब उसे विचित्र ढंग से पैदा होते देख लोगों को बड़ा ही ताज्जुब होगा।

महाराज—आखिर वह औरत है कौन ?

इन्देव—बेचारी दुःखिनी कमला की माँ, यानी भूतनाथ की पहली स्त्री।

यह सुनते ही भूतनाथ चिल्ला उठा और उसने बड़ी मुश्किल से अपने को बेहोश होने से रोका।

चन्द्रकान्ता सन्तति

बाईसवाँ भाग

1

भूतनाथ की अवस्था ने सबका ध्यान अपनी तरफ खींच लिया। कुछ देर तक सन्नाटा रहा और इसके बाद इन्द्रदेव ने पुनः महाराज की तरफ देखकर कहा—

"महाराज, ध्यान देने और विचार करने पर सबको मालूम होगा कि आजकल आपका दरबार 'नाट्यशाला' (थियेटर का घर) हो रहा है। नाटक खेलकर जो-जो बातें दिखाई जा सकती हैं, और जिनके देखने से लोगों को नसीहत मिल सकती है तथा मालूम हो सकता है कि दुनिया में जिस दर्जे तक के नेक और बद, दुखिया और सुखिया, गम्भीर और छिछोरे इत्यादि पाये जाते हैं, वे सब इस समय (आजकल) आपके यहाँ प्रत्यक्ष हो रहे हैं। ग्रह-दशा के फेर में जिन्होंने दुःख भोगा वे भी मौजूद हैं और जिन्होंने अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारी, वे भी दिखाई दे रहे हैं, जिन्होंने अपने किए का फल ईश्वरेच्छा से पा लिया है, वे भी आए हुए हैं, और जिन्हें अब सजा दी जायेगी, वे भी गिरफ्तार किए गए हैं। बुद्धिमानों का यह कथन है, कि 'जो बुरी राह चलेगा, उसे बुरा फल अवश्य मिलेगा' ठीक है, परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अच्छी राह चलने वाले तथा नेक लोग भी दुःख के चंगुल में फँस जाते हैं, और दुर्जन तथा दुष्ट लोग आनन्द के साथ दिन काटते दिखाई देते हैं। इसे लोग ग्रह-दशा के कारण कहते हैं, मगर नहीं, इसके सिवाय कोई और बात भी जरूर है। परमात्मा की दी हुई बुद्धि और विचारशक्ति का अनादर करने वाले ही प्रायः संकट में पड़कर तरह-तरह के दुःख भोगते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि इस समय अथवा आजकल आपके यहाँ सब तरह के जीव दिखाई देते हैं, दृष्टान्त देने के बदले केवल इशारा करने से काम निकलता है। हाँ, मैं यह कहना तो भूल ही गया, कि इन्हीं में ऐसे भी जीव आए हुए हैं, जो अपने किए का नहीं, बल्कि अपने सम्बन्धियों के किए हुए पापों का फल भोग रहे हैं, और इसी से नाते (रिश्ते) और सम्बन्ध का गूढ़ अर्थ भी निकलता है। बेचारी लक्ष्मीदेवी की तरफ देखिए, जिसने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा, और फिर भी हद दर्जे की तकलीफ उठाकर भी ताज्जुब है कि जीती बच गई। ऐसा क्यों हुआ ? इसके जवाब में मैं तो यही कहूँगा कि राजा गोपालसिंह की बदौलत जो बेईमान दारोगा के हाथ की कठपुतली हो रहे थे, और इस बात की कुछ

भी खबर नहीं रखते थे कि उनके घर में क्या हो रहा है, या उनके कर्मचारियों ने उन्हें कैसे जाल में फँसा रखा है। जिस राजा को अपने घर की खबर न होगी, वह प्रजा का क्या उपकार कर सकता है, और ऐसा राजा अगर संकट में पड़ जाये तो आश्चर्य ही क्या है! केवल इतना ही नहीं, इनके दुःख भोगने का एक सबब और भी है। बड़ों ने कहा है कि 'स्त्री के आगे अपने भेद की बात प्रकट करना बुद्धिमानों का काम नहीं है' परन्तु राजा गोपालसिंह ने इस बात पर कुछ भी ध्यान न दिया, और दुष्टा मायारानी की मुहब्बत में फँसकर तथा अपने भेदों को बताकर बर्बाद हो गये। सज्जन और सरल स्वभाव होने से ही दुनिया का काम नहीं चलता, कुछ नीति का भी अवलम्बन करना ही पड़ता है। इसी तरह महाराज शिवदत्त को देखिए, जिसे खुशादमियों ने मिल-जुलकर बर्बाद कर दिया। जो लोग खुशामद में पड़कर अपने को सबसे बड़ा समझ बैठते हैं, और दुश्मन को कोई चीज नहीं समझते हैं, उनकी वैसी ही गति होती है, जैसी शिवदत्त की हुई। दुष्टों और दुर्जनों की बात जाने दीजिए, उनके बुरे कामों का तो फल मिलना ही चाहिए, मिला ही है और मिलेगा ही, उनका जिक्र तो मैं पीछे करूँगा; अभी तो मैं उन लोगों की तरफ इशारा करता हूँ, जो वास्तव में बुरे नहीं थे, मगर नीति पर न चलने तथा बुरी सोहबत में पड़े रहने के कारण संकट में पड़ गए। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि भूतनाथ ऐसा नेक दयावान और चतुर ऐयार बहुत कम दिखाई देगा, मगर लालच और ऐयाशी के फेर में पड़कर यह ऐसा बर्बाद हुआ कि दुनिया भर में मुँह छिपाने और अपने को मुर्दा मशहूर करने पर भी इसे सुख की नींद नसीब न हुई। अगर यह मेहनत करके ईमानदारी के साथ दौलत पैदा करना चाहता तो आज इसकी दौलत का अन्दाज करना कठिन होता, और अगर ऐयाशी के फेर में न पड़ा होता तो आज नाती-पोतों से इसका घर दूसरों के लिए नजीर गिना जाता। इसने सोचा कि मैं मालदार हूँ, होशियार हूँ, चालाक हूँ, और ऐयार हूँ—कुलटा स्त्रियों और रण्डियों की सोहबत का मजा लेकर सफाई के साथ अलग हो जाऊँगा, मगर इसे अब मालूम हुआ होगा कि रण्डियाँ ऐयारों के भी कान काटती हैं। नागर वगैरह के बर्ताव को जब यह याद करता होगा, तब इसके कलेजे में चोट-सी लगती होगी। मैं इस समय इसकी शिकायत करने पर उतारू नहीं हुआ हूँ, बल्कि इसके दिल पर से पहाड़-सा बोझ हटाकर उसे हल्का करना चाहता हूँ, क्योंकि इसे मैं अपना दोस्त समझता था, और मैं समझता हूँ, हाँ, इधर कई वर्षों से इसका विश्वास अवश्य उठ गया था और मैं इसकी सोहबत पसन्द नहीं करता था, मगर इसमें मेरा कोई कसूर नहीं, किसी का चाल-चलन जब खराब हो जाता है, तब बुद्धिमान लोग उसका विश्वास नहीं करते और शास्त्र की भी ऐसी ही आज्ञा है, अतएव मुझे भी वैसा ही करना पड़ा। यद्यपि मैंने इसे किसी तरह की तकलीफ नहीं पहुँचाई परन्तु इसकी दोस्ती को एकदम भूल गया। मुलाकात होने पर उसी तरह बर्ताव करता था जैसा लोग नये मुलाकाती के साथ किया करते हैं। हाँ, अब जबकि यह अपनी चाल-चलन को सुधारकर आदमी बना है, अपनी भूलों को सोच-समझकर पछता चुका है, एक अच्छे ढंग से नेकी के साथ नामवरी पैदा करता हुआ दुनिया में फिर दिखाई देने लगा है और महाराज भी इसकी योग्यता से प्रसन्न होकर इसके अपराधों को (दुनिया के लिए) क्षमा कर चुके हैं, तब मैंने भी इसके अपराधों को दिल-ही-दिल में क्षमा कर इसे

अपना मित्र समझ लिया है और फिर उसी निगाह से देखने लगा हूँ, जिस निगाह से पहले देखता था। परन्तु इतना मैं जरूर कहूँगा कि भूतनाथ ही एक ऐसा आदमी है जो दुनिया में नेकचलनी और बदचलनी के नतीजे को दिखाने के लिए नमूना बन रहा है। आज यह अपने भेदों को प्रकट होते देख डरता है और चाहता है कि हमारे भेद छिपे के छिपे रह जायें, मगर यह इसकी भूल है, क्योंकि किसी के ऐब छिपे नहीं रहते। सब नहीं तो बहुत कुछ दोनों कुमारों को मालूम हो ही चुके हैं और महाराज भी जान गए हैं, ऐसी अवस्था में इसे अपना किस्सा पूरा-पूरा बयान करके दुनिया में एक नजीर छोड़ देनी चाहिए और साथ ही इसके (भूतनाथ की तरफ देखते हुए) अपने दिल के बोझ को भी हलका कर देना चाहिए। भूतनाथ, तुम्हारे दो-चार भेद ऐसे हैं जिन्हें सुनकर लोगों की आँखें खुल जायेंगी, और लोग समझेंगे, कि हाँ, आदमी ऐसे-ऐसे काम भी कर गुजरते हैं और उनका नतीजा ऐसा होता है, मगर यह तो कुछ तुम्हारे ही ऐसे बुद्धिमान और अनूठे ऐयार का काम है, कि इतना करने पर भी आज तुम भले-चंगे ही नहीं दिखाई देते हो, बल्कि नेकनामी के साथ महाराज के ऐयार कहलाने की इज्जत भी पा चुके हो। मैं फिर कहता हूँ कि किसी बुरी नीयत से इन बातों का जिक्र मैं नहीं करता, बल्कि तुम्हारे दिल का खुटका दूर करने के साथ-ही-साथ, जिसके नाम से तुम डरते हो, उन्हें तुम्हारा दोस्त बनाना चाहता हूँ, अतः तुम्हें बे-खौफ अपना हाल बयान कर देना चाहिए।"

भूतनाथ—ठीक है, मगर क्या करूँ, मेरी जुबान नहीं खुलती, मैंने ऐसे-ऐसे बुरे काम किए हैं कि जिन्हें याद करके आज मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, और आत्महत्या करने की इच्छा होती है, मगर नहीं, मैं बदनामी के साथ दुनिया से उठ जाना पसन्द नहीं करता, अतएव जहाँ तक हो सकेगा, एक दफे नेकनामी अवश्य पैदा करूँगा।

इन्द्रजीतसिंह—नेकनामी पैदा करने का ध्यान जहाँ तक बना रहे अच्छा ही है, परन्तु मैं समझता हूँ कि तुम नेकनामी उसी दिन पैदा कर चुके जिस दिन हमारे महाराज ने तुम्हें अपना ऐयार बनाया, इसलिए कि तुमने इधर बहुत ही अच्छे काम किये हैं, और वे सब ऐसे थे कि जिन्हें अच्छे-से-अच्छा ऐयार भी कदाचित् नहीं कर सकता था। चाहे तुमने पहले कैसी ही बुराई और कैसे ही खोटे काम क्यों न किये हों, मगर आज हम लोग तुम्हारे देनदार हो रहे हैं, तुम्हारे अहसान के बोझ से दबे हुए हैं, और समझते हैं कि तुम अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त कर चुके हो।

भूतनाथ—आप जो कुछ कहते हैं, वह आपका बड़प्पन है, परन्तु जो मैंने कुछ कुकर्म किए हैं, मैं समझता हूँ कि उनका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है, तथापि अब तो मैं महाराज की शरण में आ ही चुका हूँ, और महाराज ने भी मेरी बुराइयों पर ध्यान न देकर मुझे अपना दासानुदास स्वीकार कर लिया है, इससे मेरी आत्मा सन्तुष्ट है और मैं अपने को दुनिया में मुँह दिखाने योग्य समझने लगा हूँ। मैं यह भी समझता हूँ कि आप जो कुछ आज्ञा कर रहे हैं, यह वास्तव में महाराज की आज्ञा है, जिसे मैं कदापि उल्लंघन नहीं कर सकता, अतः मैं आज अपनी अद्भुत जीवनी सुनाने के लिए तैयार हूँ, परन्तु...

इतना कहकर भूतनाथ ने एक लम्बी साँस ली, और महाराज सुरेन्द्रसिंह की

तरफ देखा ।

सुरेन्द्रसिंह—भूतनाथ, यद्यपि हम लोग तुम्हारा कुछ-कुछ हाल जान चुके हैं, मगर फिर भी तुम्हारा पूरा-पूरा हाल तुम्हारे ही मुँह से सुनने की इच्छा रखते हैं । तुम बयान करने में किसी तरह का संकोच न करो । इससे तुम्हारा दिल भी हल्का हो जायेगा, और दिन-रात जो तुम्हें खुटका बना रहता है, वह भी जाता रहेगा ।

भूतनाथ—जो आज्ञा !

इतना कहकर भूतनाथ ने महाराज को सलाम किया और अपनी जीवनी इस तरह बयान करने लगा—

भूतनाथ की जीवनी

भूतनाथ—सबके पहले मैं वही बात कहूँगा, जिसे आप लोग अभी नहीं जानते, अर्थात् मैं नौगढ़ के रहने वाले और देवीसिंह के सगे चाचा जीवनसिंहजी का लड़का हूँ । मेरी सौतेली माँ मुझे देखना पसन्द नहीं करती थी और मैं उसकी आँखों में काँटे की तरह गड़ा करता था । मेरे ही सबब से मेरी माँ की इज्जत और कदर थी और उस बाँझ को कोई पूछता भी न था, अतएव वह मुझे दुनिया से ही उठा देने की फिक्र में लगी और यह बात मेरे पिता को भी मालूम हो गई, इसलिए जबकि मैं आठ वर्ष का था तो मेरे पिता ने मुझे अपने मित्र देवदत्त ब्रह्मचारी के सुपुर्द कर दिया जो तेजसिंह के गुरु थे[1] और महात्माओं की तरह नौगढ़ की उसी तिलिस्मी खोह में रहा करते थे, जिसे राजा वीरेन्द्रसिंहजी ने फतेह किया । मैं नहीं जानता कि मेरे पिता ने मेरे विषय में उन्हें क्या समझाया और क्या कहा, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रह्मचारी मुझे अपने लड़के की तरह मानते, पढ़ाते-लिखाते और साथ-साथ ऐयारी भी सिखाते थे, परन्तु जड़ी-बूटियों के प्रभाव से उन्होंने मेरी सूरत में बहुत बड़ा फर्क डाल दिया था, जिसमें मुझे कोई पहचान न ले । मेरे पिता मुझे देखने के लिए बराबर उनके पास आया करते थे ।

इतना कहकर भूतनाथ कुछ देर के लिए चुप रह गया और सबके मुँह की तरफ देखने लगा !

सुरेन्द्रसिंह—(ताज्जुब के साथ) ओफ-ओह ! क्या तुम जीवनसिंह के वही लड़के हो, जिसके बारे में उन्होंने मशहूर कर दिया था कि उसे जंगल में से शेर उठा ले गया ?

भूतनाथ—(हाथ जोड़कर) जी हाँ !

तेजसिंह—और आप वही हैं, जिसे गुरुजी 'फिरकी' कहकर पुकारा करते थे, क्योंकि आप एक जगह ज्यादा देर तक बैठते न थे ।

भूतनाथ—जी हाँ ।

---

1. चन्द्रकान्ता पहले भाग के छठे बयान में तेजसिंह ने अपने गुरु के बारे में राजा वीरेन्द्रसिंह से कुछ कहा था ।

देवीसिंह—यद्यपि मैं बहुत दिनों से आपको भाई की तरह मानने लग गया हूँ, परन्तु आज यह जानकर मेरी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा कि आप वास्तव में मेरे भाई हैं, मगर यह तो बताइए कि ऐसी अवस्था में शेरसिंह आपके भाई क्योंकर हुए ? वह कौन हैं ?

भूतनाथ—वास्तव में शेरसिह मेरा सगा भाई नहीं है, बल्कि गुरुभाई और उन्हीं ब्रह्मचारीजी का लड़का है, मगर हाँ, लड़कपन ही से एकसाथ रहने के कारण हम दोनों में भाई-जैसी मुहब्बत हो गई थी ।

तेजसिंह—आजकल शेरसिंह कहाँ हैं ?

भूतनाथ—मुझे उनकी कुछ भी खबर नहीं है, मगर मेरा दिल गवाही देता है कि अब वे हम लोगों को दिखाई न देंगे ।

वीरेन्द्रसिंह—सो क्यों ?

भूतनाथ—इसीलिए कि वे भी अपने को छिपाये और हम लोगों से मिले-जुले रहते और साथ ही इसके ऐबों से खाली न थे ।

सुरेन्द्रसिंह—खैर, कोई चिन्ता नहीं, अच्छा तब ?

भूतनाथ—अत: मैं उन्हीं ब्रह्मचारीजी के पास रहने लगा । कई वर्ष बीत गए । पिताजी मुझसे मिलने के लिए कभी-कभी आया करते थे, और जब मैं बड़ा हुआ तो उन्होंने मुझे अपने से जुदा करने का सबब भी बयान किया और वे यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि मैं ऐयारी के फन में बहुत तेज औरहोशियार हो गया हूँ । उस समय उन्होंने ब्रह्मचारी-जी से कहा कि इसे किसी रियासत में नौकर रख देना चाहिए तब इसकी ऐयारी खुलेगी । मुख्तसिर यह कि ब्रह्मचारीजी की ही बदौलत मैं गदाधरसिंह के नाम से रणधीरसिंहजी के यहाँ और शेरसिंह महाराज दिग्विजयसिंह के यहाँ नौकर हो गये और यह जाहिर किया गया कि शेरसिंह और गदाधरसिंह दोनों भाई हैं, और दोनों आपस में प्रेम भी ऐसा ही रखते थे ।

उन दिनों रणधीरसिंहजी की जमींदारी में तरह-तरह के उत्पात मचे हुए थे और बहुत से आदमी उनके जानी दुश्मन हो रहे थे । उनके आपस वालों को तो इस बात का विश्वास हो गया था कि अब रणधीरसिंहजी की जान किसी तरह नहीं बच सकती, क्योंकि उन्हीं दिनों उनका ऐयार श्रीसिंह दुश्मनों के हाथों से मारा जा चुका था, और खूनी का कुछ पता नहीं लगता था । कोई दूसरा ऐयार भी उनके पास नहीं था, इसलिए वे बड़े ही तरद्दुद में पड़े हुए थे । यद्यपि उन दिनों उनके यहाँ नौकरी करना अपनी जान खतरे में डालना था, मगर मुझे इन बातों की कुछ भी परवाह न हुई । रणधीरसिंहजी भी मुझे नौकर रखकर बहुत प्रसन्न हुए । मेरी खातिरदारी में कभी किसी तरह की कमी नहीं करते थे । इसके दो सबब थे, एक तो उन दिनों उन्हें ऐयार की सख्त जरूरत थी, दूसरे मेरे पिता से और उनसे कुछ मित्रता भी थी जो कुछ दिन के बाद मुझे मालूम हुई ।

रणधीरसिंहजी ने मेरा ब्याह भी शीघ्र ही करा दिया । सम्भव है कि इसे भी मैं उनकी कृपा और स्नेह के कारण समझूँ, पर यह भी हो सकता है कि मेरे पैर में गृहस्थी की बेड़ी डालने और कहीं भाग जाने लायक न रखने के लिए उन्होंने ऐसा किया हो, क्योंकि

अकेला और बेफिक्र आदमी कहीं पर जन्म भर रहे और काम करे, इसका विश्वास लोगों को कम रहता है। खैर, जो कुछ हो मतलब यह है कि उन्होंने मुझे बड़ी इज्जत और प्यार के साथ अपने यहाँ रखा और मैंने भी थोड़े ही दिनों में ऐसे अनूठे काम कर दिखाए कि उन्हें ताज्जुब होता था। सच तो यह है कि उनके दुश्मनों की हिम्मत टूट गई और वे दुश्मनी की आग में आप ही जलने लगे।

कायदे की बात है कि जब किसी के हाथ से दो-चार काम अच्छे निकल जाते हैं और चारों तरफ उसकी तारीफ होने लगती है, तब वह अपने काम की तरफ से कुछ बेफिक्र हो जाता है। वही हाल मेरा भी हुआ।

आप जानते ही होंगे कि रणधीरसिंहजी का दयाराम नामक एक भतीजा था जिसे वह बहुत प्यार करते थे, और वही उनका वारिस होने वाला था। उसके माँ-बाप लड़कपन ही में मर चुके थे, मगर चाचा की मुहब्बत के सबब उसे भी बाप के मरने का दुःख मालूम न हुआ। वह (दयाराम) उम्र में मुझसे कुछ छोटा था, मगर मेरे और उसके बीच में हद दर्जे की दोस्ती और मुहब्बत हो गई थी। जब हम दोनों आदमी घर पर मौजूद रहते तो बिना मिले जी नहीं मानता था। दयाराम का उठना-बैठना मेरे यहाँ ज्यादा होता था, अक्सर रात को मेरे यहाँ खा-पीकर सो जाता था, और उसके घर वाले भी इसमें किसी तरह का रंज नहीं मानते थे।

जो मकान मुझे रहने के लिए मिला था, वह निहायत उम्दा और शानदार था। उसके पीछे की तरफ एक छोटा-सा नजरबाग था, जो दयाराम के शौक की बदौलत हरदम हरा-भरा, गुजान और सुहावना बना रहता था। प्रायः संध्या के समय हम दोनों दोस्त उसी बाग में बैठकर भाँग-बूटी छानते और संध्योपासन से निवृत्त हो बहुत रात गये तक गप-शप किया करते।

जेठ का महीना था और गर्मी हद दर्जे की पड़ रही थी। पहर रात बीत जाने पर हम दोनों दोस्त उसी नजरबाग में दो चारपाइयों के ऊपर लेटे आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। मेरा खूबसूरत और प्यारा कुत्ता मेरे पायताने की तरफ एक पत्थर की चौकी पर बैठा हुआ। बात करते-करते हम दोनों को नींद आ गई।

आधी रात से कुछ ज्यादा बीती होगी, जब मेरी आँख कुत्ते के भौंकने की आवाज से खुल गई। मैंने उस पर कुछ विशेष ध्यान न दिया और करवट बदलकर फिर आँखें बन्द कर लीं, क्योंकि वह कुत्ता मुझसे बहुत दूर और नजरबाग के पिछले हिस्से की तरफ था, मगर कुछ ही देर बाद वह मेरी चारपाई के पास आकर भौंकने लगा, और पुनः मेरी आँख खुल गई। मैंने कुत्ते को अपने सामने बेचैनी की हालत में देखा, उस समय वह जुबान निकालते हुए जोर-जोर से हाँफ रहा, और दोनों अगले पैरों से जमीन खोद रहा था।

मैं अपने कुत्ते की आदतों को खूब जानता और समझता था, अतः उसकी ऐसी अवस्था देखकर मेरे दिल में खुटका हुआ और मैं घबराकर उठ बैठा। अपने मित्र को भी उठाकर होशियार कर देने की नीयत से मैंने उसकी चारपाई की तरफ देखा, मगर चारपाई खाली पाकर मैं बेचैनी के साथ चारों तरफ देखने लगा और उठकर चारपाई के नीचे खड़े होने के साथ ही मैंने अपने सिरहाने के नीचे से खंजर निकाल लिया। उस समय मेरा

नमकहलाल कुत्ता मेरी धोती पकड़कर बार-बार खींचने और बाग के पिछले हिस्से
तरफ चलने का इशारा करने लगा और जब मैं उसके इशारे के मुताबिक चला तो
धोती छोड़कर आगे-आगे दौड़ने लगा। कदम बढ़ाता हुआ मैं उसके पीछे-पीछे चला।
समय मालूम हुआ कि मेरा कुत्ता जखमी है, उसके पिछले पैर में चोट आई है, इसलिए
पैर उठाकर दौड़ता था। अतः कुत्ते के पीछे-पीछे चलकर मैं पिछली दीवार के पास
पहुँचा जहाँ मालती और मोमियाने की लताओं के सबब घना कुंज और पूरा अन्धक
हो रहा था। कुत्ता उस झुरमुट के पास जाकर रुक गया और मेरी तरफ देखक
दुम हिलाने लगा। उसी समय मैंने झाड़ी में से तीन आदमियों को निकलते हुए देखा ज
बाग की दीवार के पास चले गए और फुर्ती से दीवार लाँघकर पार हो गए। उन तीनों
से एक आदमी के हाथ में एक छोटी-सी गठरी थी जो दीवार लाँघते समय उसके हाथ
छूटकर बाग के भीतर ही गिर पड़ी। निःसन्देह वह गठरी लेने के लिए भीतर को लौटत
मगर उसने मुझे और मेरे कुत्ते को देख लिया था, इसलिए उसकी हिम्मत न पड़ी।

गठरी गिरने के साथ ही मैंने जफील बजाई और खंजर हाथ में लिए हुए ही उस आदमी का पीछा करना चाहा अर्थात् दीवार की तरफ बढ़ा, मगर कुत्ते ने मेरी धोती पकड़ ली और झाड़ी की तरफ हट कर खींचने लगा, जिससे मैं समझ गया कि इस झाड़ी में भी कोई छिपा हुआ है, जिसकी तरफ कुत्ता इशारा कर रहा है। मैं सम्हल कर खड़ा हो गया और गौर के साथ उस झाड़ी की तरफ देखने लगा। उसी समय पत्तों की खड़-खड़ाहाट ने विश्वास दिला दिया कि इसमें कोई और भी है। मैं इस खयाल से कि जिस तरह पहले तीन आदमी दीवार लाँघ कर भाग गये हैं, उसी तरह इसको भी भाग जाने न दूँगा, घूमकर दीवार की तरफ चला गया। उस समय मैंने देखा कि एक चार डंडे की सीढ़ी दीवार के साथ लगी हुई है, जिसके सहारे वे तीनों निकल गये थे। मैंने वह सीढ़ी उठाकर उस गठरी के ऊपर फेंक दी जो उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ी थी, क्योंकि मैं उस गठरी की हिफाजत का भी खयाल कर रहा था।

सीढ़ी हटाने के साथ ही दो आदमी उस झाड़ी में से निकले और बड़ी बहादुरी के साथ मेरा मुकाबला किया, और मैं भी जी तोड़कर उनके साथ लड़ने लगा। अन्दाज से मालूम हो गया कि गठरी उठा लेने की तरफ ही उन दोनों का विशेष ध्यान है। आप सुन चुके हैं कि मेरे हाथ में केवल खंजर था, मगर उन दोनों के हाथ में लम्बे-लम्बे लट्ठ थे और मुकाबला करने में भी वे दोनों कमजोर न थे। अतः मुझे अपने बचाव का ज्यादा खयाल था और मैं तब तक लड़ाई खतम करना नहीं चाहता था, जब तक मेरे आदमी न आ जायें, जिन्हें जफील देकर मैंने बुलाया था।

आधी घड़ी से ज्यादा देर तक मेरा उनका मुकाबला होता रहा। उसी समय मुझे रोशनी दिखाई दी और मालूम हुआ कि मेरे आदमी चले आ रहे हैं। उनकी तरफ देख-कर मेरा ध्यान कुछ बँटा ही था कि एक आदमी के हाथ का लट्ठ मेरे सिर पर बैठा और मैं चक्कर खाकर जमीन पर गिर पड़ा।

2

जब मेरी आँख खुली, मैंने खुद को अपने आदमियों से घिरा हुआ पाया। मशालों की रोशनी बखूबी हो रही थी। जाँच करने पर मालूम हुआ कि मैं आधी घड़ी से ज्यादा देर तक बेहोश नहीं रहा। जब मैंने दुश्मन के बारे में दरियाफ्त किया, तो मालूम हुआ कि वे दोनों भी भाग गये, मगर मेरे आदमियों के सबब से उस गठरी को नहीं ले जा सके। मैंने अपनी हिम्मत और ताकत पर खयाल किया तो मालूम हुआ कि मैं इस समय उनका पीछा करने लायक नहीं हूँ। आखिर लाचार हो और पहरे का इन्तजाम करके मैं गठरी लिए हुए अपने कमरे में चला आया, मगर अपने मित्र की तरफ से मेरा दिल बड़ा ही बेचैन रहा और तरह-तरह के शक पैदा होते रहे।

मेरे कमरे में रोशनी बखूबी हो रही थी। दरवाजा बन्द करके मैंने गठरी खोली और उसके अन्दर की चीजों को बड़े गौर से देखने लगा।

गठरी में दो जोड़ तो कपड़े निकले जिन्हें मैं पहचानता न था, मगर वे कपड़े पहने हुए और मैले थे। कागजों का एक मुट्ठा निकला, जिसे देखते ही मैं पहचान गया कि यह रणधीरसिंहजी के खास सन्दूक के कागज हैं। मोम का एक सांचा कई कपड़ों की तह में लपेटा हुआ निकला, जो खास रणधीरसिंहजी की मोहर पर से उठाया गया था। इन चीजों के अतिरिक्त मोतियों की एक माला एक कण्ठा और तीन जड़ाऊ अँगूठियाँ निकलीं। ये चीजें मेरे मित्र दयारामसिंह की थीं। इन सब चीजों को पहने हुए ही आज वे मेरे यहाँ से गायब हुए थे।

इन सब चीजों को देखकर मैं बड़ी देर तक सोच-विचार में पड़ा रहा। उसी समय कमरे का वह दरवाजा खुला, जो जनाने मकान में जाने के लिए था और मेरी स्त्री कमला की माँ आती हुई दिखाई पड़ी। उस समय वह एक बच्चे की माँ हो चुकी थी और अपने बच्चे को भी गोद में लिए हुए थी। इसमें कोई शक नहीं कि मेरी वह स्त्री बुद्धिमान थी और छोटे-मोटे कामों में मैं उसकी राय भी लिया करता था।

उसकी सूरत देखते ही मैं पहचान गया कि तरद्दुद और घबड़ाहट ने उसे अपना शिकार बना लिया है अत: मैंने उसे बुलाकर अपने पास बैठाया और सब हाल कह सुनाया साथ ही इसके यह भी कहा कि मैं इसी समय अपने दोस्त का पता लगाने के लिए जाना चाहता हूँ। मगर उसने इस आखिरी बात को कबूल न किया और कहा कि "मेरी राय में पहले रणधीरसिंहजी से मिल लेना चाहिए।"

कई बातों को सोचकर मैंने उसकी राय कबूल कर ली और उस गठरी को लेकर रणधीरसिंहजी से मिलने के लिए रवाना हुआ। मुझे इस बात का भी धोखा लगा हुआ था कि रास्ते में कहीं दुश्मनों से मुलाकात न हो जाये, जो जरूर इस गठरी को छीन लेने की धुन में लगे हुए होंगे, इसलिए मैंने अपने दो शागिर्दों को भी साथ में ले लिया।

रणधीरसिंहजी बेफिक्री और आराम की नींद सो रहे थे जब मैंने पहुँचकर उन्हें उठाया। जागने के साथ ही वे मुझे देखकर चौंके और बोले, "क्यों, क्या मामला है जो

इस समय ऐसे ढंग से यहाँ आये हो ? दयाराम कुशल से तो है ?"

मेरी सूरत देखते ही उन्होंने दयाराम का कुशल पूछा, इससे मुझे बड़ा ही ताज्जुब हुआ। खैर, मैं उनके पास बैठ गया और जो कुछ मामला हुआ था, साफ-साफ कह सुनाया।

मैं इस किस्से को मुख्तसिर ही में बयान करूँगा। रणधीरसिंहजी इस हाल को सुनकर बहुत ही दुःखी और उदास हुए। बहुत कुछ बातचीत करने के बाद अन्त में बोले, "दयाराम मेरा एक ही वारिस है और तुम्हारा दिली दोस्त है, ऐसी अवस्था में उसके लिए क्या करना चाहिए, सो तुम ही सोच लो ! मैं क्या कहूँ ! मैं तो समझ चुका था कि दुश्मनों की तरफ से अब निश्चिन्त हुआ, मगर नहीं···।"

इतना कहकर वे कपड़े से अपना मुँह ढाँपकर रोने लगे। मैं उन्हें बहुत-कुछ समझा बुझाकर बिदा हुआ और अपने घर चला आया। अपनी स्त्री से मिलकर सब हाल कहने और समझाने-बुझाने के बाद मैं अपने शागिर्दों को साथ लेकर घर से बाहर निकला। बस यहीं से मेरी बदकिस्मती का जमाना शुरू हुआ।

इतना कहकर भूतनाथ अटक गया और सिर नीचा करके कुछ सोचने लगा। सब कोई बेचैनी के साथ उसकी तरफ देख रहे थे और भूतनाथ की अवस्था से मालूम होता था कि वह इस बात को सोच रहा है कि मैं अपना किस्सा आगे बयान करूँ या नहीं। उसी समय दो आदमी और कमरे के अन्दर चले आये और महाराज को सलाम करके खड़े हो गये। इनकी सूरत देखते ही भूतनाथ के चेहरे का रंग उड़ गया और वह डरे हुए ढंग से उन दोनों की तरफ देखने लगा।

दोनों आदमी, जो अभी-अभी कमरे में आये, वे ही थे जिन्होंने भूतनाथ को अपना नाम 'दलीपशाह' बतलाया था। इन्द्रदेव की आज्ञा पाकर वे दोनों भूतनाथ के पास ही बैठ गये।

3

प्रेमी पाठक भूले न होंगे कि दो आदमियों ने भूतनाथ से अपना नाम दलीपशाह बतलाया, जिनमें से एक को पहला दलीप और दूसरे को दूसरा दलीप समझना चाहिए।

भूतनाथ तो पहले ही सोच में पड़ गया था कि अपना हाल आगे बयान करे या नहीं, अब दोनों दलीपशाह को देखकर वह और भी घबड़ा गया। ऐयार लोग समझ रहे थे कि अब उसमें बात करने की भी ताकत नहीं रही। उसी समय इन्द्रदेव ने भूतनाथ से कहा, "क्यों भूतनाथ, चुप क्यों हो गये ? कहो हाँ, तब आगे क्या हुआ ?"

इसका जवाब भूतनाथ ने कुछ न दिया और सिर झुकाकर जमीन की तरफ देखने लगा। उस समय पहले दलीपशाह ने हाथ जोड़कर महाराज की तरफ देखा और कहा, "कृपानाथ, भूतनाथ को अपना हाल बयान करने में बड़ा कष्ट हो रहा है, और वास्तव में बात भी ऐसी ही है। कोई भला आदमी अपनी उन बातों को जिन्हें वह ऐब समझता है,

अपनी जबान से अच्छी तरह बयान नहीं कर सकता। अतः यदि आज्ञा हो तो मैं इसका हाल पूरा-पूरा बयान कर जाऊँ, क्योंकि मैं भी भूतनाथ का हाल उतना ही जानता हूँ, जितना स्वयं भूतनाथ। भूतनाथ जहाँ तक बयान कर चुके हैं, उसे मैं बाहर खड़ा-खड़ा सुन भी चुका हूँ। जब मैंने समझा कि अब भूतनाथ से अपना हाल नहीं कहा जाता तब मैं यह अर्ज करने के लिए हाजिर हुआ हूँ। (भूतनाथ की तरफ देखकर) मेरे इस कहने से आप यह न समझिएगा कि मैं आपके साथ दुश्मनी कर रहा हूँ। नही, जो काम आपके सुपुर्द किया गया है, उसे आपके बदले में मैं आसानी के साथ कर देना चाहता हूँ।"

इन दोनों आदमियों (दलीपशाह) को महाराज तथा और सब ने भी ताज्जुब के साथ देखा था, मगर यह समझ कर इन्द्रदेव से किसी ने कुछ भी न पूछा कि जो कुछ है, थोड़ी देर में मालूम हो ही जायेगा, मगर जब दलीपशाह ऊपर लिखी बात बोलकर चुप हो गया, तब महाराज ने भेद-भरी निगाहों से इन्द्रजीतसिंह की तरफ देखा और कुमार ने झुककर धीरे से कुछ कह दिया, जिसे वीरेन्द्रसिंह तथा तेजसिंह ने भी सुना तथा इनके जरिए से हमारे और साथियों को भी मालूम हो गया कि कुमार ने क्या कहा।

दलीपशाह की बात सुनकर इन्द्रदेव ने महाराज की तरफ देखा और हाथ जोड़ कर कहा, "इन्होंने (दलीपशाह ने) जो कुछ कहा, वास्तव में ठीक है, मेरी समझ में अगर भूतनाथ का किस्सा इन्हीं की जवानी सुन लिया जाये तो कोई हर्ज नहीं है!" इसके जवाब में महाराज ने मंजूरी के लिए सिर हिला दिया।

इन्द्रजीतसिंह—(भूतनाथ की तरफ देखकर) भूतनाथ, इसमें तुम्हें किसी तरह का उज्र है?

भूतनाथ—(महाराज की तरफ देखकर और हाथ जोड़कर) जो महाराज की मर्जी, मुझमें 'नहीं' कहने की सामर्थ्य नहीं है। मुझे क्या खबर थी कि कसूर माफ हो जाने पर भी यह दिन देखना नसीब होगा। यद्यपि यह मैं खूब जानता हूँ कि मेरा भेद अब किसी से छिपा नहीं रहा, परन्तु फिर भी अपनी भूल बार-बार कहने या सुनने से लज्जा बढ़ती ही जाती है कम नहीं होती। खैर कोई चिन्ता नहीं, जैसा होगा वैसा अपने कलेजे को मजबूत करूँगा और दलीपशाह की कही हुई बातें सुनूँगा तथा देखूँगा कि ये महाशय कुछ झूठ का भी प्रयोग करते हैं या नहीं।

दलीपशाह—नहीं-नहीं भूतनाथ, मैं झूठ कदापि न बोलूँगा, इससे तुम बेफिक्र रहो! (इन्द्रदेव की तरफ देख के) अच्छा तो अब मैं प्रारम्भ करता हूँ।

दलीपशाह ने इस तरह कहना शुरू किया—

"महाराज, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐयारी के फन में भूतनाथ परले सिरे का उस्ताद और तेज आदमी है। अगर यह ऐयाशी के दरिया में गोते लगाकर अपने को बर्बाद न कर दिए होता तो इसके मुकाबले का ऐयार आज दुनिया में दिखाई न देता। मेरी सूरत देख के ये चौंकते और डरते हैं और इनका डरना वाजिब ही है मगर अब मैं इनके साथ किसी तरह का बुरा बर्ताव नहीं कर सकता, क्योंकि मैं ऐसा करने के लिए दोनों कुमारों से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ और इनकी आज्ञा मैं किसी तरह टाल नहीं सकता क्योंकि इन्हीं की बदौलत आज मैं दुनिया की हवा खा रहा हूँ। (भूतनाथ की

तरफ देख के) भूतनाथ, मैं वास्तव में दलीपशाह हूँ, उस दिन तुमने मुझे नहीं पहचाना तो इसमें तुम्हारी आँखों का कोई कसूर नहीं है, कैद की सख्तियों के साथ-साथ जमाने की चाल ने मेरी सूरत ही बदल दी है, तुम तो अपने हिसाब से मुझे मार ही चुके थे और तुम्हें मुझसे मिलने की कभी उम्मीद भी न थी मगर सुन लो और देख लो कि ईश्वर की कृपा से मैं अभी तक जीता-जागता तुम्हारे सामने खड़ा हूँ। यह कुँअर साहब के चरणों का प्रताप है । अगर मैं कैद न हो जाता तो तुमसे बदला लिए बिना कभी न रहता, मगर तुम्हारी किस्मत अच्छी थी जो मैं कैद हो रह गया और छूटा भी तो कुँअर साहब के हाथ से, जो तुम्हारे पक्षपाती हैं । तुम्हें इन्द्रदेव से बुरा न मानना चाहिए और न यह सोचना चाहिए कि तुम्हें दु:ख देने के लिए इन्द्रदेव तुम्हारा पुराना पचड़ा खुलवा रहे हैं ! तुम्हारा किस्सा तो सब को मालूम हो चुका है, इस समय ज्यों का त्यों चुपचाप रह जाने पर तुम्हारे चित्त को शान्ति नहीं मिल सकती और तुम हम लोगों की सूरत देख-देखकर दिन-रात तरद्दुद में पड़े रहोगे अतः तुम्हारे पिछले ऐबों को खोलकर इन्द्रदेव तुम्हारे चित्त को शान्ति दिया चाहते हैं और तुम्हारे दुश्मनों को, जिनके साथ तुम ही ने बुराई की है, तुम्हारा दोस्त बना रहे हैं । ये यह भी चाहते हैं कि तुम्हारे साथ-ही-साथ हम लोगों का भेद भी खुल जाय और तुम जान जाओ कि हम लोगों ने तुम्हारा कसूर माफ कर दिया है क्योंकि अगर ऐसा न होगा तो जरूर तुम हम लोगों को मार डालने की फिक्र में पड़े रहोगे और हम लोग इस धोखे में रह जायेंगे कि हमने इनका कसूर तो माफ ही कर दिया, अब ये हमारे साथ बुराई न करेंगे। (जीतसिंह की तरफ देखकर) अब मैं मतलब की तरफ झुकता हूँ और भूतनाथ का किस्सा बयान करता हूँ ।

जिस जमाने का हाल भूतनाथ बयान कर रहा है, अर्थात् जिन दिनों भूतनाथ के मकान से दयाराम गायब हो गए थे उन दिनों यही नागर काशी के बाजार में वेश्या बन-कर बैठी हुई अमीरों के लड़कों को चौपट कर रही थी । उसकी बढ़ी-चढ़ी खूबसूरती लोगों के लिए जहर हो रही थी और माल के साथ ही विशेष प्राप्ति के लिए यह लोगों की जान पर भी वार करती थी । यही दशा मनोरमा की भी थी परन्तु उसकी बनिस्बत यह बहुत ज्यादा रुपए वाली होने पर भी नागर की-सी खूबसूरत न थी, हाँ, चालाक जरूर ज्यादा थी । और लोगों की तरह भूतनाथ और दयाराम भी नागर के प्रेमी हो रहे थे । भूतनाथ को अपनी ऐयारी का घमण्ड था और नागर को अपनी चालाकी का । भूतनाथ नागर के दिल पर कब्जा करना चाहता था और नागर इसकी तथा दयाराम की दौलत अपने खजाने में मिलाना चाहती थी ।

दयाराम की खोज में घर से शागिर्दों को साथ लिए हुए बाहर निकलते ही भूतनाथ ने काशी का रास्ता लिया और तेजी के साथ सफर तय करता हुआ नागर के मकान पर पहुँचा । नागर ने भूतनाथ की बड़ी खातिरदारी और इज्जत की तथा कुशल-मंगल पूछने के बाद यकायक यहाँ आने का सबब भी पूछा ।

भूतनाथ ने अपने आने का ठीक-ठीक सबब तो नहीं बताया, मगर नागर समझ गई कि कुछ दाल में काला जरूर है । इसी तरह भूतनाथ को भी इस बात का शक पैदा हो गया कि दयाराम की चोरी में नागर का कुछ लगाव जरूर है अथवा यह उन आद-

मियों को जरूर जानती है जिन्होंने दयाराम के साथ ऐसी दुश्मनी की है ।

भूतनाथ का शक काशी ही वालों पर था इसलिए काशी ही में अड्डा बनाकर इधर-उधर घूमना और दयाराम का पता लगाना आरम्भ किया । जैसे-जैसे दिन बीतता था, भूतनाथ का शक भी नागर के ऊपर बढ़ता जाता था । सुनते हैं कि उसी जमाने में भूतनाथ ने एक औरत के साथ काशीजी में ही शादी भी कर ली थी जिससे कि नानक पैदा हुआ है क्योंकि इस झमेले में भूतनाथ को बहुत दिनों तक काशी में रहना पड़ा था ।

यह सच है कि कम्बख्त रंडियाँ रुपये के सिवा और किसी की नहीं होतीं । जो दयाराम कि नागर को चाहता, मानता और दिल खोलकर रुपया देता था, नागर उसी के खून की प्यासी हो गई क्योंकि ऐसा करने से उसे विशेष प्राप्ति की आशा थी । भूतनाथ ने यद्यपि अपने दिल का हाल नागर से बयान नहीं किया मगर नागर को विश्वास हो गया कि भूतनाथ को उस पर शक है और यह दयाराम ही की खोज में काशी आया हुआ है, अतः नागर ने अपना उचित प्रबन्ध करके काशी छोड़ दी और गुप्त रीति से जमानिया में जा बसी । भूतनाथ भी मिट्टी सूँघता हुआ उसकी खोज में जमानिया जा पहुँचा और एक भाड़े का मकान लेकर वहाँ रहने लगा ।

इस खोज-ढूंढ़ में वर्षों बीत गये, मगर दयाराम का पता न लगा । भूतनाथ ने अपने मित्र इन्द्रदेव से भी मदद माँगी और इन्द्रदेव ने मदद दी भी मगर नतीजा कुछ भी न निकला । इन्द्रदेव ही के कहने से मैं उन दिनों भूतनाथ का मददगार बन गया था ।

इस किस्से के सम्बन्ध में रणधीरसिंह के रिश्तेदारों की तथा जमानिया गयाजी और राजगृह इत्यादि की भी बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं परन्तु मैं भी भूतनाथ का मददगार था, मगर अफसोस, भूतनाथ की किस्मत तो कुछ और ही कराना चाहती थी इसलिए हम लोगों की मेहनत का कोई अच्छा नतीजा न निकला, बल्कि एक दिन जब मिलने के लिए मैं भूतनाथ के डेरे पर गया तो मुलाकात होने के साथ ही भूतनाथ ने आँखें बदलकर मुझसे कहा, "दलीपशाह, मैं तो तुम्हें बहुत अच्छा और नेक समझता था मगर तुम बहुत ही बुरे और दगाबाज निकले । मुझे ठीक-ठीक पता लग चुका है कि दयाराम का भेद तुम्हारे दिल के अन्दर है और तुम हमारे दुश्मनों के मददगार हो और भेदिए हो तथा खूब जानते हो कि इस समय दयाराम कहाँ हैं । तुम्हारे लिए यही अच्छा है कि सीधी तरह उनका (दयाराम का) पता बता दो, नहीं तो मैं तुम्हारे साथ बुरी तरह पेश आऊँगा और तुम्हारी मिट्टी पलीद करके छोड़ूँगा ।"

महाराज, मैं नहीं कह सकता कि उस समय भूतनाथ की इन बेतुकी बातों को सुनकर मुझे कितना क्रोध चढ़ आया । इसके पास बैठा भी नहीं और न इसकी बात का कुछ जवाब ही दिया, ॰ ा चुपचाप पिछले पैर लौटा और मकान के बाहर निकल आया । मेरा घोड़ा बाहर खड़ा था, मैं उस पर सवार होकर सीधे इन्द्रदेव की तरफ चला गया । (इन्द्रदेव की तरफ हाथ का इशारा करके) दूसरे दिन इनके पास पहुँचा और जो कुछ बीती थी इनसे कह सुनायी । इन्हें भी भूतनाथ की बातें बहुत बुरी मालूम हुई और एक लम्बी साँस लेकर ये मुझसे बोले, "मैं नहीं जानता कि इन दो-चार दिनों में भूतनाथ को कौन-सी नई बात मालूम हो गई और किस बुनियाद पर उसने तुम्हारे साथ ऐसा सलूक

किया। खैर कोई चिन्ता नहीं, भूतनाथ अपनी इस बेवकूफी पर अफसोस करेगा और पछतावेगा, तुम इस बात का खयाल न करो और भूतनाथ से मिलना-जुलना छोड़कर दयाराम की खोज में लगे रहो, तुम्हारा अहसान रणधीरसिंह पर और मेरे ऊपर होगा।

इन्द्रदेव ने बहुत कुछ कह-सुनकर मेरा क्रोध शान्त किया और दो दिन तक मुझे अपने यहाँ मेहमान रक्खा। तीसरे दिन मैं इन्द्रदेव से बिदा होने वाला ही था कि तभी इनके एक शागिर्द ने आकर एक विचित्र खबर सुनाई। उसने कहा कि आज रात को बारह बजे के समय मिर्जापुर के एक जमींदार 'राजसिंह' के यहाँ दयाराम के होने का पता मुझे लगा है। खुद मेरे भाई ने यह खबर दी है। उसने यह भी कहा है कि आज कल नागर भी उन्हीं के यहाँ है।

इन्द्रदेव—(शागिर्द से) वह खुद मेरे पास क्यों नहीं आया ?

शागिर्द—वह आप ही के पास आ रहा था, मुझसे रास्ते में मुलाकात हुई और उसके पूछने पर मैंने कहा कि दयाराम जी का पता लगाने के लिए मैं तैनात किया गया हूँ। उसने जवाब दिया कि अब तुम्हारे जाने की कोई जरूरत न रही, मुझे उनका पता लग गया और यही खुशखबरी सुनाने के लिए मैं सरकार के पास जा रहा था, मगर अब तुम मिल गये हो तो मेरे जाने की कोई जरूरत नहीं। जो कुछ मैं कहता हूँ, तुम जाकर उन्हें सुना दो और मदद लेकर बहुत जल्द मेरे पास आओ। मैं फिर उसी जगह जाता हूँ, कहो ऐसा न हो कि दयाराम जी वहाँ से भी निकालकर किसी दूसरी जगह पहुँचा दिये जायँ और हम लोगों को पता न लगे, मैं जाकर इस बात का ध्यान रक्खूँगा। इसके बाद उसने सब कैफियत बयान की और अपने मिलने का पता बताया।

इन्द्रदेव—ठीक है उसने जो कुछ किया बहुत अच्छा किया, अब उसे मदद पहुँचाने का बन्दोबस्त करना चाहिए।

शागिर्द—यदि आज्ञा हो तो भूतनाथ को भी इस बात की इत्तिला दे दी जाय ?

इन्द्रदेव—कोई जरूरत नहीं, अब तुम जाकर कुछ आराम करो, तीन घण्टे बाद फिर तुम्हें सफर करना होगा।

इसके बाद इन्द्रदेव का शागिर्द जब अपने डेरे पर चला गया, तब मुझसे और इन्द्रदेव से बातचीत होने लगी। इन्द्रदेव ने मुझसे मदद माँगी और मुझे मिर्जापुर जाने के लिए कहा, मगर मैंने इनकार किया और कहा कि अब मैं न तो भूतनाथ का मुँह देखूँगा और न उसके किसी काम में शरीक होऊँगा। इसके जवाब में इन्द्रदेव ने मुझे पुनः समझाया और कहा कि यह काम भूतनाथ का नहीं है, मैं कह चुका हूँ कि इसका अहसान मुझ पर और रणधीरसिंह जी पर होगा।

इसी तरह की बहुत-सी बातें हुईं, लाचार मुझे इन्द्रदेव की बात माननी पड़ी और कई घण्टे के बाद इन्द्रदेव के उसी शागिर्द 'शम्भू' को साथ लिए हुए मैं मिर्जापुर की तरफ रवाना हुआ। दूसरे दिन हम लोग मिर्जापुर जा पहुँचे और बताये हुए ठिकाने पर पहुँचकर शम्भू के भाई से मुलाकात की। दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि दयाराम अभी तक मिर्जापुर की सरहद के बाहर नहीं गये हैं, अतः जो कुछ हम लोगों को करना था, आपस में तय करने के बाद सूरत बदलकर बाहर निकले।

दयाराम को ढूँढ़ निकालने के लिए हमने कैसी-कैसी मेहनत की और हम लोगों को किस-किस तरह की तकलीफें उठानी पड़ीं, इसका बयान करना किस्से को व्यर्थ तूल देना और अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना है। महाराज के (आपके) नामी ऐयारों ने जैसे-अनूठे काम किये हैं उनके सामने हमारी ऐयारी कुछ भी नहीं है अतएव केवल इतना ही कहना काफी है कि हम लोगों ने अपनी हिम्मत से बढ़कर काम किया और हद दर्जे की तकलीफ उठाकर दयाराम जी को ढूँढ़ निकाला। केवल दयाराम को नहीं, बल्कि उनके साथ-ही-साथ 'राजसिंह' को भी गिरफ्तार करके हम लोग अपने ठिकाने पर ले आये, मगर अफसोस! हम लोगों की सब मेहनत पर भूतनाथ ने पानी ही नहीं फेर दिया, बल्कि जन्म भर के लिए अपने माथे पर कलंक का टीका भी लगाया।

कैद की सख्ती उठाने के कारण दयाराम जी बहुत ही कमजोर और बीमार हो रहे थे, उनमें बात करने की भी ताकत न थी, इसलिए हम लोगों ने उसी समय उन्हें उठाकर इन्द्रदेव के पास ले जाना मुनासिब न समझा और दो-तीन दिन तक आराम देने की नीयत से अपने गुप्त स्थान पर, जहाँ हम लोग टिके हुए थे, ले गये। जहाँ तक हो सका, नरम बिछावन का इन्तजाम करके उस पर उन्हें लिटा दिया और उनके शरीर में ताकत लाने का बन्दोबस्त करने लगे। इस बात का भी निश्चय कर लिया कि जब तक इनकी तबीयत ठीक न हो जायगी, इनसे कैद किये जाने का सबब तक न पूछेंगे।

दयाराम जी के आराम का इन्तजाम करने के बाद हम लोगों ने अपने-अपने हर्बे खोलकर उनकी चारपाई के नीचे रख दिए, कपड़े उतारे और बातचीत करने तथा दुश्मनी का सबब जानने के लिए राजसिंह को होश में लाये और उसकी मुश्कें खोलकर बातचीत करने लगे क्योंकि उस समय इस बात का डर हम लोगों को कुछ भी न था कि वह हम पर हमला करेगा या हम लोगों का कुछ बिगाड़ सकेगा।

जिस मकान में हम लोग टिके हुए थे वह बहुत ही एकान्त और उजाड़ मुहल्ले में था। रात का समय था और मकान की तीसरी मंजिल पर हम लोग बैठे हुए थे, एक मद्धिम चिराग आले पर जल रहा था। दयाराम जी का पलंग हम लोगों के पीछे की तरफ था और राजसिंह सामने बैठा हुआ ताज्जुब के साथ हम लोगों का मुँह देख रहा था। उसी समय यकायक कई धमाके होने की आवाज आई और उसके कुछ ही देर बाद भूतनाथ तथा उसके दो साथियों को हम लोगों ने अपने सामने खड़ा देखा। सामना होने के साथ ही भूतनाथ ने मुझसे कहा, "क्यों बे शैतान के बच्चे, आखिर मेरी बात ठीक निकली न! तू ही ने राजसिंह के साथ मेल करके हमारे साथ दुश्मनी पैदा की! खैर, ले अपने किए का फल चख!"

इतना कहकर भूतनाथ ने मेरे ऊपर खंजर का वार किया जिसे बड़ी खूबी के साथ मेरे साथी ने रोका। मैं भी उठकर खड़ा हो गया और भूतनाथ के साथ लड़ाई होने लगी। भूतनाथ ने एक ही हाथ में राजसिंह का काम तमाम कर दिया और थोड़ी ही देर में मुझे भी खूब जख्मी किया यहाँ तक कि मैं जमीन पर गिर पड़ा और मेरे दोनों साथी भी बेकार हो गये। उस समय दयारामजी को, जो पड़े-पड़े सब तमाशा देख रहे थे जोश चढ़ आया और चारपाई पर से उठकर खाली हाथ भूतनाथ के सामने आ खड़े हुए, कुछ बोला

ही चाहते थे कि भूतनाथ के हाथ का खंजर उनके कलेजे के पार हो गया और वे बेदम होकर जमीन पर गिर पड़े।

4

मैं नहीं कह सकता कि भूतनाथ ने ऐसा क्यों किया। भूतनाथ का कौल तो यही है कि मैंने उनको पहचाना नहीं, और धोखा हुआ। खैर जो हो, दयाराम के गिरते ही मेरे मुंह से 'हाय' की आवाज निकली और मैंने भूतनाथ से कहा, "ऐ कम्बख्त! तूने बेचारे दयाराम को क्यों मार डाला जिन्हें बड़ी मुश्किल से हम लोगों ने खोज निकाला था!"

मेरी बात सुनते ही भूतनाथ सन्नाटे में आ गया। इसके बाद उसके दोनों साथी तो न मालूम क्या सोचकर एकदम भाग खड़े हुए, मगर भूतनाथ बड़ी बेचैनी से दयाराम के पास बैठकर उनका मुँह देखने लगा। उस समय भूतनाथ के देखते ही देखते उन्होंने आखिरी हिचकी ली और दम तोड़ दिया। भूतनाथ उनकी लाश के साथ चिपटकर रोने लगा और बड़ी देर तक रोता रहा। तब तक हम तीनों आदमी पुनः मुकाबला करने लायक हो गये और इस बात से हम लोगों का साहस और भी बढ़ गया कि भूतनाथ के दोनों साथी उसे अकेला छोड़कर भाग गये थे। मैंने मुश्किल से भूतनाथ को अलग किया और कहा, "अब रोने और नखरा करने से फायदा ही क्या होगा, उसके साथ ऐसी ही मुहब्बत थी तो उन पर वार न करना था, अब उन्हें मारकर औरतों की तरह नखरा करने बैठे हो!"

इतना सुनकर भूतनाथ ने अपनी आँखें पोंछीं और मेरी तरफ देख के कहा, "क्या मैंने जानबूझकर इन्हें मार डाला है?"

मैं—बेशक! क्या यहाँ आने के साथ ही तुमने उन्हें चारपाई पर पड़े नहीं देखा था?

भूतनाथ—देखा था, मगर मैं नहीं जानता था कि ये दयाराम हैं। इतने मोटे-ताजे आदमी को यकायक ऐसा दुबला-पतला देखकर मैं कैसे पहचान सकता था?

मैं—क्या खूब, ऐसे ही तो तुम अन्धे थे? खैर, इसका इन्साफ तो रणधीरसिंह के सामने ही होगा, इस समय तुम हमसे फैसला कर लो, क्योंकि अभी तक तुम्हारे दिल में लड़ाई का हौसला जरूर बना होगा।

भूतनाथ—(अपने को संभालकर और मुँह पोंछकर) नहीं-नहीं, मुझे अब लड़ने का हौसला नहीं है, जिसके वास्ते मैं लड़ता था जब वही नहीं रहा तो अब क्या? मुझे ठीक पता लग चुका था कि दयाराम तुम्हारे फेर में पड़े हुए हैं, और अपनी आँखों से देख भी लिया, मगर अफसोस है कि मैंने पहचाना नहीं और ये इस तरह धोखे में मारे गये। लेकिन इसका कसूर भी तुम्हारे ही सिर लग सकता है।

मैं—खैर, अगर तुम्हारे किए हो सके तो तुम बिल्कुल कसूर मेरे ही सिर थोप देना, मैं अपनी सफाई आप कर लूंगा, मगर इतना समझ रखो कि लाख कोशिश करने पर भी तुम अपने को बचा नहीं सकते, क्योंकि मैंने इन्हें खोज निकालने में जो कुछ मेहनत की थी, वह इन्द्रदेवजी के कहने से की थी, न तो मैं अपनी प्रशंसा कराना चाहता था और न इनाम ही लेना चाहता था, बल्कि जरूरत पड़ने पर मैं इन्द्रदेव की गवाही दिला सकता हूँ और तुम भी अपने को बेकसूर साबित करने के लिए नागर को पेश कर देना, जिसके कहने और सिखाने में आकर तुमने मेरे साथ दुश्मनी पैदा कर ली।

इतना सुनकर भूतनाथ सन्नाटे में आ गया। सिर झुकाकर देर तक सोचता रहा और इसके बाद लम्बी साँस लेकर उसने मेरी तरफ देखा और कहा, "बेशक मुझे नागर कम्बख्त ने धोखा दिया ! अब मुझे भी इन्हीं के साथ मर-मिटना चाहिए।" इतना कहकर भूतनाथ ने खंजर हाथ में ले लिया, मगर कुछ न कर सका, अर्थात् अपनी जान न दे सका।

महाराज, जवांमर्दों का कहना बहुत ठीक है कि बहादुरों को अपनी जान प्यारी नहीं होती। वास्तव में जिसे अपनी जान प्यारी होती है, वह कोई हौसले का काम नहीं कर सकता और जो अपनी जान हथेली पर लिए रहता है और समझता है कि दुनिया में मरना एक बार ही है, कोई बार-बार नहीं मरता, वही सब कुछ कर सकता है। भूतनाथ के बहादुर होने में सन्देह नहीं, परन्तु इसे अपनी जान प्यारी जरूर थी और इस उल्टी बात का सबब यही था कि वह ऐयाशी के नशे में चूर था। जो आदमी ऐयाश होता है, उसमें ऐयाशी के सबब कई तरह की बुराइयाँ आ जाती हैं और बुराइयों की बुनियाद जम जाने के कारण ही उसे अपनी जान प्यारी हो जाती है, तथा वह कोई भी काम नहीं कर सकता। यही सबब था कि उस समय भूतनाथ जान न दे सका, बल्कि उसकी हिफाजत करने का ढंग जमाने लगा, नहीं तो उस समय मौका ऐसा ही था, इससे जैसी भूल हो गई थी, उसका बदला तभी पूरा होता जब यह भी उसी जगह अपनी जान दे देता और उस मकान से तीनों लाशें एक साथ ही निकाली जातीं।

भूतनाथ ने कुछ देर तक सोचने के बाद मुझसे कहा—"मुझे इस समय अपनी जान भारी हो रही है है और मैं मर जाने के लिए तैयार हूँ, मगर मैं देखता हूँ कि ऐसा करने से भी किसी को फायदा नहीं पहुँचेगा। मैं जिसका नमक खा चुका हूँ और खाता हूँ, उसका और भी नुकसान होगा क्योंकि इस समय वह दुश्मनों से घिरा हुआ है। अगर मैं जीता रहूँगा तो उनके दुश्मनों का नामोनिशान मिटाकर उन्हें बेफिक्र कर सकूँगा, अतएव मैं माफी माँगता हूँ कि तुम मेहरबानी कर मुझे सिर्फ दो साल के लिए जीता छोड़ दो।"

मैं—दो वर्ष के लिए क्या, जिन्दगी-भर के लिए मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ। जब तुम मुझसे लड़ना नहीं चाहते तो मैं क्यों तुम्हें मारने लगा ? बाकी रही यह बात कि तुमने खामखाह मुझसे दुश्मनी पैदा कर ली है, सो उसका नतीजा तुम्हें आप से आप मिल जायगा जब लोगों को यह मालूम होगा कि भूतनाथ के हाथ से बेचारा दयाराम मारा गया।

भूतनाथ—नहीं-नहीं, मेरा मतलब तुम्हारी पहली बात से नहीं है, बल्कि दूसरी बात से है, अर्थात् अगर तुम चाहोगे तो लोगों को इस बात का पता ही नहीं लगेगा कि दयाराम भूतनाथ के हाथ से मारा गया।

मैं—यह क्योंकर छिप सकता है ?

भूतनाथ—अगर तुम छिपाओ तो सब छिप जायगा।

मुख्तसिर यह कि धीरे-धीरे बातों को बढ़ाता हुआ भूतनाथ मेरे पैरों पर गिर पड़ा और बड़ी खुशामद के साथ कहने लगा कि तुम इस मामले को छिपाकर मेरी जान बचा लो। केवल इतना ही नहीं, इसने मुझे हर तरह के सब्जबाग दिखाए और कसमें दे-देकर मेरी नाक में दम कर दिया। लालच में तो मैं नहीं पड़ा, मगर पिछली मुरौवत के फेर में जरूर पड़ गया और भेद को छिपाये रखने की कसम खाकर अपने साथियों को साथ लिए हुए मैं उस घर के बाहर निकल गया। भूतनाथ तथा दोनों लाशों को उसी तरह छोड़ दिया, फिर मुझे मालूम नहीं कि भूतनाथ ने उन लाशों के साथ क्या बर्ताव किया।''

यहाँ तक भूतनाथ का हाल कहकर कुछ देर के लिए दलीपशाह चुप हो गया और उसने इस नीयत से भूतनाथ की तरफ देखा कि देखें यह कुछ बोलता है या नहीं। इस समय भूतनाथ की आँखों से आँसू की नदी बह रही थी और वह हिचकियाँ ले-लेकर रो रहा था। बड़ी मुश्किल से भूतनाथ ने अपने दिल को सम्हाला और दुपट्टे से मुह पोंछ कर कहा, ''ठीक है, ठीक है, जो कुछ दलीपशाह ने कहा, सब सच है। मगर यह बात मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि मैंने जानबूझकर दयाराम को नहीं मारा। वहाँ राजसिंह को खुले हुए देखकर मेरा शक यकीन के साथ बदल गया और चारपाई पर पड़े हुए देख कर भी मैंने दयाराम को नहीं पहचाना। मैंने समझा कि यह भी कोई दलीपशाह का साथी होगा। बेशक दलीपशाह पर मेरा शक मजबूत हो गया था और मैं समझ बैठा था कि जिन लोगों ने दयाराम के साथ दुश्मनी की है दलीपशाह जरूर उनका साथी है। यह शक यहाँ तक मजबूत हो गया था कि दयाराम के मारे जाने पर भी दलीपशाह की तरफ से मेरा दिल साफ न हुआ। बल्कि मैंने समझा कि इसी (दलीपशाह) ने दयाराम को वहाँ लाकर कैद किया था। जिस नागर पर मुझे शक हुआ था, उसी कम्बख्त की जादू-भरी बातों में मैं फँस गया और उसी ने मुझे विश्वास दिला दिया कि इसका कर्ता-धर्ता दलीपशाह है। यही सबब है कि इतना हो जाने पर भी मैं दलीपशाह का दुश्मन बना ही रहा। हाँ, दलीपशाह ने एक बात नहीं कही, वह यह है कि इस भेद को छिपाये रखने की कसम खाकर भी दलीपशाह ने मुझे सूखा नहीं छोड़ा। इन्होंने कहा कि तुम कागज पर लिखकर माफी माँगो तब मैं तुम्हें माफ करके यह भेद छिपाये रखने की कसम खा सकता हूँ। लाचार होकर मुझे ऐसा करना पड़ा और मैं माफी के लिए चिट्ठी लिख हमेशा के लिए इनके हाथ में फँस गया।

दलीपशाह—बेशक यही बात है, और मैं अगर ऐसा न करता तो थोड़े ही दिन बाद भूतनाथ मुझे दोषी ठहरा कर आप सच्चा बन जाता। खैर, अब मैं इसके आगे का हाल बयान करता हूँ जिसमें थोड़ा-सा हाल तो ऐसा ही होगा जो मुझे खास भूतनाथ से

मालूम हुआ था।

इतना कहकर दलीपशाह ने फिर अपना बयान शुरू किया—

दलीपशाह—जैसाकि भूतनाथ भी कह चुका है, बहुत मिन्नत और खुशामद से लाचार होकर मैंने कसूरवार होने और माफी माँगने की चिट्ठी लिखाकर इसे छोड़ दिया और इसका ऐब छिपा रखने का वादा करके अपने साथियों को साथ लिए उस घर से बाहर निकल गया और भूतनाथ की इच्छानुसार दयाराम की लाश को और भूतनाथ को उसी मकान में छोड़ दिया। फिर मुझे नहीं मालूम कि क्या हुआ और इसने दयाराम की लाश के साथ कैसा बर्ताव किया।

वहाँ से बाहर होकर मैं इन्द्रदेव की तरफ रवाना हुआ, मगर रास्ते भर सोचता जाता था कि अब मुझे क्या करना चाहिए, दयाराम का सच्चा-सच्चा हाल इन्द्रदेव से बयान करना चाहिए या नहीं। आखिर हम लोगों ने निश्चय कर लिया कि जब भूतनाथ से वादा कर चुके हैं तो इस भेद को इन्द्रदेव से भी छिपा ही रखना चाहिए।

जब हम लोग इन्द्रदेव के मकान में पहुँचे तो उन्होंने कुशल-मंगल पूछने के बाद दयाराम का हाल दरियाफ्त किया जिसके जवाब में मैंने असल मामले को तो छिपा रखा और बात बनाकर यों कह दिया कि जो कुछ मैंने या आपने सुना था, वह ठीक ही निकला अर्थात् राजसिंह ही ने दयाराम के साथ वह सलूक किया और दयाराम राजसिंह के घर में मौजूद भी थे, मगर अफसोस, बेचारे दयाराम को हम लोग छुड़ा न सके और वे जान से मारे गये!

इन्द्रदेव—(चौंककर) हैं! जान से मारे गये!

मैं—जी हाँ, और इस बात की खबर भूतनाथ को भी लग चुकी थी। मेरे पहले ही भूतनाथ, राजसिंह के उस मकान में जिसमें दयाराम को कैद कर रखा था, पहुँच गया और उसने अपने सामने दयाराम की लाश देखी जिसे कुछ ही देर पहले राजसिंह ने मार डाला था, तब भूतनाथ ने उसी समय राजसिंह का सिर काट डाला। सिवाय इसके वह और कर ही क्या सकता था! इसके थोड़ी देर बाद हम लोग भी उस घर जा पहुँचे और दयाराम तथा राजसिंह की लाश और भूतनाथ को वहाँ मौजूद पाया, दरियाफ्त करने पर भूतनाथ ने सब हाल बयान किया और अफसोस करते हुए हम लोग वहाँ से रवाना हुए।

इन्द्रदेव—अफसोस! बहुत बुरा हुआ! खैर, ईश्वर की मर्जी!

मैंने भूतनाथ के ऐब को छिपाकर जो कुछ इन्द्रदेव से कहा, भूतनाथ की इच्छानुसार ही कहा था। भूतनाथ ने भी यही बात मशहूर की और इस तरह अपने ऐब को छिपा रखा।

यहाँ तक भूतनाथ का किस्सा कहकर जब दलीपशाह कुछ देर के लिए चुप हो गया तब तेजसिंह ने उससे पूछा, "तुमने तो भला भूतनाथ की बात मानकर उस मामले को छिपा रखा, मगर शम्भू वगैरह इन्द्रदेव के शागिर्दों ने अपने मालिक से उस भेद को क्यों छिपाया?"

दलीपशाह—(एक लम्बी साँस लेकर) खुशामद और रुपया बड़ी चीज है। बस,

इसी से समझ जाइये और मैं क्या कहूँ !

तेजसिंह—ठीक है, अच्छा तब क्या हुआ ? भूतनाथ की कथा इतनी ही है, या और भी कुछ ?

दलीपशाह—जी अभी भूतनाथ की कथा समाप्त नहीं हुई, अभी मुझे बहुत-कुछ कहना बाकी है। और बातों के सिवाय भूतनाथ से एक कसूर ऐसा हुआ है जिसका रंज भूतनाथ को इससे भी ज्यादा होगा।

तेजसिंह—सो क्या ?

दलीपशाह—सो भी मैं अर्ज करता हूँ।

इतना कहकर दलीपशाह ने फिर कहना शुरू किया—

इस मामले को वर्षों बीत गये। मैं भूतनाथ की तरफ से कुछ दिनों तक बेफिक्र रहा, मगर जब यह मालूम हुआ कि भूतनाथ मेरी तरफ से निश्चिन्त नहीं है बल्कि मुझे इस दुनिया से उठा, बेफिक्र हुआ चाहता है तो मैं भी होशियार हो गया और दिन-रात अपने बचाव की फिक्र में डूबा रहने लगा। (भूतनाथ की तरफ देखकर) भूतनाथ, अब मैं वह हाल बयान करूँगा जिसकी तरफ उस दिन मैंने इशारा किया था, जब तुम हमें गिरफ्तार करके एक विचित्र पहाड़ी स्थान[1] में ले गये थे और जिसके विषय में तुमने कहा था कि—"यद्यपि मैंने दलीपशाह की सूरत नहीं देखी है" इत्यादि। मगर क्या तुम इस समय भी···

भूतनाथ—(बात काटकर) भला मैं कैसे कह सकता हूँ कि मैंने दलीपशाह की सूरत नहीं देखी है जिसके साथ ऐसे-ऐसे मामले हो चुके हैं, मगर उस दिन मैंने तुम्हें भी धोखा देने के लिए वे शब्द कहे थे, क्योंकि मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था। इस कहने से मेरा मतलब था कि अगर तुम दलीपशाह न होगे तो कुछ न कुछ जरूर बात बनाओगे। खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। मगर तुम वास्तव में अब उस किस्से को बयान करने वाले हो ?

दलीपशाह—हाँ, मैं उसे जरूर बयान करूँगा।

भूतनाथ—मगर उसके सुनने से किसी को कुछ फायदा नहीं पहुँच सकता और न किसी तरह की नसीहत ही हो सकती है। वह तो महज मेरी नादानी और पागलपने की बात थी। जहाँ तक मैं समझता हूँ, उसे छोड़ देने से कोई हर्ज नहीं होगा।

दलीपशाह—नहीं, उसका बयान जरूरी जान पड़ता है। क्या तुम नहीं जानते या भूल गये कि उसी किस्से को सुनने के लिए कमला की माँ, अर्थात् तुम्हारी स्त्री यहाँ आई हुई है ?

भूतनाथ—ठीक है, मगर हाय ! मैं सच्चा बदनसीब हूँ जो इतना होने पर भी उन्हीं बातों को···

इन्द्रदेव—अच्छा-अच्छा, जाने दो भूतनाथ ! अगर तुम्हें इस बात का शक है कि दलीपशाह बातें बनाकर कहेगा या उसके कहने का ढंग लोगों पर बुरा असर डालेगा तो

---

1. देखिये चन्द्रकान्ता सन्तति बीसवां भाग, बारहवां बयान।

मैं दलीपशाह को वह हाल कहने से भी रोक दूँगा और तुम्हारे ही हाथ की लिखी हुई तुम्हारी अपनी जीवनी पढ़ने के लिए किसी को दूँगा जो इस सन्दूकड़ी में बन्द है।

इतना कहकर इन्द्रदेव ने वही सन्दूकड़ी निकाली जिसकी सूरत देखने ही से भूतनाथ का कलेजा काँपता था।

उस सन्दूकड़ी को देखते ही एक दफे तो भूतनाथ घबराया-सा होकर काँपा, मगर तुरन्त ही उसने अपने को सँभाल लिया और इन्द्रदेव की तरफ देख के बोला, "हाँ हाँ आप कृपा कर इस सन्दूकड़ी को मेरी तरफ बढ़ाइये, क्योंकि यह मेरी चीज है और मैं इसे लेने का हक रखता हूँ। यद्यपि कई ऐसे कारण हो गये हैं जिनसे आप कहेंगे कि यह सन्दूकड़ी तुम्हें नहीं दी जायगी, मगर फिर भी मैं इसी समय इस पर अपना कब्जा कर सकता हूँ, क्योंकि देवीसिंहजी मुझसे प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि सन्दूकड़ी बन्द की बन्द तुम्हें दिला दूँगा, अब देवीसिंहजी की प्रतिज्ञा झूठी नहीं हो सकती !" इतना कहकर भूतनाथ ने देवीसिंह की तरफ देखा।

देवीसिंह—(महाराज से) निःसन्देह मैं ऐसी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

महाराज—अगर ऐसा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी नहीं हो सकती। मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।

इतना सुनते ही देवीसिंह उठ खड़े हुए, उन्होंने इन्द्रदेव के सामने से वह सन्दूकड़ी उठा ली और यह कहते हुए भूतनाथ के हाथ में दे दी, "लो मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता हूँ, तुम महाराज को सलाम करो जिन्होंने मेरी और तुम्हारी इज्जत रख ली।"

भूतनाथ—(महाराज को सलाम करके) महाराज की कृपा से अब मैं जी उठा।

तेजसिंह—भूतनाथ, तुम यह निश्चय जानो कि यह सन्दूकड़ी अभी तक खोली नहीं गयी है, अगर सहज में खुलने लायक होती तो शायद खुल गयी होती।

भूतनाथ—(सन्दूकड़ी अच्छी तरह देख-भाल कर) बेशक यह अभी तक खुली नहीं है ! मेरे सिवाय कोई दूसरा आदमी इसे बिना तोड़े खोल भी नहीं सकता। यह सन्दूकड़ी मेरी बुराइयों से भरी हुई है, या यों कहिये कि यह मेरे भेदों का खजाना है, यद्यपि इसमें के कई भेद खुल चुके हैं, खुल रहे हैं और खुलते जायेंगे, तथापि इस समय इसे ज्यों का त्यों बन्द पाकर मैं बराबर महाराज को दुआ देता हुआ यही कहूँगा कि मैं जी उठा, जी उठा, जी उठा ! अब मैं खुशी से अपनी जीवनी कहने और सुनने के लिए तैयार हूँ और साथ ही इसके यह भी कह देता हूँ कि अपनी जीवनी के सम्बन्ध में जो कुछ कहूँगा, सच कहूँगा !

इतना कहकर भूतनाथ ने वह सन्दूकड़ी अपने बटुए में रख ली और पुनः हाथ जोड़कर महाराज से बोला, "महाराज, मैं वादा कर चुका हूँ कि अपना हाल सच-सच बयान करूँगा, परन्तु मेरा हाल बहुत बड़ा और शोक, दुःख तथा भयंकर घटनाओं से भरा हुआ है। मेरे प्यारे मित्र इन्द्रदेवजी, जिन्होंने मेरे अपराधों को क्षमा कर दिया है, कहते हैं कि तेरी जीवनी से लोगों का उपकार होगा और वास्तव में बात भी ठीक ही है अतएव कई कठिनाइयों पर ध्यान देकर मैं नियमपूर्वक महाराज से एक महीने की मोहलत माँगता हूँ। इस बीच मैं अपना पूरा-पूरा हाल लिखकर पुस्तक के रूप में महाराज के

सामने पेश करूँगा और सम्भव है कि महाराज उसे सुन-सुनाकर यादगार के तौर पर अपने खजाने में रखने की आज्ञा देंगे। इस एक महीने के बीच में मुझे भी सब बातें याद करके लिख लेने का मौका मिलेगा और मैं अपनी निर्दोष स्त्री तथा उन लोगों से जिन्हें देखने की भी आशा नहीं थी, परन्तु जो बहुत-कुछ दुःख भोगकर भी दोनों कुमारों की बदौलत इस समय यहाँ आ गये हैं और जिन्हें मैं अपना दुश्मन समझता था, मगर अब महाराज की कृपा से जिन्होंने मेरे कसूरों को माफ कर दिया है, मिल-जुलकर कई बातों का पता भी लगा लूंगा, जिससे मेरा किस्सा सिलसिलेवार और कायदे से हो जायगा।"

इतना कहकर भूतनाथ ने इन्द्रदेव, राजा गोपालसिंह, दोनों कुमारों और दलीपशाह वगैरह की तरफ देखा और तुरन्त ही मालूम कर लिया कि उसकी अर्जी कबूल कर ली जायगी।

महाराज ने कहा, "कोई चिन्ता नहीं, तब तक हम लोग कई जरूरी कामों से छुट्टी पा लेंगे।" राजा गोपालसिंह और इन्द्रदेव ने भी इस बात को पसन्द किया और इसके बाद इन्द्रदेव ने दलीपशाह की तरफ देखकर पूछा, "क्यों दलीपशाह, इसमें तुम लोगों को कोई उज्र तो नहीं है ?"

दलीपशाह—(हाथ जोड़कर) कुछ भी नहीं, क्योंकि अब महाराज की आज्ञानुसार हम लोगों को भूतनाथ से किसी तरह की दुश्मनी भी नहीं रही और न यही उम्मीद है कि भूतनाथ हमारे साथ किसी तरह की खुटाई करेगा, परन्तु मैं इतना जरूर कहूँगा कि हम लोगों का किस्सा भी महाराज के सुनने लायक है और हम लोग भूतनाथ के बाद अपना किस्सा भी सुनाना चाहते हैं।

महाराज—निःसन्देह तुम लोगों का किस्सा भी सुनने योग्य होगा और हम लोग उसके सुनने की अभिलाषा रखते हैं। यदि सम्भव हुआ तो पहले तुम्हीं लोगों का किस्सा सुनने में आवेगा। मगर सुनो दलीपशाह, यद्यपि भूतनाथ से बड़ी-बड़ी बुराइयाँ हो चुकी हैं और भूतनाथ तुम लोगों का भी कसूरवार है, परन्तु इधर हम लोगों के साथ भूतनाथ ने जो कुछ किया है, उसके लिए हम लोग इसके अहसानमन्द हैं और इसे अपना हितू समझते हैं।

इन्द्रदेव—बेशक-बेशक !

गोपालसिंह—जरूर हम लोग इसके अहसान के बोझ से दबे हुए हैं।

दलीपशाह—मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। भूतनाथ ने इधर जो-जो अनूठे काम किए हैं, उनका हाल कुँअर साहब की जुबानी हम लोग सुन चुके हैं। इसी खयाल से तथा कुँअर साहब की आज्ञा से हम लोगों ने सच्चे दिल से भूतनाथ का अपराध क्षमा ही नहीं कर दिया वल्कि कुअर साहब के सामने इस बात की प्रतिज्ञा भी कर चुके हैं कि भूतनाथ को दुश्मनी की निगाह से कभी न देखेंगे।

महाराज—बेशक, ऐसा ही होना चाहिए, अतः बहुत-सी बातों को सोचकर और इसकी कार गुजारी पर ध्यान देकर हमने इसके सब कसूर माफ करके इसे अपना ऐयार बना लिया है; आशा है कि तुम लोग भी इसे अपनायत की निगाह से देखोगे और पिछली बातों को बिल्कुल भूल जाओगे।

दलीपशाह—महाराज अपनी आज्ञा के विरुद्ध चलते हुए हम लोगों को कदापि न देखेंगे, यह हमारी प्रतिज्ञा है।

महाराज—(अर्जुनसिंह तथा दलीपशाह के दूसरे साथी की तरफ देख कर) तुम लोगों की जुबान से भी हम ऐसा ही सुनना चाहते हैं।

दलीपशाह का साथी—मेरी भी यही प्रतिज्ञा है और ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरे दिल में दुश्मनी के बदले दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक्की करने वाली भूतनाथ की मुहब्बत पैदा करें।

महाराज—शाबाश ! शाबाश !

अर्जुनसिंह—कुँअरसाहब के सामने मैं जो कुछ प्रतिज्ञा कर चुका हूँ उसे महाराज सुन चुके होंगे। इस समय महाराज के सामने भी शपथ खाकर कहता हूँ कि स्वप्न में भी भूतनाथ के साथ दुश्मनी का ध्यान आने पर मैं अपने को दोषी समझूँगा।

इतना कहकर अर्जुनसिंह ने वह तस्वीर जो उसके हाथ में थी, फाड़ डाली और टुकड़े-टुकड़े करके भूतनाथ के आगे फेंक दी और पुनः महाराज की तरफ देखकर कहा, "यदि आज्ञा हो और बेअदबी न समझी जाय तो हम लोग इसी समय भूतनाथ से गले मिलकर अपने उदास दिल को प्रसन्न कर लें।"

महाराज—यह तो हम स्वयं कहने वाले थे।

इतना सुनते ही दोनों दलीपशाह, अर्जुनसिंह और भूतनाथ आपस में गले मिले और इसके बाद महाराज का इशारा पाकर एक साथ बैठ गये।

भूतनाथ—(दूसरे दलीपशाह और अर्जुनसिंह की तरफ देखकर) अब कृपा करके मेरे दिल का खटका मिटाओ और साफ-साफ बता दो कि तुम दोनों में से असल में अर्जुनसिंह कौन हैं ? जब मैं दलीपशाह को बेहोश करके उस घाटी में ले गया था[1], तब तुम दोनों में से कौन महाशय वहाँ पहुँचकर दूसरे दलीपशाह बनने को तैयार हुए थे ?

दूसरा दलीपशाह—(हँस कर) उस दिन मैं ही तुम्हारे पास पहुँचा था। इत्तिफाक से उस दिन मैं अर्जुनसिंह की सूरत बनकर बाहर घूम रहा था और जब तुम दलीपशाह को धोखा देकर ले चले तब मैंने छिपकर पीछा किया था। आज केवल धोखा देने को ही अर्जुनसिंह के रहते मैं अर्जुनसिंह बन कर दलीपशाह के साथ यहाँ आया हूँ।

इतना कहकर दूसरे दलीपशाह ने पास से गीला गमछा उठाया और अपने चेहरे का रंग पोंछ डाला जो उसने थोड़ी देर के लिए बनाया या लगाया था।

चेहरा साफ होते ही उसकी सूरत ने राजा गोपालसिंह को चौंका दिया और वह यह कहते हुए उसके पास चले गये कि "क्या आप भरतसिंहजी हैं, जिनके विषय में इन्द्रजीतसिंह ने हमें नकाबपोश बनकर इत्तिला दी थी ?"[2] और इसके जवाब में "जी हाँ" सुनकर वे भरतसिंह के गले से चिपट गये। इसके बाद उनका हाथ थामे हुए गोपालसिंह अपनी जगह पर चले आये और भरतसिंह को अपने पास बैठा कर महाराज से

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, बीसवाँ भाग, तेरहवाँ बयान।
2. देखिए बीसवें भाग के आठवें बयान में कुमार की चिट्ठी।

बोले, "इनके मिलने की मुझे हद से ज्यादा खुशी हुई, बहुत देर से मैं चाहता था कि इनके विषय में कुछ पूछूं!"

महाराज—मालूम होता है इन्हें भी दारोगा ही ने अपना शिकार बनाया था?

भरतसिंह—जी हाँ, आज्ञा होने पर मैं अपना हाल बयान करूँगा।

इन्द्रजीतसिंह—(महाराज से) तिलिस्म के अन्दर मुझे पाँच कैदी मिले थे जिनमें से तीन तो यही अर्जुनसिंह, भरतसिंह और दलीपशाह हैं। इसके अतिरिक्त दो और हैं जो यहाँ बुलाये नही गये। दारोगा, मायारानी तथा उसके पक्ष वालों के सम्बन्ध में इन पाँचों ही का किस्सा सुनने योग्य है। जब कैदियों का मुकदमा होगा, तब आप देखियेगा कि इन लोगों की सूरत देखकर कैदियों की क्या हालत होती है।

महाराज—वे दोनों कहाँ हैं?

इन्द्रजीतसिंह—इस समय यहाँ मौजूद नहीं हैं, छुट्टी लेकर अपने घर की अवस्था देखने गये हैं, दो-चार दिन में आ जायेंगे।

भूतनाथ—(इन्द्रदेव से) यदि आज्ञा हो तो मैं भी कुछ पूछूं?

इन्द्रदेव—आप जो कुछ पूछेंगे उसे मैं खूब जानता हूँ। मगर खैर, पूछिये।

भूतनाथ—कमला की माँ आप लोगों को कहाँ से और क्योंकर मिली?

इन्द्रदेव—यह तो उसी की जुबानी सुनने में ठीक होगा। जब वह अपना किस्सा बयान करेगी, कोई बात छिपी न रह जायगी।

भूतनाथ—और नानक की माँ तथा देवीसिंहजी की स्त्री के विषय में कब मालूम होगा?

इन्द्रदेव—वह भी उसी समय मालूम हो जायगा। मगर भूतनाथ, (मुस्कराकर) तुमने और देवीसिंह ने नकाबपोशों का पीछा करके व्यर्थ खटका और तरद्दुद खरीद लिया। यदि उनका पीछा न करते और पीछे से तुम दोनों को मालूम होता कि तुम्हारी स्त्रियाँ भी इस काम में शरीक हुई थीं, तो तुम दोनों को एक प्रकार की प्रसन्नता होती। प्रसन्नता तो अब भी होगी, मगर खटके और तरद्दुद से कुछ खून सुखा लेने के बाद!

इतना कहकर इन्द्रदेव हँस पड़े और इसके बाद सभी के चेहरों पर मुस्कराहट दिखाई देने लगी।

तेजसिंह—(मुस्कराते हुए देवीसिंह से) अब तो आपको भी मालूम हो ही गया होगा कि आपका लड़का तारासिंह कई विचित्र भेदों को आपसे क्यों छिपाता था?

देवीसिंह—जी हाँ, सब कुछ मालूम हो गया। जब अपने को प्रकट करने के पहले ही दोनों कुमारों ने भैरोंसिंह और तारासिंह को अपना साथी बना लिया, तो हम लोग जहाँ तक आश्चर्य में डाले जाते, थोड़ा था!

देवीसिंह की बात सुनकर पुनः सभी ने मुस्करा दिया और अब दरबार का रंग-ढंग ही कुछ दूसरा हो गया अर्थात् तरद्दुद के बदले सभी के चेहरे पर हंसी और मुस्कराहट दिखाई देने लगी।

तेजसिंह—(भूतनाथ से) भूतनाथ, आज तुम्हारे लिए बड़ी खुशी का दिन है, क्योंकि और बातों के अतिरिक्त तुम्हारी नेक और सती स्त्री भी तुम्हें मिल गई। जिसे

तुम मरी समझते थे और हरनामसिंह तुम्हारा लड़का भी तुम्हारे पास बैठा हुआ दिखाई देता है। जो बहुत दिनों से गायब था और जिसके लिए बेचारी कमला बहुत परेशान थी, जब वह हरनामसिंह का हाल सुनेगी, तो बहुत ही प्रसन्न होगी।

भूतनाथ—निःसन्देह ऐसा ही है, परन्तु मैं हरनामसिंह के सामने भी एक सदूकड़ी देखकर डर रहा हूँ कहीं यह भी मेरे लिए कोई दुःख-दर्द सामान लेकर न आया हो?

इन्द्रदेव—(हँस कर) भूतनाथ, अब तुम अपने दिल को व्यर्थ के खटकों में न डालो, जो कुछ होना था, सो हो गया। अब तुम पूरे तौर पर महाराज के ऐयार हो गये, किसी की मजाल नहीं कि तुम्हें किसी तरह की तकलीफ दे सके और महाराज भी तुम्हारे बारे में किसी तरह की शिकायत नहीं सुनना चाहते! हरनामसिंह तो तुम्हारा लड़का ही है, वह तुम्हारे साथ बुराई क्यों करने लगा?

इसी समय महाराज सुरेन्द्रसिंह ने जीतसिंह की तरफ देखकर कुछ इशारा किया और जीतसिंह ने इन्द्रदेव से कहा, "भूतनाथ का मामला तो अब तय हो गया इसके बारे में महाराज किसी तरह की शिकायत सुनना नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त भूतनाथ ने वायदा किया है कि अपनी जीवनी लिख कर महाराज के सामने पेश करेगा। अतः अब रह गये दलीपशाह, अर्जुनसिंह और भरतसिंह तथा कमला की माँ। इन सभी पर जो कुछ मुसीबतें गुजरी हैं, उसे महाराज सुनना चाहते हैं। परन्तु अभी नहीं, क्योंकि विलम्ब बहुत हो गया। अब महाराज आराम करेंगे। अतः अब दरबार बर्खास्त करना चाहिए जिसमें ये लोग भी आपस में मिल-जुलकर अपने दिल की कुलफत निकाल लें, क्योंकि अब यहाँ तो किसी से मिलने में अथवा आपस का बर्ताव करने में परहेज न होना चाहिए।"

इन्द्रजीतसिंह—(हाथ जोड़ कर) जो आज्ञा!

दरबार बर्खास्त हुआ। इन्द्रदेव की इच्छानुसार महाराज आराम करने के लिए जीतसिंह को साथ लिए एक दूसरे कमरे में चले गये। इसके बाद और सब कोई उठे और और अपने-अपने ठिकाने पर, जैसाकि इन्द्रदेव ने इन्तजाम कर दिया था, चले गये मगर कई आदमी जो आराम नहीं करना चाहते थे, वे बँगले के बाहर निकलकर बगीचे की तरफ रवाना हुए।

5

एक सुन्दर पायों वाली मसहरी पर महाराज सुरेन्द्रसिंह लेटे हुए हैं। ऐयारों के सरताज जीतसिंह उसी मसहरी के पास फर्श पर बैठे तथा दाहिने हाथ से मसहरी पर ढासना लगाये धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं।

महाराज—इन्द्रदेव का स्थान बहुत ही सुन्दर और रमणीक है, यहाँ से जाने को जी नहीं चाहता।

जीतसिंह—ठीक है, इस स्थान की तरह इन्द्रदेव का बर्ताव भी चित्त को प्रसन्न

करता है, परन्तु मेरी राय यही है कि तक जहाँ जल्द हो यहाँ से लौट चलना चाहिए।

महाराज—हम भी यही सोचते हैं। इन लोगों की जीवनी और आश्चर्य-भरी कहानी तो वर्षों तक सुनते ही रहेंगे। परन्तु इन्द्रजीत और आनन्दसिंह की शादी जहाँ तक हो सके जल्द कर देनी चाहिए, जिसमें और किसी तरह के विघ्न पड़ने का फिर डर न रहे।

जीतसिंह—जरूर ऐसा होना चाहिए, इसीलिए मैं चाहता हूँ कि यहाँ से जल्द चलिए। भरतसिंह वगैरह की कहानी वहाँ ही सुन लेंगे या शादी के बाद और लोगों को भी यहाँ ले आवेंगे, जिसमें वे लोग भी तिलिस्म और इस स्थान का आनन्द ले लें।

महाराज—अच्छी बात है, खैर अब यह बताओ कि कमलिनी और लाड़िली के विषय में भी तुमने कुछ सोचा ?

जीतसिंह—उन दोनों के लिए जो कुछ आप विचार रहे हैं, वही मेरी भी राय है। उनकी भी शादी दोनों कुमारों के साथ ही कर देनी चाहिए।

महाराज—है न यही राय ?

जीतसिंह—जी हाँ, मगर किशोरी और कामिनी की शादी के बाद। क्योंकि किशोरी एक राजा की लड़की है, इसलिए उसी की औलाद को गद्दी का हकदार होना चाहिए। यदि कमलिनी के साथ पहले शादी हो जायगी तो उसी का लड़का गद्दी का मालिक समझा जायगा, इसी से मैं चाहता हूँ कि पटरानी किशोरी ही बनाई जाय।

महाराज—यह बात तो ठीक है, अतः ऐसा ही होगा और साथ ही इसके कमला की शादी भैरों के साथ और इन्दिरा की तारा के साथ कर दी जायगी।

जीतसिंह—जो मर्जी।

महाराज—अच्छा तो अब यही निश्चय रहा कि दलीपशाह और भरतसिंह की बीती यहाँ से चलने के बाद घर पर ही सुननी चाहिए।

जीतसिंह—जी हाँ, सच तो यों है कि ऐसा करना ही पड़ेगा, क्योंकि इन लोगों की कहानी दारोगा और जयपाल इत्यादि कैदियों से घना सम्बन्ध रखती है, बल्कि यों कहना चाहिए कि इन्हीं लोगों के इजहार पर उन लोगों के मुकदमे का दारोमदार (हेस नेस) है और यही लोग उन कैदियों को लाजवाब करेंगे।

महाराज—निःसन्देह ऐसा ही है, इसके अतिरिक्त उन कैदियों ने हम लोगों तथा हमारे सहायकों को बड़ा दुःख दिया है और दोनों कुमारों की शादी में भी बड़े-बड़े विघ्न डाले हैं। अतएव उन कम्बख्तों को कुमारों की शादी का जलसा भी दिखा देना चाहिए, जिसमें ये लोग भी अपनी आँखों से देख लें कि जिन बातों को वे बिगाड़ना चाहते थे, वे आज कैसी खूबी और खुशी के साथ हो रही हैं, इसके बाद उन लोगों को सजा दी जानी चाहिए। मगर अफसोस तो यह है कि मायारानी और माधवी जमानिया में ही मार डाली गईं, नहीं तो वे दोनों भी देख लेतीं कि···

जीतसिंह—खैर, उनकी किस्मत में यही बदा था.

महाराज—अच्छा, तो एक बात का और खयाल करना चाहिए।

जीतसिंह—आज्ञा ?

महाराजा—भूतनाथ वगैरह को मौका देना चाहिए कि वे अपने सम्बन्धियों से बखूबी मिल-जुल कर अपने दिल का खटका निकाल लें, क्योंकि हम लोग तो उनका हाल वहाँ चल कर ही सुनेंगे।

जीतसिंह—बहुत खूब।

इतना कहकर जीतसिंह उठ खड़े हुए और कमरे से बाहर चले गये।

6

इन्द्रदेव के इस स्वर्ग-तुल्य स्थान में बँगले से कुछ दूर हट कर बगीचे के दक्खिन तरफ एक घना जामुन का पेड़ है, जिसे सुन्दर लताओं ने घेर कर देखने योग्य बना रखा है और वहाँ एक कुंज की-सी छटा दिखाई पड़ती है। उसी के नीचे साफ पानी का एक चश्मा भी बह रहा है। अपनी सुरीली बोली से लोगों के दिल लुभा लेने वाली चिड़ियाएँ संध्या का समय निकट जान अपने घोंसलों के चारों तरफ फुदक-फुदक कर अपने चुलबुले बच्चों को चैतन्य करती हुई कह रही हैं, "देखो, मैं बहुत दूर से तुम लोगों के लिए दाना-पानी अपने पेट में भर लाई हूँ, जिससे तुम्हारी सन्तुष्टि हो जायगी।"

यह रमणीक स्थान ऐसा है कि यहाँ दो-चार आदमी छिप कर इस तरह बैठ सकते हैं कि वे चारों तरफ के आदमियों को बखूबी देख लें, पर उन्हें कोई भी न देखे। इस स्थान पर हम इस समय भूतनाथ और उसकी पहली स्त्री, (कमला की माँ) को पत्थर की चट्टानों पर बैठे बातें करते हुए देख रहे हैं। ये दोनों मुद्दत के बिछड़े हुए हैं, और दोनों के दिल में नहीं तो कमला की माँ के दिल में जरूर शिकायतों का खजाना भरा हुआ है जिसे वह इस समय बेतरह उगलने के लिए तैयार है। प्यारे पाठक, आइये हम आप मिलकर जरा इन दोनों की बातें तो सुन लें।

भूतनाथ—शान्ता[1], आज तुमसे मिलकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ।

शान्ता—क्यों ? जो चीज किसी कारणवश खो जाती है, उसे यकायक पाने से प्रसन्नता हो सकती है, मगर जो चीज जान-बूझ कर फेंक दी जाती है, उसके पाने की प्रसन्नता कैसी ?

भूतनाथ—किसी को कहीं से एक पत्थर का टुकड़ा मिल जाय और वह उसे बेकार या बदसूरत समझ कर फेंक दें तथा कुछ समय के बाद जब उसे यह मालूम हो कि वास्तव में वह हीरा था पत्थर नहीं, तो क्या उसके फेंक देने का उसको दुःख न होगा ? या उसे पुनः पाकर प्रसन्नता न होगी ?

शान्ता—अगर वह आदमी, जिसने हीरे को पत्थर समझकर फेंक दिया है, यह जानकर कि वह वास्तव में हीरा था, उसकी खोज करे, या इस विचार से कि उसे मैंने

---

1. शान्ता कमला की माँ का नाम था।

फलाँ जगह छोड़ा या फेंका है वहाँ जाने से जरूर मिल जायेगा, उसकी तरफ दौड़ जाय, तो बेशक समझा जायगा कि उसे उसके फेंक देने का रंज हुआ था और उसके मिल जाने से प्रसन्नता होगी, लेकिन यदि ऐसा नहीं है तो नहीं।

भूतनाथ—ठीक है, मगर वह आदमी उस जगह, जहाँ उसने हीरे को पत्थर समझकर फेंका, था पुनः उसे पाने की आशा में तभी जायगा जब अपना जाना सार्थक समझेगा। परन्तु जब उसे यह निश्चय हो जायगा कि वहाँ जाने में उस हीरे के साथ तू भी बर्बाद हो जायगा, अर्थात् वह हीरा भी काम का न रहेगा और तेरी भी जान जाती रहेगी, तब वह उसकी खोज में क्यों जायगा?

शान्ता—ऐसी अवस्था में वह अपने को इस योग्य बनावेगा ही नहीं कि वह उस हीरे की खोज में जाने लायक न रहे, यदि यह बात उसके हाथ में होगी और वह उस हीरे को वास्तव में हीरा समझता होगा।

भूतनाथ—बेशक, मगर शिकायत की जगह तो ऐसी अवस्था में हो सकती थी जब वह अपने बिगड़े हुए कँटीले रास्ते की, जिसके सबब से वह उस हीरे तक नहीं पहुँच सकता था, पुनः सुधारने और साफ करने के लिए परले सिरे का उद्योग करता हुआ दिखाई न देता।

शान्ता—ठीक है, लेकिन जब वह हीरा यह देख रहा है कि उसका अधिकारी या मालिक बिगड़ी हुई अवस्था में भी एक मानिक के टुकड़े को कलेजे से लगाए हुए घूम रहा है और यदि वह चाहता तो उस हीरे को भी उसी तरह रख सकता था, मगर अफसोस, उस हीरे की तरफ जो वास्तव में पत्थर ही समझा गया है, कोई भी ध्यान नहीं देता जो बे-हाथ-पैर का होकर भी उसी मालिक की खोज में जगह-जगह की धूल छानता फिर रहा है जिसने जान-बूझकर उसे पैर में गड़ने वाले कंकड़ की तरह अपने आगे से उठाकर फेंक दिया है और जानता है कि उस पत्थर के साथ, जिसे वह व्यर्थ ही में हीरा कह रहा है, वास्तव में छोटी-छोटी हीरे की कनियाँ भी चिपकी हुई हैं जो छोटी होने के कारण सहज ही मिट्टी में मिल जा सकती हैं, तब क्या शिकायत की जगह नहीं है!

भूतनाथ—परन्तु अदृष्ट भी कोई वस्तु है, प्रारब्ध भी कुछ कहा जाता है और होनहार भी किसी चीज का नाम है!

शान्ता—यह दूसरी बात है, इन सभी का नाम लेना वास्तव में निरुत्तर (लाजवाब) होना और चलती बहस को जान-बूझकर बंद कर देना ही नहीं है बल्कि उद्योग ऐसे अनमोल पदार्थ की तरफ से मुँह फेर लेना भी है। अतः जाने दीजिए मेरी यह इच्छा भी नहीं है कि आपको परास्त करने की अभिलाषा से मैं विवाद करती ही जाऊँ, यह तो बात-ही-बात में कुछ कहने का मौका मिल गया और छाती पर पत्थर रखकर जी का उबाल निकाल लिया, नहीं तो जरूरत ही क्या थी।

भूतनाथ—मैं कसूरवार हूँ ओर बेशक कसूरवार हूँ, मगर यह उम्मीद भी तो न थी कि ईश्वर की कृपा से तुम्हें इस दुनिया में इस तरह जीती देखूँगा।

शान्ता—अगर यही आशा या अभिलाषा होती तो अपने परलोकगामी होने की

खबर मुझ अभागी के कानों तक पहुँचाने की कोशिश क्यों करते और···

भूतनाथ—बस-बस, अब मुझ पर दया करो और इस ढंग की बातें छोड़ दो क्योंकि आज बड़े भाग्य से मेरे लिए यह खुशी का दिन नसीब हुआ है । इसे जली-कटी बातें सुनाकर पुनः कड़वा न करो और यह सुनाओ कि तुम इतने दिनों तक कहाँ छिपी हुई थीं और अपनी लड़की कमला को किस तरह धोखा देकर चली गईं कि आज तक वह तुमको मरी हुई ही समझती है ?

इस समय शान्ता का खूबसूरत चेहरा नकाब से ढका हुआ नहीं है। यद्यपि वह जमाने के हाथों सताई हुई तथा दुबली-पतली और उदास है और उसका तमाम बदन पीला पड़ गया है मगर फिर भी आज की यह खुशी उसके सुन्दर बादामी चेहरे पर रौनक पैदा कर रही है और इस बात की इजाजत नहीं देती कि कोई उसे ज्यादा उम्रवाली कह कर खूबसूरतों की पंक्ति में बैठने से रोके । हजार गई-गुजरी होने पर भी वह रामदेई (भूतनाथ की दूसरी स्त्री) से बहुत अच्छी मालूम पड़ती है और इस बात को भूतनाथ भी बड़े गौर से देख रहा है। भूतनाथ की आखिरी बात सुनकर शान्ता ने अपनी डबडबाई हुई बड़ी-बड़ी आँखों को आँचल से साफ किया और एक लम्बी साँस ले कर कहा—

शान्ता—मैं रणधीरसिंह जी के यहाँ से कभी न भागती अगर अपना मुँह किसी को दिखाने लायक समझती । मगर अफसोस, आपके भाई ने इस बात को खूब अच्छी तरह मशहूर किया कि आपके दुश्मन (अर्थात् आप) इस दुनिया से उठ गये । इसके सबूत में उन्होंने बहुत सी बातें पेश कीं, मगर मुझे विश्वास न हुआ, तथापि इस गम में मैं बीमार हो गई और दिन-दिन मेरी बीमारी बढ़ती ही गई । उसी जमाने में मेरी मौसेरी बहिन अर्थात् दलीपशाह की स्त्री मुझे देखने के लिए मेरे घर आई। मैंने अपने दिल का हाल और बीमारी का सबब उससे बयान किया और यह भी कहा कि जिस तरह मेरे पति ने सही-सलामत रह कर भी अपने को मरा मशहूर किया, उसी तरह मुझे तुम कहीं छिपा कर मरा हुआ मशहूर कर दो । अगर ऐसा हो जायगा तो मैं अपने पति को ढूंढ़ निकालने का उद्योग करूँगी । उन्होंने मेरी बात पसन्द कर ली और लोगों को यह कहकर कि मेरे यहाँ की आबोहवा अच्छी है वहाँ शान्ता को बहुत जल्द ही आराम हो जायगा, मुझे अपने यहाँ उठा ले जाने का बन्दोबस्त किया और रणधीरसिंहजी से इजाजत भी ले ली । मैं दो दिन तक अपनी लड़की कमला को नसीहत करती रही और इसके बाद उसे किशोरी के हवाले करके और अपनी छोटे दूध-पीते बच्चे को गोद में लेकर दलीपशाह के घर चली आई और धीरे-धीरे आराम होने लगी । थोड़े ही दिन बाद दलीपशाह के घर में उस भयानक आधी रात के समय आपका आना हुआ, मगर हाय, उस समय आपकी अवस्था पागलों की सी हो रही थी और आपने धोखे में पड़कर अपने प्यारे लड़के का, जिसे मैं अपने साथ ले गई थी, खून कर डाला ।[1]

इतना कहते-कहते शान्ता का जी भर आया और वह हिचकियाँ ले-लेकर रोने

---

1. दलीपशाह ने बीसवें भाग के तेरहवें बयान में इस घटना की तरफ भूतनाथ से इशारा किया ।

लगी । भूतनाथ की बुरी अवस्था हो रही थी और इससे ज्यादे वह उस भयानक घटना का हाल नहीं सुनना चाहता था । वह यह कहता हुआ कि 'बस माफ करो, अब इसका जिक्र न करो' अपनी स्त्री शान्ता के पैरों पर गिरा ही चाहता था कि उसने पैर खींचकर भूतनाथ का सिर थाम लिया और कहा—"हाँ-हाँ, यह क्या करते हो ? क्यों मेरे सिर पर पाप चढ़ाते हो ? मैं खूब जानती हूँ कि आपने उसे बिलकुल नहीं पहचाना मगर इतना जरूर समझते थे कि वह दलीपशाह का लड़का है, अतः फिर भी आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था, खैर अब मैं इस जिक्र को छोड़ देती हूँ ।"

इतना कहकर शान्ता ने अपने आँसू पोंछे और फिर इस तरह बयान करना शुरू किया—

"शोक और दुःख से मैं पुनः बीमार पड़ गई, मगर आशा-लता ने धीरे-धीरे कुछ दिन में अपनी तरह मुझे भी (आराम) कर दिया। यह आशा केवल इसी बात की थी कि एक दफे आपसे जरूर मिलूँगी । मुश्किल तो यह थी कि उस घटना ने दलीपशाह को भी आपका दुश्मन बना दिया था, केवल उस घटना ने ही नहीं, इसके अतिरिक्त भी दलीपशाह को बर्बाद करने में आपने कुछ उठा न रक्खा था, यहाँ तक कि आखिर वह दारोगा के हाथ फँस ही गये ।"

भूतनाथ—(बेचैनी के साथ लम्बी साँस लेकर) ओफ ! मैं कह चुका हूँ कि इन बातों को मत छेड़ो, केवल अपना हाल बयान करो, मगर तुम नहीं मानतीं !

शान्ता—नहीं-नहीं, मैं तो अपना ही हाल बयान कर रही हूँ, खैर, मुख्तसिर ही में कहती हूँ ।

उस घटना के बाद ही मेरी इच्छानुसार दलीपशाह ने मेरा और बच्चे का मर जाना मशहूर किया जिसे सुनकर हरनामसिंह और कमला भी मेरी तरफ से निश्चिन्त हो गये । जब खुद दलीपशाह भी दारोगा के हाथ में फँस गये, तब मैं बहुत ही परेशान हुई और सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिए । उस समय दलीपशाह के घर में उनकी स्त्री, एक छोटा सा बच्चा और मैं, केवल ये तीन ही आदमी रह गये थे। दलीपशाह की स्त्री को मैंने धीरज धराया और कहा कि अभी तू अपनी जान मत बर्बाद कर, मैं बराबर तेरा साथ दूँगी और दलीपशाह को खोज निकालने का उद्योग करूँगी मगर अब हमलोगों को यह घर एकदम छोड़ देना चाहिए और ऐसी जगह छिपकर रहना चाहिए जहाँ दुश्मनों को हम लोगों का पता न लगे । आखिर ऐसा ही हुआ, अर्थात् हम लोगों की जो कुछ जमा-पूँजी थी उसे लेकर हमने उस घर को एक दम छोड़ दिया और काशीजी में जाकर एक अँधेरी गली में पुराने और गंदे मकान में डेरा डाला, मगर इस बात की टोह लेते रहे कि दलीपशाह कहाँ हैं अथवा छूटने के बाद अपने घर की तरफ जा कर हम लोगों को ढूँढ़ते हैं या नहीं । इस फिक्र में मैं कई दफे सूरत बदल कर बाहर निकली और इधर-उधर घूमती रही । इत्तिफाक से दिल में यह बात पैदा हुई कि किसी तरह अपने लड़के हरनामसिंह से छिप कर मिलना और उसे अपना साथी बना लेना चाहिए । ईश्वर ने मेरी यह मुराद पूरी की । जब माधवी कुँअर इन्द्रजीतसिंह को फँसा ले गई और उसके बाद उसने किशोरी पर भी कब्जा कर लिया, तब कमला और हरनामसिंह दोनों आदमी

किशोरी की खोज में निकले और वे एक-दूसरे से जुदा हो गये। किशोरी की खोज में हरनामसिंह काशी की गलियों में घूम रहा था जब उस पर मेरी निगाह पड़ी और मैंने इशारे से अलग बुला कर अपना परिचय दिया। उस को मुझसे मिलकर जितनी खुशी हुई उसे मैं बयान नहीं कर सकती। मैं उसे अपने घर में ले गई और सब हाल उससे कह अपने दिल का इरादा जाहिर किया जिसे उसने खुशी से मंजूर कर लिया। उस समय मैं चाहती तो कमला को भी अपने पास बुला लेती, मगर नहीं, उसे किशोरी की मदद के लिए छोड़ दिया क्योंकि किशोरी के नमक को मैं किसी तरह भूल नहीं सकती थी, अतः मैंने केवल हरनामसिंह को अपने पास रख लिया और खुद चुपचाप अपने घर मैं बैठी रहकर आपका और दलीपशाह का पता लगाने का काम लड़के को सुपुर्द किया। बहुत दिनों तक बेचारा लड़का चारों तरफ मारा फिरा और तरह-तरह की खबरें ला कर मुझे सुनाता रहा। जब आप प्रकट होकर कमलिनी के साथी बन गए और उसके काम के लिए चारों तरफ घूमने लगे तब हरनामसिंह ने भी आपको देखा और पहचान कर मुझे इतिला दी। थोड़े दिन बाद यह भी उसी की जुबानी मालूम हुआ कि अब आप नेकनाम होकर दुनिया में अपने को प्रकट किया चाहते हैं। उस समय मैं बहुत प्रसन्न हुई और मैंने हरनाम को राय दी कि तू किसी तरह राजा वीरेन्द्रसिंह के किसी ऐयार की शागिर्दी कर ले। आखिर वह तारासिंह से मिला और उसके साथ रह कर थोड़े ही दिनों में उसका प्यारा शागिर्द बल्कि दोस्त बन गया तब उसने अपना हाल तारासिंह को कह सुनाया और तारासिंह ने भी उसके साथ बहुत अच्छा प्यार का बर्ताव करके उसकी इच्छानुसार उसके भेदों को छिपाया। तब से हरनामसिंह सूरत बदले हुए तारासिंह का काम करता रहा और मुझे भी आपकी पूरी-पूरी खबर मिलती रही। आपको शायद इस बात की खबर न हो कि तारासिंह की माँ चम्पा से और मुझसे बहिन का रिश्ता है, वह मेरे मामा की लड़की है, अतः चम्पा ने अपने लड़के की जुबानी हरनामसिंह का हाल सुना और जब यह मालूम हुआ कि वह रिश्ते में उसका भतीजा होता है, तब उसने भी उस पर दया प्रकट की और तब से उसे बराबर अपने लड़के की तरह मानती रही।

जमानिया के तिलिस्म को खोलते और कैदियों को साथ लिए हुए जब दोनों कुमार उस खोह वाले तिलिस्मी बँगले में पहुँचे तो उन्होंने भैरोंसिंह और तारासिंह को अपने पास बुला लिया और तिलिस्म का पूरा हाल उनसे कह के उन दोनों को अपने पास रक्खा। दलीपशाह को यह हाल भी तारासिंह ही से मालूम हुआ कि उनके बाल-बच्चे ईश्वर की कृपा से अभी तक राजी-खुशी हैं, साथ ही इसके मेरा हाल भी दलीपशाह को मालूम हुआ। उस समय तारासिंह दोनों कुमारों से आज्ञा लेकर हरनामसिंह को उस बँगले में ले आया और दलीपशाह से उसकी मुलाकात कराई। हरनामसिंह को साथ लेकर दलीपशाह काशी गये और वहाँ से मुझको तथा अपनी स्त्री और लड़के को साथ लेकर कुमार के पास चले आये। जब तारासिंह की जबानी चम्पा ने यह हाल सुना तब वह मुझसे मिलने के लिए तारासिंह के साथ यहाँ अर्थात् उस बँगले में आई।

भूतनाथ—जब दोनों कुमार नकाबपोश बन कर भैरोंसिंह और तारासिंह को यहाँ ले आए, उसके पहले तो तारासिंह यहाँ नहीं आए थे?

शान्ता—जी उसके पहले ही से वे दोनों यहाँ आते जाते रहे, उस दिन तो प्रकट रूप से यहाँ लाए गये थे। क्या इतना हो जाने पर भी आपको अन्दाज से मालूम न हुआ ?

भूतनाथ—ठीक है, इसका शक तो मुझे और देवीसिंह को भी होता रहा।

शान्ता का किस्सा भूतनाथ ने बड़े गौर के साथ ध्यान देकर सुना और तब देर तक आरजू-मिन्नत के साथ शान्ता से माफी माँगता रहा और इसके बाद पुनः दोनों में बातचीत होने लगी।

शान्ता—अब तो आपको मालूम हो गया कि चम्पा यहाँ क्यों कर और किस लिए आई ?

भूतनाथ—हाँ, यह भेद तो खुल गया मगर इसका पता न लगा कि नानक और उसकी माँ का यहाँ आना कैसे हुआ ?

शान्ता—सो मैं न कहूँगी, यह उसी से पूछ लेना।

भूतनाथ—(ताज्जुब से) सो क्यों ?

शान्ता—मैं उसके बारे में कुछ कहना ही नहीं चाहती !

भूतनाथ—आखिर इसका कोई सबब भी है ?

शान्ता—सबब यही है कि उसकी यहाँ कोई इज्जत नहीं है बल्कि वह बेकदरी की निगाह से देखी जाती है।

भूतनाथ—वह है भी इसी योग्य ! पहले तो मैं उसे प्यार करता था, मगर जब यह सुना कि उसी की बदौलत मैं जैपाल (नकली बलभद्र) का शिकार बन गया और एक भारी आफत में फँस गया, तब से मेरी तबीयत उससे खट्टी हो गई।

शान्ता—सो क्यों ?

भूतनाथ—इसीलिए कि वह बेगम की गुप्त सहेली नन्हीं से गहरी मुहब्बत रखती है।[1] और इसी सबब से वह कागज का मुट्ठा जो मैंने अपने फायदे के लिए तैयार किया था, गायब हो के जैपाल के हाथ लग गया और उससे मुझे नुकसान पहुँचा। इस बात का सबूत भी मैंने अपनी आँखों से देख लिया।

शान्ता—सो ठीक है, मैं भी दलीपशाह से यह बात सुन चुकी हूँ।

भूतनाथ—इसी से अब मैं उसे अपनी स्त्री नहीं बल्कि दुश्मन समझता हूँ। केवल नन्हीं से ही नहीं बल्कि कम्बख्त गौहर से भी वह दोस्ती रखती थी और वह दोस्ती पाक न थी। (लम्बी साँस लेकर) अफसोस ! इसी से उस खोटी का लड़का नानक भी खोटा ही निकला।

शान्ता—(मुस्कुराकर) तब आप उसके लिए इतना परेशान क्यों थे ? क्योंकि यह बात सुनने बाद ही तो आपने उसे नकाबपोशों के स्थान पर देखा था !

भूतनाथ—वह परेशानी मेरी उसकी मुहब्बत के सबब से न थी बल्कि इस खयाल से थी कि कहीं वह मुझ पर कोई नई आफत लाने के लिए तो नकाबपोशों से नहीं आ मिली।

---

1. चन्द्रकान्ता सन्तति, उन्नीसवाँ भाग, बारहवाँ बयान, देखिए नकाबपोश की बातचीत।

शान्ता—ठीक भी है, यह खयाल हो सकता था।

भूतनाथ—फिर इसी बीच में जब उसने मुझे जंगल में गाना सुना के धोखा दिया और गिरफ्तार करके अपने स्थान पर ले गई[1], जिसका हाल शायद तुम्हें मालूम होगा, तब मेरा रंज और भी बढ़ गया।

शान्ता—यह हाल मुझे मालूम है मगर यह कार्रवाई उसकी न थी, बल्कि इन्द्रदेव की थी। उन्होंने ही आपके साथ यह ऐयारी की थी और उस दिन जंगल में घोड़े पर सवार जो औरत आपको मिली थी और जिसे आपने अपनी स्त्री समझा था, वह भी इन्द्रदेव का एक ऐयार ही था। यह बात मैं उन्हीं (इन्द्रदेव) की ज़ुबानी सुन चुकी हूँ, शायद आपसे भी वे कहें। हाँ, उस दिन बँगले में जिस औरत को आपने देखा था, वह बेशक नानक की माँ थी। वह तो खुद कैदियों की तरह यहाँ रक्खी गई है, मैदान की हवा क्योंकर खा सकती है! दोनों कुमार नहीं चाहते थे कि प्रकट होने के पहले ही कोई उन लोगों का पता लगा ले इसीलिए ये सब खेल खेले गये। (कुछ सोचकर) आखिर आपने धीरे-धीरे नानक की माँ का हाल पूछ ही लिया, मैं उसके बारे में कुछ भी नहीं कहना चाहती थी, अतः अब इससे आगे और कुछ भी न कहूँगी, आप उसके बारे में मुझसे कुछ न पूछें।

भूतनाथ—नहीं-नहीं, जब इतना बता चुकी हो तो कुछ और भी बताओ क्योंकि मैं उससे मिलकर कुछ भी नहीं पूछना चाहता, बल्कि अब तो उसका मुँह देखना भी मुझे पसन्द नहीं है। अच्छा, यह तो बताओ कि वह कम्बखत यहाँ क्यों लाई गई?

शान्ता—लाई नहीं गई, बल्कि उसी नन्हीं के यहाँ गिरफ्तार की गई, उस समय नानक भी उसके साथ था।

भूतनाथ—(आश्चर्य और क्रोध से) फिर भी उसी नन्हीं के यहाँ गई थी?

शान्ता—जी हाँ।

भूतनाथ—(लम्बी साँस लेकर) लोग सच कहते हैं कि ऐयाशी का नतीजा बहुत बुरा निकलता है।

शान्ता—अतः अब उसके बारे में मुझसे कुछ न पूछिए, इन्द्रदेवजी आपको सब-कुछ बता देंगे।

भूतनाथ—हाँ, ठीक है, खैर, अब उसके बारे में कुछ न पूछूँगा, जो कुछ पूछूँगा वह तुम्हारे और हरनाम ही के बारे में होगा। अच्छा, एक बात और बताओ, आज के दरबार में मैंने हरनाम को हाथ में एक सन्दूकड़ी लिए देखा था। वह सन्दूकड़ी कैसी थी और उसमें क्या था?

शान्ता—उसमें दारोगा के हाथ की लिखी हुई बहुत-सी चिट्ठियाँ हैं जिनके देखने से आपको निश्चय हो जायगा कि आपने दलीपशाह को व्यर्थ ही अपना दुश्मन समझ लिया था। पहले जब दारोगा ने दलीपशाह को लालच दिखा कर लिखा था कि वह आपको गिरफ्तार करा दें, तब दो-चार चिट्ठियों में तो दलीपशाह ने इस नीयत से कि

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, बीसवें भाग का अन्त।

दारोगा की शैतानियों का सबूत उससे मिलकर ही बटोर लें, दारोगा के मतलब ही का जवाब दिया था जिससे खुश होकर उसने कई चिट्ठियों में दलीपशाह को तरह-तरह के सब्जबाग दिखलाए, मगर जब दारोगा की कई चिट्ठियाँ दलीपशाह ने बटोर लीं तब साफ जवाब दे दिया। उस समय दारोगा बहुत घबराया और उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि दलीपशाह मुझसे दुश्मनी करके मेरा यह भेद खोल दे, अतः किसी तरह उसे गिरफ्तार कर लेना चाहिए। उस समय कम्बख्त दारोगा आपसे मिला और उसने दलीपशाह की पहली चिट्ठियाँ आपको दिखा कर खुद आप ही को दलीपशाह का दुश्मन बना दिया, बल्कि आप ही के जरिये से दलीपशाह को गिरफ्तार भी करा लिया।

भूतनाथ—ठीक है, इस विषय में मैंने बहुत बड़ा धोखा खाया।

शान्ता—मगर दलीपशाह को गिरफ्तार कर लेने पर भी वे चिट्ठियाँ दारोगा के हाथ न लगीं क्योंकि वे दलीपशाह की स्त्री के कब्जे में थीं। हम लोग उन्हें अपने साथ लाये हैं जिसमें दारोगा के मुकदमे में पेश करें।

भूतनाथ—अब मेरे दिल का पूरा खुटका निकल गया और मुझे निश्चय हो गया कि हरनाम की कोई कार्रवाई मेरे खिलाफ न होगी।

शान्ता—भला वह कोई काम ऐसा क्यों करेगा जिससे आपको तकलीफ़ हो ? ऐसा खयाल भी आपको न रखना चाहिए।

इन दोनों में इस तरह की बातें हो रही थीं कि किसी के आने की आहट मालूम हुई। भूतनाथ ने जब घूमकर देखा तो नानक पर निगाह पड़ी। जब वह पास आया तब भूतनाथ ने उससे पूछा, "क्या चाहते हो ?"

नानक—मेरी माँ आपसे मिलना चाहती हैं।

भूतनाथ—तो यहाँ पर क्यों न चली आई ? यहाँ कोई गैर तो था नहीं।

नानक—सो तो वही जानें।

भूतनाथ—अच्छा, जाओ, उसे इसी जगह मेरे पास भेज दो।

नानक—बहुत अच्छा।

इतना कहकर नानक चला गया और इसके बाद शान्ता ने भूतनाथ से कहा, "शायद उसे मेरे सामने आपसे बातचीत करना मंजूर न हो, शर्म आती हो या किसी तरह का और कुछ खयाल हो, अतः आज्ञा दीजिए तो मैं चली जाऊँ, फिर···

भूतनाथ—नहीं-नहीं, उसे जो कुछ कहना होगा तुम्हारे सामने ही कहेगी, तुम चुपचाप बैठी रहो।

शान्ता—सम्भव है कि वह मेरे रहते यहाँ न आवे, या उसे इस बात का खयाल हो कि तुम मेरे सामने उसकी बेइज्जती करोगे।

भूतनाथ—हो सकता है, मगर··· (कुछ सोच के) अच्छा, तुम जाओ।

इतना सुनकर शान्ता वहाँ से उठी और बँगले की तरफ रवाना हुई। इस समय सूर्य अस्त हो चुका था और चारों तरफ से अँधेरी झुकी आती थी।

7

इन्द्रदेव का यह स्थान बहुत बड़ा था। इस समय यहाँ जितने आदमी आए हुए हैं उनमें से किसी को किसी तरह की भी तकलीफ नहीं हो सकती थी और इसके लिए प्रबन्ध भी ब॒ अच्छा कर रक्खा गया था। औरतों के लिए एक खास कमरा मुकर्रर किया गया था मगर रामदेई (नानक की माँ) की निगरानी की जाती थी और इस बात का भी बन्दोबस्त कर रक्खा गया था कि कोई किसी के साथ दुश्मनी का बर्ताव न कर सके। महाराज सुरेन्द्रसिंह, वीरेन्द्रसिंह और दोनों कुमारों के कमरे के आगे पहरे का पूरा-पूरा इन्तज़ाम था और हमारे ऐयार लोग भी बराबर चौकन्ने रहा करते थे।

यद्यपि भूतनाथ एकान्त में बैठा हुआ अपनी स्त्री से बातें कर रहा था, मगर यह बात इन्द्रदेव और देवीसिंह से छि॰. हुई न थी जो इस समय बगीचे में टहलते हुए बातें कर रहे थे। इन दोनों के देखते ही देखते नानक भूतनाथ की तरफ गया और लौट आया इसके बाद भूतनाथ की स्त्री अपने डेरे पर चली गई और फिर रामदेई, अर्थात् नानक की माँ, भूतनाथ की तरफ जाती हुई दिखाई पड़ी। उस समय इन्द्रदेव ने देवीसिंह से कहा, "सिंहजी, देखिये भूतनाथ अपनी पहली स्त्री से बातचीत कर चुका है, अब उसने नानक की माँ को अपने पास बुलाया है। शान्ता की जुबानी उसकी खुटाई का सारा हाल तो उसे जरूर मालूम हो ही गया होगा, इसलिए ताज्जुब नहीं कि वह गुस्से में आकर रामदेई के हाथ-पैर तोड़ डाले!"

देवीसिंह—ऐसा हो तो कोई ताज्जुब की बात नहीं है, मगर उस औरत ने भी तो सजा पाने के ही लायक काम किया है।

इन्द्रदेव—ठीक है, मगर इस समय उसे बचाना चाहिए।

देवीसिंह—तो जाइए वहाँ छिप कर तमाशा देखिए और मौका पड़ने पर उसकी सहायता कीजिए। (मुस्कुराकर) आप ही आग लगाते हैं फिर आप ही बुझाने दौड़ते हैं।

इन्द्रदेव—(हँस कर) आप तो दिल्लगी करते हैं।

देवीसिंह—दिल्लगी काहे की? क्या आपने उसे गिरफ्तार नहीं कराया है और अगर गिरफ्तार कराया है तो क्या इनाम देने के लिए?

इन्द्रदेव—(मुस्कुराते हुए) तो आपकी राय है कि इसी समय उसकी मरम्मत की जाय!

देवीसिंह—चाहिए तो ऐसा ही! जी में आवे तो तमाशा देखने चलिए। कहिए तो मैं आपके साथ चलूँ।

इन्द्रदेव—नहीं-नहीं, ऐसा न होना चाहिए। भूतनाथ आपका दोस्त है और अब तो नातेदार भी। आप ऐसे मौके पर उसके सामने जा सकते हैं। जाइए और उसे बचाइए, मेरा जाना मुनासिब न होगा।

देवीसिंह—(हँस कर) तो आप चाहते हैं कि मैं भी भूतनाथ के हाथ से दो-एक घूँसे खा लूँ? अच्छा साहब जाता हूँ, आपका हुक्म कैसे टालूँ, आज आपने बड़ी-बड़ी बातें

मुझे सुनाई हैं इसलिए आपका अहसान भी तो मानना होगा।

इतना कहते हुए देवीसिंह पेड़ों की आड़ लेते हुए भूतनाथ की तरफ रवाना हुए और जब ऐसी जगह पहुँचे जहाँ से उन दोनों की बातें बखूबी सुन सकते थे, तब एक चट्टान पर बैठ गये और सुनने लगे कि वे दोनों क्या बातें करते हैं !

भूतनाथ—खैर, अच्छा ही हुआ जो तुम यहाँ तक आ गईं, मुझसे मुलाकात भी हो गई और मैं 'लामाघाटी' तक जाने से बच गया। मगर अब यह तो बताओ कि अपनी सहेली 'नन्हीं' को यहाँ तक क्यों न लेती आईं, मैं भी जरा उससे मिल के अपना कलेजा ठण्डा कर लेता ?

रामदेई—नन्हीं बेचारी पर क्यों आक्षेप करते हो, उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? और वह यहाँ आती ही काहे को ? क्या तुम्हारी लौंडी थी ! व्यर्थ ही एक आदमी को बदनाम और दिक करने के लिए टूटे पड़ते हैं !

भूतनाथ—(उभड़ते हुए गुस्से को दबा कर) छी-छी, वह बेचारी हमारी लौंडी क्यों होने लगी, लौंडी तो तुम उसकी थीं जो झख मारने के लिए उसके घर गई थीं।

रामदेई—(आँचल से आँसू पोंछती हुई) अगर मैं उसके यहाँ गई तो क्या पाप किया ? मैं पहले ही नानक से कहती थी कि जाकर पूछ आओ तब मैं नन्हीं के यहाँ जाऊँ नहीं तो कहीं व्यर्थ ही बात का बतंगड़ न बन जाय। मगर लड़के ने न माना और आखिर वही नतीजा निकला। बदमाशों ने वहाँ पहुँच कर उसे भी बेइज्जत किया और मुझे भी बेइज्जत करके यहाँ तक घसीट लाये। उसके सिर झूठे ही कलंक थोप दिया कि वह बेगम की सहेली है।

इतना कहकर रामदेई नखरे के साथ रोने लगी।

भूतनाथ—तुमने पहले भी कभी उसका जिक्र मुझसे किया था कि वह तुम्हारी नातेदार है, या मुझसे पूछ कर कभी उसके यहाँ गई थीं ?

रामदेई—एक दफा गई सो तो यह गति हुई, यदि और जाती तो न मालूम क्या होता !

भूतनाथ—जो लोग तुझे यहाँ ले आये हैं वे बदमाश थे ?

रामदेई—बदमाश तो कहे ही जाएँगे ! जो व्यर्थ दूसरों को दुःख दें वेही बदमाश होते हैं और क्या बदमाशों के सिर पर सींग होते हैं ! तुम्हारी अक्ल पर तो पत्थर पड़ गया है कि जो लोग तुम्हारी बेइज्जती किये ही जाते हैं, उन्हीं के लिए तुम जान दे रहे हो। न मालूम तुम्हें ऐसी क्या गरज पड़ी हुई है ?

भूतनाथ—ठीक है, यही राय लेने के लिए तो मैंने तुम्हें यहाँ एकान्त में बुलाया है। अगर तुम्हारी राय होगी तो मैं देखते-देखते इन लोगों से बदला ले लूँगा, क्या मैं कमजोर या दब्बू हूँ !

रामदेई—जरूर बदला लेना चाहिए, अगर तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं समझूंगी कि तुमसे बढ़कर कमीना कोई नहीं है।

इतना सुनकर भूतनाथ को बेहिसाब गुस्सा चढ़ आया मगर फिर भी उसने अपने क्रोध को दबाया और कहा—

भूतनाथ—अच्छा, तो अब मैं ऐसा ही करूँगा, मगर यह तो बताओ कि शेर की लड़की 'गौहर' से तुमसे क्या नाता है ?

रामदेई—उस मुसलमानिन से मुझसे क्या नाता होगा ! मैंने तो उसकी सूरत भी नहीं देखी।

भूतनाथ—लोग तो कहते हैं कि तुम उसके यहाँ भी आती-जाती हो और मेरे बहुत से भेद तुमने उसे बता दिये हैं।

रामदेई—सब झूठ है। ये लोग बात लगाने वाले जैसे ही धूर्त और पाजी हैं वैसे ही तुम सीधे और बेवकूफ हो।

अब भूतनाथ अपने गुस्से को बर्दाश्त न कर सका और उसने एक चपत रामदेई के गाल पर ऐसी जमाई कि वह तिलमिला कर जमीन पर लेट गई, मगर उसे चिल्लाने का साहस न हुआ। कुछ देर बाद वह उठ बैठी और भूतनाथ का मुँह देखने लगी।

भूतनाथ—कमीनी हरामजादी ! जिनके लिए मैं जान तक देने को तैयार हूँ उन्हीं लोगों की शान में तू ऐसी बातें कह रही है जो एक पराये को भी कहना उचित नहीं है और जिसे मैं एक सायत के लिए भी बर्दाश्त नहीं कर सकता ! ले समझ ले और कान खोल कर सुन ले कि तेरे हाथ की लिखी वह चिट्ठी मुझे मिल गई है जो तूने चाँद वाले दिन गौहर के यहाँ मिलने के लिए नन्हीं के पास भेजी थी और जिसमें तूने अपना परिचय 'करौंदा की छैंये-छैंये' दिया था। बस, इसीसे समझ ले कि तेरी सब कलई खुल गई और तेरी बेईमानी लोगों को मालूम हो गई। अब तेरा नखरे के साथ रोना बातें बना कर अपने को बेकसूर साबित करना व्यर्थ है। अब तेरी मुहब्बत, एक रत्ती बराबर मेरे दिल में नहीं रह गई और तुझे उस जहरीली नागिन से भी हजार दर्जे बढ़ के समझने लग गया जिसे खूबसूरत होने पर भी कोई हाथ से छूने तक का साहस नहीं कर सकता। मुझे आज इस बात का सख्त रंज है कि मैंने तुझे इतने दिन तक प्यार किया और इस बात की तरफ कुछ भी ध्यान न दिया कि उस मुहब्बत, ऐयाशी और शौक का नतीजा एक-न-एक दिन जरूर भयानक होता है जिसे छिपाने की जरूरत समझी जाती है और जिसका जाहिर होना शर्मिन्दगी और बेहयाई का सबब समझा जाता है। मुझे इस बात का भारी अफसोस है कि तुझसे अनुचित सम्बन्ध रखकर मैंने उस उचित सम्बन्ध वाली का साथ छोड़ दिया जिसकी जूतियों की बराबरी भी तू नहीं कर सकती या यों कहना चाहिए कि तेरे शरीर का चमड़ा जिसकी जूतियों में भी देखना मैं पसन्द नहीं कर सकता। मुझे इस बात का दुःख है कि नागर या मायारानी के कब्जे से तुझे छुड़ाने के लिए मैंने तरह-तरह के ढोंग रचे और इसका दम भर के लिए भी विचार न किया कि मैं उस क्षयी रोग को अपनी छाती से लगाने का प्रबन्ध कर रहा हूँ जिसे पहली ही अवस्था में ईश्वर की कृपा ने मुझसे अलग कर दिया था। ये बातें तू अपने ही लिए न समझ, बल्कि अपने जाए नानक के लिए भी समझ कर मेरे सामने से उठ जा और उससे भी कह दे कि आज से मेरे सामने आकर मेरी जूतियों का शिकार न बने। यदि मेरे पुराने विचार न बदल गये होते और उन दिनों की तरह आज भी मैं पाप को पाप न समझता होता तो आज तेरी खाल खिंचवा कर नमक और मिर्च का उबटन लगवा देता, मगर खैर, अब इतना ही

कहता हूँ कि मेरे सामने से उठ जा और फिर कभी अपना काला मुँह मुझे मत दिखाना। जिस कुल को तू पहले कलंक लगा चुकी है अब भी उसी कुल की बदनामी का सबब बन कर दुनिया की हवा खा।

रामदेई के पास भूतनाथ की बातों का जवाब न था। वह अपनी पुरानी चिट्ठी का सच्चा परिचय सुन कर ददहवास हो गई और समझ गई कि उसके अच्छे नसीब के पहिए की धुरी टूट गई जिसे अब किसी तरह भी नहीं बना सकती। वह अपने धड़कते हुए कलेजे और काँपते गए बदन के साथ भूतनाथ की बातें सुनती रही और अन्त में उठने का साहस करने पर भी अपनी जगह से न हिल सकी। मगर भूतनाथ वहाँ से उठ खड़ा हुआ और बँगले की तरफ चल पड़ा। थोड़ी ही दूर गया होगा कि देवीसिंह से मुलाकात हुई जिसने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "भूतनाथ, शाबाश! शाबाश! जो कुछ नेक और बहादुर आदमियों को करना चाहिए, इस समय तुमने वही किया। मैं छिप कर तुम्हारी सब बातें सुन रहा था। अगर तुम कुछ बेजा काम करना चाहते तो मैं तुम्हें जरूर रोकता, मगर ऐसा करने का मौका न हुआ, जिससे मैं बहुत ही खुश हूँ। अच्छा जाओ, अपने कमरे में जाकर आराम करो, मैं अब इन्द्रदेव के पास जाता हूँ।"

8

रात पहर भर से ज्यादा जा चुकी है, एक सुन्दर सजे हुए कमरे में राजा गोपालसिंह और इन्द्रदेव बैठे हैं और उनके सामने नानक हाथ जोड़े बैठा दिखाई देता है।

गोपालसिंह—(नानक से) ठीक है, यद्यपि इन बातों में तुमने अपनी तरफ से कुछ नमक-मिर्च जरूर लगाया होगा, मगर फिर भी मुझे कोई ऐसी बात नहीं जान पड़ती जिससे भूतनाथ को दोषी ठहराऊँ। उसने जो कुछ तुम्हारी माँ से कहा सच कहा और उसके साथ जैसा बर्ताव किया वह उचित ही था। इस विषय में मैं भूतनाथ को कुछ भी नहीं कह सकता और न अब तुम्हारी बातों पर भरोसा ही कर सकता हूँ। बड़े अफसोस की बात है कि मेरी नसीहत ने तुम्हारे दिल पर कुछ भी असर न किया[1] और अगर कुछ किया भी तो वह दो-चार दिन बाद जाता रहा। अगर तुम अपनी माँ के साथ नन्हीं के मकान में गिरफ्तार न हुए होते तो कदाचित् मैं तुम्हारे धोखे में आ जाता, मगर अब मैं किसी तरह भी तुम्हारा साथ नहीं दे सकता।

नानक—मगर आप मेरा कसूर माफ कर चुके हैं और···

इन्द्रदेव—(नानक से) अगर तुम उस माफी को पाकर खुश हुए थे तो फिर पुराने रास्ते पर क्यों गये और पुनः अपनी माँ को लेकर नन्हीं के पास क्यों पहुँचे? तुम्हें बात करते शर्म नहीं आती!

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, उन्नीसवाँ भाग, तीसरा बयान।

गोपालसिंह—फिर भी मैं अपनी जबान (माफी) का खयाल करूँगा और तुम्हें किसी तरह की तकलीफ न दूँगा, मगर अब भूतनाथ की तरह मैं भी तुम्हारी सूरत देखना पसन्द नहीं करता और न भूतनाथ को इस विषय में कुछ कहना चाहता हूँ। इन्द्रदेव ने तुम्हारे साथ इतनी ही रियायत की सो बहुत किया कि तुमको यहाँ से निकल जाने की आज्ञा दे दी, नहीं तो तुम इस लायक थे कि जन्म-भर कैद में पड़े सड़ा करते।

नानक—जो आज्ञा, मगर मेरे पिता से इतना तो दिला दीजिए कि मेरी माँ जन्म भर खाने-पीने की तरफ से बेफिक्र रहे।

इन्द्रदेव—अबे कमीने, तुझे यह कहते शर्म नहीं मालूम होती! इतना बड़ा हो के भी तू अपनी माँ के लायक दाना-पानी नहीं जुटा सकता? खैर, अब तुझे आखिरी मर्तबे कहा जाता है कि अब हम लोगों से किसी तरह की उम्मीद न रख और अपनी माँ को साथ लेकर यहाँ से जा। भूतनाथ ने भी मुझे यही कहने के लिए कहला भेजा है।

इतना कहकर इन्द्रदेव ने ताली बजाई और साथ ही अपने ऐयार सरयूसिंह को कमरे के अन्दर आते देखा।

इन्द्रदेव—(सरयू से) भूतनाथ कहाँ है?

सरयू—नम्बर पाँच के कमरे में देवीसिंहजी से बातें कर रहे हैं। वे दोनों यहाँ आए भी थे मगर यह सुनकर कि नानक यहाँ बैठा हुआ है, पिछले पैर लौट गए।

इन्द्रदेव—अच्छा, तुम जाओ और उन्हें यहाँ बुला लाओ।

सरयूसिंह—जो आज्ञा! परन्तु मुझे आशा नहीं है कि वे लोग नानक के रहते यहाँ आवेंगे।

इन्द्रदेव—अच्छा, तो मैं खुद जाता हूँ।

गोपालसिंह—हाँ तुम्हारा ही जाना ठीक होगा, देवीसिंह को भी बुलाते आना।

इन्द्रदेव उठकर चले गए और थोड़ी ही देर में भूतनाथ तथा देवीसिंह को साथ लिए हुए आ पहुँचे।

गोपालसिंह—(भूतनाथ से) क्यों साहब, आप यहाँ तक आकर लौट क्यों गए?

भूतनाथ—यों ही, मैंने समझा कि आप लोग किसी खास बात में लगे हुए हैं।

गोपालसिंह—अच्छा, बैठिए और एक बात का जवाब दीजिए।

भूतनाथ—कहिए!

गोपालसिंह—रामदेई और नानक के बारे में आप क्या हुक्म देते हैं?

भूतनाथ—महाराज ने क्या आज्ञा दी है?

गोपालसिंह—उन्होंने इसका फैसला आप ही के ऊपर छोड़ा है।

भूतनाथ—फिर जो राय आप लोगों की हो, मैंने तो इन दोनों के बारे में इसकी माँ को हुक्म सुना ही दिया है।

गोपालसिंह—इनके कसूर तो आप सुन ही चुके होंगे!

भूतनाथ—पिछले कसूरों को तो मैं सुन ही चुका हूँ, हाँ नया कसूर सिर्फ इतना ही मालूम हुआ है कि ये दोनों नन्हीं के यहाँ गिरफ्तार हुए हैं।

गोपालसिंह—इसके अतिरिक्त एक बात और है।

भूतनाथ—वह क्या ?

गोपालसिंह—यही कि ये दोनों अगर खाली हाथ न होते तो बेचारी शान्ता को जान से मार डालते ।

इतने ही में नानक बोल उठा, "नहीं-नहीं, यह आपके जासूसों ने हमारे ऊपर झूठा इलजाम लगाया है !"

भूतनाथ—अगर यह बात है तो मैं इसे हथकड़ी से खाली क्यों देखता हूँ ?

इन्द्रदेव—इसीलिए कि हमारे हाते के अन्दर ये लोग कुछ कर नहीं सकते। जब ये लोग यहाँ गिरफ्तार होकर आये तो कुछ दिन तक तो भलमनसी के साथ रहे, मगर आज इनकी नीयत बिगड़ी हुई मालूम पड़ी ।

भूतनाथ—खैर, अब आप ही इनके लिए हुक्म सुनाइए। मगर इन्द्रदेव, आप यह न समझियेगा कि इन लोगों के बारे में मुझे किसी तरह का रंज है। मैं सच कहता हूँ कि इन दोनों का यहाँ आना मेरे लिए बहुत अच्छा हुआ ! मैं इन लोगों के फेर में बेतरह फँसा हुआ था। आज मालूम हुआ कि ये लोग जहरी हलाहल से भी बढ़े हुए हैं, अतः आज इन लोगों से पीछा छुड़ाकर मैं बहुत ही प्रसन्न हुआ। मेरे सिर से बोझा उतर गया और अब मेरी जिन्दगी खुशी के साथ बीतेगी। आपका कहना सच निकला अर्थात् इनका यहाँ आना मेरे लिए खुशी का सबब हुआ ।

इन्द्रदेव—अच्छा यह बताइए कि ये अगर इसी तरह छोड़ दिये जायँ तो आपके खजाने को तो किसी तरह का नुकसान नहीं पहुँचा सकते जो 'लामाघाटी' के अन्दर है ?

भूतन—कुछ भी नहीं, और 'लामाघाटी' के अन्दर जेवरों के अतिरिक्त और कुछ है भी नहीं, सो जेवरों को मैं वहाँ से मँगवा ले सकता हूँ ।

इन्द्रदेव—अगर सिर्फ नानक की माँ के जेवरों से आपका मतलब है तो वह अब मेरे कब्जे में हैं क्योंकि नन्हों के यहाँ वह बिना जेवरों के नहीं गई थी ।

भूतनाथ—बस, तो मैं उस तरफ से बेफिक्र हो गया, यद्यपि उन जेवरों की मुझे कोई परवाह नहीं है मगर उसके पास मैं एक कौड़ी भी नहीं छोड़ना चाहता। इसके अतिरिक्त यह भी जरूर कहूँगा कि अब ये लोग सूखे छोड़ देने लायक नहीं रहे ।

इन्द्रदेव—खैर, जैसी राय होगी, वैसा ही किया जायगा ।

इतना कहकर इन्द्रदेव ने पुनः सरयूसिंह को बुलाया और जब वह कमरे के अन्दर आ गया तो कहा—"थोड़ी देर के लिए नानक को बाहर ले जाओ ।"

नानक को लिए हुए सरयूसिंह कमरे के बाहर चला गया और इसके बाद चारों आदमी विचार करने लगे कि नानक और उसकी माँ के साथ क्या बर्ताव करना चाहिए। देर तक सोच-विचार कर यही निश्चय किया कि उन दोनों को देश से निकाल दिया जाय और कह दिया जाय कि जिस दिन हमारे महाराज की अमलदारी में दिखाई दोगे, उसी दिन मार डाले जाओगे ।

इस हुक्म पर महाराज से आज्ञा लेने की इन लोगों को कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि उन्होंने सब बातें सुन-सुनाकर पहले ही हुक्म दे दिया था कि भूतनाथ की आज्ञा-नुसार काम किया जाय, अतः नानक कमरे के अन्दर बुलाया गया और इसके बाद राम-

देई भी बुलाई गई। जब दोनों इकट्ठे हो गए तो उन्हें हुक्म सुना दिया गया।

यह हुक्म यद्यपि साधारण मालूम होता है मगर उन दोनों के लिए ऐसा न था जिन्हें भूतनाथ की बदौलत शाहखर्ची की आदत पड़ गई थी। नानक और रामदेई की आँखों से आंसू जारी थे, जब इन्द्रदेव ने सरयूसिंह को हुक्म दिया कि चार आदमी इन दोनों को ले जायँ और महाराज की सरहद के बाहर कर आवें। सरयूसिंह दोनों को लिए हुए कमरे के बाहर निकल गया।

भूतनाथ—सिर से बोझ उतरा और कम्बख्तों से पीछा छूटा। अच्छा, अब बत-लाइये कि कल क्या-क्या होगा ?

गोपालसिंह—महाराज ने तो यही हुक्म किया है कि कल यहाँ से डेरा कूच किया जाये और तिलिस्म की सैर करते हुए चुनारगढ़ पहुँचें, चम्पा, शान्ता, हरनामसिंह, भरतसिंह और दलीपशाह वगैरह बाहर की राह से चुनार भेज दिये जायें। यदि हमारे किसी ऐयार की भी इच्छा हो तो उनके साथ चला जाये।

भूतनाथ—ऐसा कौन बेवकूफ होगा, जो तिलिस्म की सैर छोड़कर उनके साथ जायेगा !

देवीसिंह—सभी कोई ऐसा ही कहते हैं।

भूतनाथ—हाँ, यह तो बताइये कि मैंने नानक को जब दरबार में देखा था, तो उसके हाथ में एक लपेटी तस्वीर थी, अब वह तस्वीर कहाँ है और उसमें क्या बात थी ?

इन्द्रदेव—वह कागज जिसे आप तस्वीर समझे हुए हैं मेरे पास है, आपको दिखाऊँगा। असल में वह तस्वीर नहीं है, बल्कि नानक ने उसमें एक बहुत बड़ी दर्खास्त लिखकर तैयार की थी, जो दरबार में आकर पेश करना चाहता था, मगर ऐसा कर न सका।

भूतनाथ—उसमें लिखा क्या था ?

इन्द्रदेव—जो लोग उसे गिरफ्तार कर लाये हैं, उनकी शिकायत के सिवाय और कुछ भी नहीं। साथ ही इसके उस दर्खास्त में इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि कमला की माँ वास्तव में मर गई है और आज जिस शान्ता को सब कोई देख रहे हैं, वह वास्तव में नकली है।

भूतनाथ—वाह रे शैतान ! (कुछ सोचकर) तो शायद वह दर्खास्त महाराज के हाथ तक नहीं पहुँची ?

इन्द्रदेव—क्यों नहीं, मैंने जान-बूझकर उसे ऐसा करने का मौका दिया। वह रात को पहरे वालों से इत्तिला कराकर खुद महाराज के पास पहुँचा और उनके सामने वह दर्खास्त रख दी। उस समय महाराज ने मुझे बुलाया और मुझी को वह दर्खास्त पढ़ने के लिए दी गई। उसे सुनकर महाराज ने मुस्कुरा दिया और इशारा किया कि वह कमरे के बाहर निकाल दिया जाये, क्योंकि इसके पहले मैं शान्ता और हरनामसिंह का पूरा-पूरा हाल महाराज से अर्ज कर चुका था।

भूतनाथ—अच्छा, मुझे भी वह दर्खास्त दिखाइयेगा।

इन्द्रदेव—(उँगली से इशारा करके) वहाँ कारनिस के ऊपर पड़ी हुई है, देख

लीजिये।

भूतनाथ ने दर्खास्त उतार कर पढ़ी और उसके बाद कुछ देर तक उन लोगों में बातचीत होती रही।

9

सुबह का सुहावना समय सब जगह एक सा नहीं मालूम होता, घर की खिड़कियों में उसका चेहरा कुछ और ही दिखायी देता है और बाग में उसकी कैफियत कुछ और ही मस्तानी होती है, पहाड़ में उसकी खूबी कुछ और ही ढंग की दिखाई देती है और जंगल में उसकी छटा कुछ निराली ही होती है। आज इन्द्रदेव के इस अनूठे स्थान में इसकी खूबी सबसे चढ़ी-बढ़ी है, क्योंकि यहाँ जंगल भी हैं, पहाड़ भी, अनूठा बाग तथा सुन्दर बँगला या कोठी भी है, फिर यहाँ के आनन्द का पूछना ही क्या। इसलिए हमारे महाराज, कुँअर साहब और ऐयार लोग भी यहाँ घूम-घूमकर सुबह के सुहावने समय का पूरा आनन्द ले रहे हैं, खास करके इसलिए कि आज ये लोग डेरा कूच करने वाले हैं।

बहुत देर घूमने-फिरने के बाद सब कोई बाग में आकर बैठे और इधर-उधर की बातें होने लगीं।

जीतसिंह—(इन्द्रदेव से) भरतसिंह वगैरह तथा औरतों को आपने चुनार रवाना कर दिया ?

इन्द्रदेव—जी हाँ, बड़े सवेरे ही उन लोगों को बाहर की राह से रवाना कर दिया। औरतों के लिए सवारी का इन्तजाम कर देने के अतिरिक्त अपने दस-पन्द्रह मातबर आदमी भी साथ कर दिये हैं।

जीतसिंह—अब हम लोग कुछ भोजन करके यहाँ से रवाना हुआ चाहते हैं।

इन्द्रदेव—जैसी मर्जी !

जीतसिंह—भैरों और तारा जो आपके साथ यहाँ आए थे कहाँ चले गये, दिखाई नहीं पड़ते।

इन्द्रदेव—अब भी मैं उन्हें अपने साथ ही ले जाने की आज्ञा चाहता हूँ, क्योंकि उनकी मदद की मुझे जरूरत है।

जीतसिंह—तो क्या आप हम लोगों के साथ न चलेंगे ?

इन्द्रदेव—जी हाँ, उस बाग तक जरूर साथ चलूँगा, जहाँ से मैं आप लोगों को यहाँ तक ले आया हूँ, पर उसके बाद गुप्त हो जाऊँगा, क्योंकि मैं आपको कुछ तिलिस्मी तमाशे दिखाना चाहता हूँ और इसके अतिरिक्त उन चीजों को भी तिलिस्म के अन्दर से निकलवा कर चुनार पहुँचाना है, जिनके लिए आज्ञा मिल चुकी है।

सुरेन्द्रसिंह—नहीं-नहीं, गुप्त रीति पर हम तिलिस्म का तमाशा नहीं देखना चाहते, हमारे साथ रहकर जो कुछ दिखा सको, दिखा दो। बाकी रहा उन चीजों को

निकलवा कर चुनार पहुँचाना, सो यह काम दो दिन के बाद भी होगा तो कोई हर्ज नहीं।

इन्द्रदेव—जैसी आज्ञा !

इतना कहकर इन्द्रदेव थोड़ी देर के लिए कहीं चले गए और तब भैरोंसिंह तथा तारासिंह को साथ लिए आकर बोले, "भोजन तैयार है।"

सब लोग वहाँ से उठे और भोजन इत्यादि से छुट्टी पाकर तिलिस्म की तरफ रवाना हुए। जिस तरह इन्द्रदेव इन लोगों को अपने स्थान में ले आए थे, उसी तरह पुनः उस तिलिस्मी बाग में ले गए, जिसमें से लाए थे।

जब महाराज सुरेन्द्रसिंह वगैरह उस बारहदरी में पहुँचे, जिसमें पहले दिन आराम किया था और जहाँ बाजे की आवाज सुनी थी, तब दिन पहर भर से कुछ ज्यादा बाकी था। जीतसिंह ने इन्द्रदेव से पूछा, "अब क्या करना चाहिए ?"

इन्द्रदेव—यदि महाराज आज की रात यहाँ रहना पसन्द करें, तो एक दूसरे बाग में चलकर वहाँ की कुछ कैफियत दिखाऊँगा !

जीतसिंह—बहुत अच्छी बात है, चलिए।

इतना सुनकर इन्द्रदेव ने उस बारहदरी की कई आलमारियों में से एक आलमारी खोली और उसके अन्दर जाकर सभी को अपने पीछे आने का इशारा किया। यहाँ एक गली की तौर पर रास्ता बना हुआ था, जिसमें सब कोई इन्द्रदेव की इच्छानुसार बेखौफ चले गए और थोड़ी दूर जाने के बाद जब इन्द्रदेव ने दूसरा दरवाजा खोला, तब उसके बाहर होकर सभी ने अपने को एक छोटे बाग में पाया, जिसकी बनावट कुछ विचित्र ही ढंग की थी। यह बाग जंगली पौधों की सब्जी से हरा-भरा था और पानी का चश्मा भी बह रहा था, मगर चारदीवारी के अतिरिक्त और किसी तरह की बड़ी इमारत इसमें न थी, हाँ बीच में एक बहुत बड़ा चबूतरा जरूर था, जिस पर धूप और बरसाती पानी के लिए सिर्फ मोटे-मोटे बारह खम्भों के सहारे पर छत बनी हुई थी और चबूतरे पर चढ़ने के लिए चारों तरफ सीढ़ियाँ थीं।

यह चबूतरा कुछ अजीब ढंग का बना हुआ था। लगभग चालीस हाथ के चौड़ा और इतना ही लम्बा होगा। इसके फर्श में लोहे की बारीक नालियाँ जाल की तरह जड़ी हुई थीं और बीच में एक चौखूटा स्याह पत्थर इस अन्दाज का रखा था, जिस पर चार आदमी बैठ सकते थे। बस, इसके अतिरिक्त इस चबूतरे में और कुछ भी न था।

थोड़ी देर तक सब कोई उस चबूतरे की बनावट देखते रहे, इसके बाद इन्द्रदेव ने महाराज से कहा, "तिलिस्म बनाने वालों ने यह बगीचा केवल तमाशा देखने के लिए बनाया था। यहाँ की कैफियत आपके साथ रहकर मैं नहीं दिखा सकता। हाँ, यदि आप मुझे दो-तीन पहर की छुट्टी दें तो···!"

इन्द्रदेव की बात महाराज ने मंजूर कर ली और तब वह (इन्द्रदेव) सभी के देखते देखते चौखूटे पत्थर के ऊपर चले गए जो चबूतरे के बीच में जड़ा हुआ था। सवार होने के साथ ही वह पत्थर हिला और इन्द्रदेव को लिए हुए जमीन के अन्दर चला गया, मगर थोड़ी देर में पुनः ऊपर चला आया और अपने ठिकाने पर ज्यों का त्यों बैठ गया लेकिन इस समय इन्द्रसेन उस पर न थे।

इन्द्रदेव के चले जाने के बाद थोड़ी देर तक तो सब कोई उस चबूतरे पर खड़े रहे, इसके बाद धीरे-धीरे वह चबूतरा गरम होने लगा और वह गर्मी यहाँ तक बढ़ी कि लाचार उन सभी को चबूतरा छोड़ देना पड़ा, अर्थात् सब कोई चबूतरे के नीचे उतर आए और बाग में टहलने लगे। इस समय दिन घण्टे भर से कुछ कम बाकी था।

इस खयाल से देखें कि इसकी दीवार किस ढंग की बनी हुई हैं, सब कोई घूमते हुए पूरब की तरफ वाली दीवार के पास जा पहुँचे और गौर से देखने लगे, मगर कोई अनूठी बात दिखाई न दी। इसके बाद उत्तर तरफ वाली और फिर पश्चिम तरफ वाली दीवार को देखते हुए सब कोई दक्खिन की तरफ गए और उधर की दीवार को आश्चर्य के साथ देखने लगे, क्योंकि इसमें कुछ विचित्रता थी।

यह दीवार शीशे की मालूम होती थी और इसमें महाभारत की तस्वीरें बनी हुई थीं। ये तस्वीरें उसी ढंग की थीं, जैसी कि उस तिलिस्मी बँगले में चलती-फिरती तस्वीरें इन लोगों ने देखी थीं। ये लोग तस्वीरों को बड़ी देर तक देखते रहे और सभी को विश्वास हो गया कि जिस तरह उस बँगले वाली तस्वीरों को चलते-फिरते और काम करते हम लोग देख चुके हैं उसी तरह इन तस्वीरों को भी देखेंगे, क्योंकि दीवार पर हाथ फेरने से साफ मालूम होता था कि तस्वीरें शीशे के अन्दर हैं।

इन तस्वीरों को देखने से महाभारत की लड़ाई का जमाना आँखों के सामने फिर जाता था। कौरवों और पाण्डवों की फौज, उसके बड़े-बड़े सेनापति तथा रथ, हाथी, घोड़े इत्यादि जो कुछ बने थे, सभी अच्छे और दिल पर असर पैदा करने वाले थे। 'इस लड़ाई की नकल अपनी आँखों से देखेंगे' इस विचार से सब कोई प्रसन्न थे। बड़ी दिलचस्पी के साथ उन तस्वीरों को देख रहे थे, यहाँ तक कि सूर्य अस्त हो गया और धीरे-धीरे अंधकार ने चारों तरफ अपना दखल जमा लिया। उस समय यकायक दीवार चमकने लगी और तस्वीरों में हरकत पैदा हुई जिससे सभी ने समझा कि नकली लड़ाई शुरू हुआ चाहती है मगर कुछ ही देर बाद लोगों का यह विश्वास ताज्जुब के साथ बदल गया, जब यह देखा कि उसमें की तस्वीरें एक-एक करके गायब हो रही हैं, यहाँ तक कि घड़ी भर के अन्दर ही सब तस्वीरें गायब हो गई और दीवार साफ दिखाई देने लगी। इसके बाद दीवार की चमक भी बन्द हो गई और फिर अन्धकार दिखाई देने लगा।

थोड़ी देर बाद उस चबूतरे की तरफ रोशनी मालूम हुई। यह देखकर सब कोई उसी तरफ रवाना हुए और जब उसके पास पहुँचे तो देखा कि उस चबूतरे की छत में जड़े हुए शीशों के दस-बारह टुकड़े इस तेजी के साथ चमक रहे हैं कि उनसे केवल चबूतरा ही नहीं बल्कि तमाम बाग में उजाला हो रहा है। इसके अतिरिक्त सैकड़ों मूरतें भी उस चबूतरे पर इधर-उधर चलती-फिरती दिखाई दीं। गौर करने से मालूम हुआ कि ये मूरतें (या तस्वीरें) बेशक वे ही हैं, जिन्हें उस दीवार के अन्दर देख चुके हैं। ताज्जुब नहीं कि वह दीवार इन सभी का खजाना हो और वही यहाँ इस चबूतरे पर आकर तमाशा दिखाती हों।

इस समय जितनी मूरतें उस चबूतरे पर थीं, सब अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की लडाई से सम्बन्ध रखती थीं। जब उन मूरतों ने अपना काम शुरू किया तो ठीक अभि-

मन्यु की लड़ाई का तमाशा आँखों के सामने दिखाई देने लगा। जिस तरह कौरवों के रचे हुए व्यूह के अन्दर फँसकर कुमार अभिमन्यु ने वीरता दिखाई थी और अन्त में अधर्म के साथ जिस तरह वह मारा गया था, उसी को आज नाटक स्वरूप में देखकर सब कोई बड़े प्रसन्न हुए और सभी के दिलों पर बहुत देर तक इसका असर रहा।

इस तमाशे का हाल खुलासा तौर पर हम इसलिए नहीं लिखते कि इसकी कथा बहुत प्रसिद्ध है और महाभारत में विस्तार के साथ लिखी है।

यह तमाशा थोड़ी ही देर में खत्म नहीं हुआ बल्कि देखते हुए तमाम रात बीत गई। सवेरा होने के कुछ पहले अंधकार हो गया और उसी अंधकार में सब मूरतें गायब हो गईं। उजाला होने और आँखें ठहरने पर जब सभी ने देखा तो उस चबूतरे पर सिवाय इन्द्रदेव के और कुछ भी दिखाई न दिया।

इन्द्रदेव को देखकर सब कोई प्रसन्न हुए और साहब-सलामत के बाद इस तरह बातचीत होने लगी—

इन्द्रदेव—(चबूतरे से नीचे उतर कर और महाराज के पास आकर) मैं उम्मीद करता हूँ कि इस तमाशे को देखकर महाराज प्रसन्न हुए होंगे।

महाराज—बेशक ! क्या इसके सिवाय और भी कोई तमाशा यहाँ दिखाई दे सकता है ?

इन्द्रदेव—जी हाँ, यहाँ पूरा महाभारत दिखाई दे सकता है, अर्थात् महाभारत ग्रन्थ में जो कुछ लिखा है, वह सब इसी ढंग पर और इसी चबूतरे पर आप देख सकते हैं मगर दो-चार दिन में नहीं बल्कि महीनों में ! इसके साथ-साथ बनाने वाले ने इसकी भी तरकब की है कि चाहे शुरू ही से तमाशा दिखाया जाए या बीच ही से कोई टुकड़ा दिखा दिया जाये अर्थात् महाभारत के अन्तर्गत जो कुछ चाहें देख सकते हैं।

महाराज—इच्छा तो बहुत कुछ देखने की थी, मगर इस समय हम लोग यहाँ ज्यादा रुक नहीं सकते, अतः फिर कभी जरूर देखेंगे। हाँ, हमें इस तमाशे के विषय में कुछ समझाओ तो सही कि यह काम क्योंकर हो सकता है और तुमने यहाँ से कहाँ जाकर क्या किया ?

इन्द्रदेव ने इस तमाशे का पूरा-पूरा भेद सभी को समझाया और कहा कि ऐसे-ऐसे कई तमाशे इस तिलिस्म में भरे पड़े हैं, अगर आप चाहें तो इस काम में वर्षों बिता सकते हैं, इसके अतिरिक्त यहाँ की दौलत का भी यही हाल है कि वर्षों तक ढोते रहिये फिर भी कमी न हो, सोने-चाँदी का तो कहना ही क्या है, जवाहिरात भी आप जितना चाहें ले सकते हैं। सच तो यह है, कि जितनी दौलत यहाँ है, उसके रहने का ठिकाना भी यहीं हो सकता है। इस बगीचे के आस-पास ही और भी चार बाग हैं, शायद उन सभी में घूमना और वहाँ के तमाशों को देखना इस समय आप पसन्द न करें...

महाराज—बेशक इस समय हम इन सब तमाशों में समय बिताना पसन्द नहीं करते। सबसे पहले शादी-ब्याह के काम से छुट्टी पाने की इच्छा लगी हुई है मगर इसके बाद पुनः एक दफे इस तिलिस्म में आकर यहाँ की सैर जरूर करेंगे।

कुछ देर तक इसी किस्म की बातें होती रहीं, इसके बाद इन्द्रदेव सभी को पुनः

उसी बाग में ले आए, जिसमें उनसे मुलाकात हुई थी या जहाँ से इन्द्रदेव के स्थान में जाने का रास्ता था।

10

इस बाग में पहले दिन जिस बारहदरी में बैठकर सभी ने भोजन किया था, आज पुन: उसी बारहदरी में बैठने और भोजन करने का मौका मिला। खाने की चीजें ऐयार लोग अपने साथ ले आये थे और जल की वहाँ कमी ही न थी, अत: स्नान-सन्ध्योपासन और भोजन इत्यादि से छुट्टी पाकर सब कोई उसी बारहदरी में सो रहे क्योंकि रात के जागे हुए थे और बिना कुछ आराम किये आगे बढ़ने की इच्छा न थी।

जब दिन पहर भर से कुछ कम बाकी रह गया, तब सब कोई उठे और चश्मे के जल से हाथ-मुँह धोकर आगे की तरफ बढ़ने के लिए तैयार हुए।

हम ऊपर किसी बयान में लिख आये हैं कि यहाँ तीनों तरफ की दीवारों में कई आलमारियाँ भी थीं, अत: इस समय कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने उन्हीं आलमारियों में से एक आलमारी खोली, और महाराज की तरफ देखकर कहा, "चुनार के तिलिस्म में जाने का यही रास्ता है, और हम दोनों भाई इसी रास्ते से वहाँ तक गये थे।"

रास्ता बिल्कुल अँधेरा था, इसलिए इन्द्रजीतसिंह तिलिस्मी खंजर की रोशनी करते हुए आगे-आगे रवाना हुए और उनके पीछे महाराज सुरेन्द्रसिंह, राजा वीरेन्द्रसिंह, गोपालसिंह, इन्द्रदेव वगैरह और ऐयार लोग रवाना हुए। सबसे पीछे कुँअर आनन्दसिंह तिलिस्मी खंजर की रोशनी करते हुए जाने लगे, क्योंकि सुरंग पतली थी, और केवल आगे की रोशनी से काम नहीं चल सकता था।

ये लोग उस सुरंग में कई घण्टे तक बराबर चलते गये और इस बात का पता न लगा कि कब संध्या या अब कितनी रात बीत चुकी है। जब सुरंग का दूसरा दरवाजा इन लोगों को मिला और उसे खोलकर सब कोई बाहर निकले तो अपने को एक लम्बी-चौड़ी कोठरी में पाया, जिसमें इस दरवाजे के अतिरिक्त तीनों तरफ की दीवारों में और भी तीन दरवाजे थे, जिनकी तरफ इशारा करके कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने कहा, "अब हम लोग उस चबूतरे वाले तिलिस्म के नीचे आ पहुँचे हैं। इस जगह एक-दूसरे से मिली हुई सैकड़ों कोठरियाँ हैं जो भूल-भुलैये की तरह चक्कर दिलाती हैं और जिनमें फँसा हुआ अनजान आदमी जल्दी निकल ही नहीं सकता। जब पहले-पहल हम दोनों भाई यहाँ आये थे तो सब कोठरियों के दरवाजे बन्द थे जो तिलिस्मी किताब की सहायता से खोले गये और जिनका खुलासा हाल आपको तिलिस्मी किताब के पढ़ने से मालूम होगा, मगर इनके खोलने में कई दिन लगे और तकलीफ भी बहुत हुई। इन कोठरियों के मध्य में एक चौखूँटा कमरा आप देखेंगे जो ठीक चबूतरे के नीचे है और उसी में से बाहर निकलने का रास्ता है, बाकी सब कोठरियों में असबाब और खजाना भरा हुआ है। इसके अतिरिक्त

छत के ऊपर एक और रास्ता उस चबूतरे में से बाहर निकलने के लिए बना हुआ है, जिसका हाल मुझे पहले मालूम न था, जिस दिन हम दोनों भाई उस चबूतरे की राह निकले हैं, उस दिन देखा कि इसके अतिरिक्त एक रास्ता और भी है।"

इन्द्रदेव—जी हाँ, दूसरा रास्ता भी जरूर है, मगर वह तिलिस्म के दारोगा के लिए बनाया गया था, तिलिस्म तोड़ने वाले के लिए नहीं। मुझे उस रास्ते का हाल बखूबी मालूम है।

गोपालसिंह—मुझे भी उस रास्ते का हाल(इन्द्रदेव की तरफ इशारा करके)इन्हीं की जुबानी मालूम हुआ है, इसके पहले मैं कुछ भी नहीं जानता था और न ही मालूम था कि इस तिलिस्म के दारोगा यही हैं।

इसके बाद कुँअर इन्द्रजीतसिंह ने सबको तहखाने अथवा कोठरियों और कमरों की सैर कराई, जिसमें लाजवाब और हद दर्जे की फिजूलखर्ची को मात करने वाली दौलत भरी हुई थी, और एक-से-एक बढ़कर अनूठी चीजें लोगों के दिल को अपनी तरफ खींच रही थीं। साथ ही इसके यह भी समझाया कि इन कोठरियों को हम लोगों ने कैसे खोला, और इस काम में कैसी-कैसी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं।

घूमते-फिरते और सैर करते हुए सब कोई उस मध्य वाले कमरे में पहुँचे जो ठीक तिलिस्मी चबूतरे के नीचे था। वास्तव में यह कमरा कल-पुर्जों से बिल्कुल भरा हुआ था। जमीन से छत तक बहुत-सी तारों और कल-पुर्जों का सम्बन्ध था और दीवार के अन्दर से ऊपर चढ़ जाने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दे रही थीं।

दोनों कुमारों ने महाराज को समझाया कि तिलिस्म टूटने के पहले वे कल-पुर्जे किस ढंग पर लगे थे और तोड़ते समय उनके साथ कैसी कार्रवाई की गई। इसके बाद इन्द्रजीतसिंह ने सीढ़ियों की तरफ इशारा करके कहा, "अब भी इन सीढ़ियों का तिलिस्म कायम है, हर एक की मजाल नहीं कि इन पर पैर रख सके।"

वीरेन्द्रसिंह—यह सब कुछ है, मगर असल तिलिस्मी बुनियाद वही खोह वाला बँगला जान पड़ता है, जिसमें चलती-फिरती तस्वीरों का तमाशा देखा था, और जहाँ से तिलिस्म के अन्दर घुसे थे।

सुरेन्द्रसिंह—इसमें क्या शक है। वही चुनार, जमानिया और रोहतासगढ़ वगैरह के तिलिस्मों की नकेल है, और वहाँ रहने वाला तरह-तरह के तमाशे देख-दिखा सकता है और सबसे बढ़कर आनन्द ले सकता है।

जीतसिंह—वहाँ की पूरी-पूरी कैफियत अभी देखने में नहीं आई।

इन्द्रजीतसिंह—दो-चार दिन में वहाँ की कैफियत देख भी सकते हैं। जो कुछ आप लोगों ने देखा वह रुपये में एक आना भी न था। मुझे भी अभी पुनः वहाँ जाकर बहुत-कुछ देखना बाकी है।

सुरेन्द्रसिंह—इस समय तो जल्दी में थोड़ा-बहुत देख लिया है, मगर काम से निश्चिन्त होकर पुनः हम लोग वहाँ चलेंगे, और उसी जगह से रोहतासगढ़ के तहखाने की भी सैर करेंगे। अच्छा, अब यहाँ से बाहर होना चाहिए।

आगे-आगे कुँअर इन्द्रजीतसिंह रवाना हुए। पाँच-सात सीढ़ियाँ चढ़ जाने के बाद

एक छोटा-सा लोहे का दरवाजा मिला, जिसे उसी हीरे वाली तिलिस्मी ताली से खोला, और तब सबको लिए हुए दोनों कुमार तिलिस्मी चबूतरे के बाहर हुए।

सब कोई तिलिस्म की सैर करके लौट आये और अपने-अपने काम-धंधे में लगे। कैदियों के मुकदमे को थोड़े दिन तक मुल्तवी रखकर कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की शादी पर सबने ध्यान दिया और इसी के इन्तजाम की फिक्र करने लगे। महाराज सुरेन्द्रसिंह ने जो काम जिसके लायक समझा, उसके सुपुर्द करके कुल कैदियों को चुनारगढ़ भेजने का हुक्म दिया और यह भी निश्चय कर लिया कि दो-तीन दिन के बाद हम लोग भी चुनारगढ़ चले जायेंगे, क्योंकि बारात चुनारगढ़ ही से निकलकर यहाँ आयेगी।

भरतसिंह और दिलीपशाह वगैरह का डेरा बलभद्रसिंह के पड़ोस ही में पड़ा और दूसरे मेहमानों के साथ-ही-साथ इनकी खातिरदारी का बोझ भी भूतनाथ के ऊपर डाला गया। इस जगह संक्षेप में हम यह भी लिख देना उचित समझते हैं कि कौन काम किसके सुपुर्द किया गया।

(1) इस तिलिस्मी इमारत के इर्द-गिर्द जिन मेहमानों के डेरे पड़े हैं, उन्हें किसी बात की तकलीफ तो नहीं होती, इस बात को बराबर मालूम करते रहने का काम भूतनाथ के सुपुर्द किया गया—

(2) मोदी, बनिए और हलवाई वगैरह किसी से किसी चीज का दाम तो नहीं लेते, इस बात की तहकीकात के लिए रामनारायण ऐयार मुकर्रर किए गए।

(3) रसद वगैरह के काम में कहीं किसी तरह की बेईमानी तो नहीं होती, या चोरी का नाम तो किसी की जुबान से नहीं सुनाई देता, इसको जानने और शिकायतों के दूर करने पर चुन्नीलाल ऐयार तैनात किए गए।

(4) इस तिलिस्मी इमारत से लेकर चुनारगढ़ तक की सड़क और उसकी सजावट का काम पन्नालाल और पण्डित बद्रीनाथ के जिम्मे किया गया।

(5) चुनारगढ़ में बाहर से न्यौते में आए हुए पण्डितों की खातिरदारी और पूजा-पाठ इत्यादि के सामान की दुरुस्ती का बोझ जगन्नाथ ज्योतिषी पर डाला गया।

(6) बारात और महफिल वगैरह की सजावट तथा उसके सम्बन्ध में जो कुछ काम हो, उसके जिम्मेवार तेजसिंह बनाये गये।

(7) आतिशबाजी और अजायबातों के तमाशे तैयार करने के साथ-ही-साथ उसी तरह की एक इमारत के बनवाने का हुक्म इन्द्रदेव को दिया गया, जैसी इमारत के अन्दर हँसते-हँसते इन्द्रजीतसिंह वगैरह एक दफे कूद गये थे, और जिसका भेद अभी तक खोला नहीं गया है।[1]

(8) पन्नालाल वगैरह के बदले में रणधीरसिंहजी के डेरे की हिफाजत तथा किशोरी, कामिनी वगैरह की निगरानी के जिम्मेवार देवीसिंह बनाये गये।

(9) ब्याह-सम्बन्धी खर्च की तहवील (रोकड़) राजा गोपालसिंह के हवाले की गई।

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, पाँचवाँ भाग, चौथा बयान।

(10) कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के साथ रहकर उनके विवाह-सम्बन्धी शान-शौकत और जरूरतों को कायदे के साथ निभाने के लिए भैरोंसिंह और तारासिंह छोड़ दिये गये।

(11) हरनामसिंह को अपनी मातहती में लेकर जीतसिंह ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया कि हर एक के कामों की जाँच और निगरानी रखने के अतिरिक्त कुछ कैदियों को भी किसी उचित ढंग से इस विवाहोत्सव के तमाशे दिखा देंगे, ताकि वे लोग भी देख लें, कि जिस शुभ दिन के हम बाधक थे, वह आज किस खुशी और खूबी के साथ बीत रहा है और सर्वसाधारण भी देख लें, कि धन-दौलत और ऐश-आराम के फेर में पड़कर अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारने वाले, छोटे होकर बड़ों के साथ पैर बाँध के नतीजा भोगने वाले, मालिक के साथ में नमकहरामी और उग्र पाप करने का कुछ फल इस जन्म में भी भोग लेने वाले, और बदनीयती तथा पाप के साथ ऊँचे दर्जे पर पहुँचकर यकायक रसातल में पहुँच जानेवाले, धर्म और ईश्वर से सदा विमुख रहने वाले ये ही प्रायश्चित्ती लोग हैं।

इन सबके साथ मातहती में काम करने के लिए आदमी भी काफी तौर पर दिए गये।

इनके अतिरिक्त और लोगों को भी तरह-तरह के काम सुपुर्द किए गए और सब कोई बड़ी खूबी के साथ अपना-अपना काम करने लगे।

अब हम थोड़ा-सा हाल कुँअर इन्द्रजीतसिंह का बयान करेंगे, जिन्हें इस बात का बहुत ही रंज है कि कमलिनी की शादी किसी दूसरे के साथ हो गई, और वे उम्मीद ही में बैठे रह गये।

रात पहर भर से ज्यादा जा चुकी है और कुँअर इन्द्रजीतसिंह अपने कमरे में बैठे भैरोंसिंह से धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। इन दोनों के सिवाय कोई तीसरा आदमी इस कमरे में नहीं है और कमरे का दरवाजा भी भिड़वाया हुआ है।

भैरोंसिंह—तो आप साफ-साफ कहते क्यों नहीं कि आपकी उदासी का सबब क्या है? आपको तो आज खुश होना चाहिए, कि जिस काम के लिए आप बरसों परेशान रहे, जिसकी उम्मीद में तरह-तरह की तकलीफ उठाई, जिसके लिए हथेली पर जान रखकर बड़े-बड़े दुश्मनों से मुकाबला करना पड़ा और जिसके होने या मिलने पर ही तमाम दुनिया की खुशी समझी जाती थी, आज वही काम आपकी इच्छानुसार हो रहा है, और उसी किशोरी के साथ आपकी शादी का इन्तजाम हम अपनी आँखों से देख रहे हैं, फिर भी ऐसी अवस्था में आपको उदास देखकर कौन ऐसा है जो ताज्जुब न करेगा?

इन्द्रजीतसिंह—बेशक, मेरे लिए आज यह बड़ी खुशी का दिन है, और मैं खुश हूँ भी, मगर कमलिनी की तरफ से जो रंज मझे हुआ है, उसे हजार कोशिश करने पर भी मेरा दिल बर्दाश्त नहीं कर पाता।

भैरोंसिंह—(ताज्जुब का चेहरा बनाकर)हैं, कमलिनी की तरफ से और आपको रंज! जिसके अहसानों के बोझ से आप दबे हुए हैं, उसी कमलिनी से रंज! यह आप क्या कह रहे हैं?

इन्द्रजीतसिंह—इस बात को तो मैं खुद ही कह रहा हूँ, कि उसके अहसानों के बोझ से मैं जिन्दगी-भर हलका नहीं हो सकता और अब तक उसके जी में मेरी भलाई का ध्यान बँधा ही हुआ है, मगर रंज इस बात का है कि अब मैं उसे उस मुहब्बत की निगाह से नहीं देख सकता जिससे पहले देखता था।

भैरोंसिंह—सो क्यों ? क्या इसलिए कि अब वह अपनी ससुराल चली जायेगी, और फिर उसे आप पर अहसान करने का मौका न मिलेगा ?

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, करीब-करीब यही बात है।

भैरोंसिंह—मगर अब आपको उसकी मदद की जरूरत भी तो नहीं है। हाँ, इस बात का खयाल बेशक हो सकता है कि अब आप उसके तिलिस्मी मकान पर कब्जा न कर सकेंगे।

इन्द्रजीतसिंह—नहीं-नहीं, मुझे इस बात की कुछ जरूरत नहीं है, और न इसका कुछ खयाल ही है !

भैरोंसिंह—तो इस बात का खयाल है कि उसने अपनी शादी में आपको न्यौता नहीं दिया ? मगर वह एक हिन्दू लड़की की हैसियत से ऐसा कर भी तो नहीं सकती थी ! हाँ, इस बात की शिकायत आप राजा गोपालसिंहजी से जरूर कर सकते हैं, क्योंकि उस काम के कर्ता-धर्ता वे ही हैं।

इन्द्रजीतसिंह—उनसे तो मुझे बहुत ही शिकायत है, मगर मैं शर्म के मारे कुछ कह नहीं सकता।

भैरोंसिंह—(चौंककर) शर्म तो तब होती, जब आप इस बात की शिकायत करते कि मैं खुद उससे शादी करना चाहता था।

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, बात तो ऐसी ही है। (मुस्कराकर) मगर तुम तो पागलों की-सी बातें करते हो।

भैरोंसिंह—(हँसकर) यह कहिए न कि आप दोनों हाथ लड्डू चाहते थे ! तो इस चोर को आप इतने दिनों तक छिपाए क्यों रहे ?

इन्द्रजीतसिंह—तो यही कब उम्मीद हो सकती थी कि इस तरह यकायक गुमसुम उसकी शादी हो जायेगी।

भैरोंसिंह—खैर, अब तो जो कुछ होना था सो हो गया, मगर आपको इस बात का खयाल न करना चाहिए। इसके अतिरिक्त क्या आप समझते हैं, कि किशोरी इस बात को पसन्द करती ? कभी नहीं, बल्कि आये दिन का झगड़ा पैदा हो जाता।

इन्द्रजीतसिंह—नहीं, किशोरी से मुझे ऐसी उम्मीद नहीं हो सकती। खैर, अब इस विषय पर बहस करना व्यर्थ है, मगर मुझे इसका रंज जरूर है। अच्छा, यह तो बताओ, तुमने उन्हें देखा है जिनके साथ कमलिनी की शादी हुई ?

भैरोंसिंह—कई दफे, बातें भी अच्छी तरह कर चुका हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—कैसे हैं ?

भैरोंसिंह—बड़े लायक, पढ़े-लिखे, पण्डित, बहादुर, दिलेर, हँसमुख और सुन्दर।

इस अवसर पर आवेंगे ही, आप भी देख लीजिएगा। आपने कमलिनी से इस बारे में कुछ बातचीत नहीं की ?

इन्द्रजीतसिंह—इधर तो नहीं, मगर तिलिस्म की सैर को जाने से पहले मुलाकात हुई थी, उसने खुद मुझे बुलाया था, बल्कि उसी की जुबानी उसकी शादी का हाल मुझे मालूम हुआ था। मगर उसने मेरे साथ विचित्र ढंग का बर्ताव किया।

भैरोंसिंह—सो क्या ?

इन्द्रजीतसिंह—(जो कुछ कैफियत हो चुकी थी, उसे बयान करने के बाद) तुम इस बर्ताव को कैसा समझते हो ?

भैरोंसिंह—बहुत अच्छा और उचित।

इसी तरह की बातचीत हो रही थी कि पहले दिन की तरह बगल वाले कमरे का दरवाजा खुला, और एक लौंडी ने आकर सलाम करने के बाद कहा, "कमलिनीजी आपसे मिलना चाहती हैं, आज्ञा हो तो···।"

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा, मैं चलता हूँ, तू दरवाजा बन्द कर दे।

भैरोंसिंह—अब मैं भी जाकर आराम करता हूँ।

इन्द्रजीतसिंह—अच्छा, जाओ, फिर कल देखा जायेगा।

लौंडी—इनसे (भैरोंसिंह से) भी उन्हें कुछ कहना है।

यह कहती हुई लौंडी ने दरवाजा बन्द कर दिया, तब तक स्वयं कमलिनी इस कमरे में आ पहुँची, और भैरोंसिंह की तरफ देखकर बोली, (जो उठकर बाहर जाने के लिए तैयार था) "आप कहाँ चले ? आप ही से तो मुझे बहुत-सी शिकायत करनी है।"

भैरोंसिंह—सो क्या ?

कमलिनी—अब उसी कमरे में चलिये, वहीं बातचीत होगी।

इतना कहकर कमलिनी ने कुमार का हाथ पकड़ लिया, और अपने कमरे की तरफ ले चली, पीछे-पीछे भैरोंसिंह भी गये। लौंडी दरवाजा बन्द करके दूसरी राह से बाहर चली गई और कमलिनी ने इन दोनों को उचित स्थान पर बैठाकर पानदान आगे रख दिया और भैरोंसिंह से कहा, "आप लोग तिलिस्म की सैर कर आये और मुझे पूछा भी नहीं !"

भैरोंसिंह—महाराज खुद कह चुके हैं कि शादी के बाद औरतों को भी तिलिस्म की सैर करा दी जाये और फिर तुम्हारे लिए तो कहना ही क्या है। तुम तो जब भी चाहो, तभी तिलिस्म की सैर कर सकती हो।

कमलिनी—ठीक है, मानो यह मेरे हाथ की बात है !

भैरोंसिंह—ऐसा ही है।

कमलिनी—(हँसकर) टालने के लिए यह अच्छा ढंग है ! खैर, जाने दीजिये, मुझे कुछ ऐसा शौक भी नहीं है। हाँ, यह बताइए कि वहाँ क्या-क्या कैफियत देखने में आई ? मैंने सुना कि भूतनाथ वहाँ बड़े चक्कर में पड़ गया था और उसकी पहली स्त्री भी वहाँ दिखाई पड़ गई।

भैरोंसिह—बेशक ऐसा ही हुआ।

इतना कहकर भैरोंसिह ने कुल हाल खुलासा बयान किया और इसके बाद कमलिनी ने इन्द्रजीतसिंह से कहा, "खैर. आप बताइए कि शादी की खुशी में मुझे क्या इनाम मिलेगा ?"

इन्द्रजीतसिंह—(हँसकर) गालियों के सिवाय और किसी चीज की तुम्हें कमी ही क्या है जो मैं दूँ ?

कमलिनी—(भैरोंसिह से)सुन लीजिये, मेरे लिए कैसा अच्छा इनाम सोचा गया है ! (कुमार से हँसकर) याद रखियेगा, इस जवाब के बदले मैं आपको ऐसा छकाऊँगी कि खुश हो जाइयेगा !

भैरोंसिह—इन्हें तो तुम छका चुकी हो, अब इससे बढ़कर क्या होगा कि चुपचाप दूसरे के साथ शादी कर ली, और इन्हें अँगूठा दिखा दिया। अब तुम्हें ये गालियाँ न दें तो क्या करें !

कमलिनी—(मुस्कराती हुई) आपकी रा। भी यही है ?

भैरोंसिह—बेशक !

कमलिनी—तो बेचारी किशोरी के साथ आप यह अच्छा सलूक करते हैं !

भैरोंसिह—इसका इल्जाम तो कुमार के ऊपर हो सकता है !

कमलिनी—हाँ, साहब, आज के मर्दों की मुरौवत जो कुछ न कर दिखाए थोड़ा है मैं किशोरी बहिन से इसका जिक्र करूँगी।

भैरोंसिह—तब तो अहसान पर अहसान करोगी।

इन्द्रजीतसिंह—(भैरोंसिह से) तुम भी व्यर्थ की छेड़छाड़ मचा रहे हो, भला इन बातों से क्या फायदा ?

भैरोंसिह—ब्याद-शादी में ऐसी बातें हुआ ही करती हैं !

इन्द्रजीतसिंह—तुम्हारा सिर हुआ करता है !(कमलिनी से)अच्छा, यह बताओ कि इस समय तुमने मुझे क्यों याद किया ?

कमलिनी—हरे राम ! अब क्या मैं ऐसी भारी हो गई कि मुझसे मिलना भी बुरा मालूम होता है ?

इन्द्रजीतसिंह—नहीं-नहीं, अगर मिलना बुरा मालूम होता तो मैं यहाँ आता ही क्यों ? पूछता हूँ कि आखिर कोई काम भी है या···?

कमलिनी—हाँ, है तो सही।

इन्द्रजीतसिंह—कहो !

कमलिनी—आपको शायद मालूम होगा कि मेरे पिता जब से यहाँ आये हैं, उन्होंने अपने खाने-पीने का इन्तजाम अलग रखा है, अर्थात् आपके यहाँ का अन्न नहीं खाते और न कुछ अपने लिए खर्च कराते हैं।

इन्द्रजीतसिंह—हाँ, मुझे मालूम है।

कमलिनी—अब उन्होंने इस मकान में रहने से भी इनकार किया है। उनके एक मित्र ने खेमे वगैरह का इन्तजाम कर दिया है, और वे उसी में अपना डेरा उठाकर

जाने वाले हैं ।

इन्द्रजीतसिंह—यह भी मालूम है ।

कमलिनी—मेरी इच्छा है कि यदि आप आप आज्ञा दें, तो लाड़िली को साथ लेकर मैं भी उसी डेरे में चली जाऊँ ।

इन्द्रजीतसिंह—क्यों ? तुम्हें यहाँ रहने में परहेज ही क्या हो सकता है ?

कमलिनी—नहीं-नही, मुझे किस बात का परहेज होगा, मगर यों ही जी चाहता है कि मैं दो-चार दिन अपने बाप के साथ ही रहकर उनकी खिदमत करूँ ।

इन्द्रजीतसिंह—यह दूसरी बात है, इसकी इजाजत तुम्हें अपने मालिक से लेनी चाहिए । मैं कौन हूँ जो इजाजत दूँ ?

कमलिनी—इस समय वे तो यहाँ हैं, नहीं अतः उनके बदले में मैं आए ही को अपना मालिक समझती हूँ ।

इन्द्रजीतसिंह—(मुस्कराकर) फिर तुमने वही रास्ता पकड़ा ? खैर, मैं इस बात की इजाजत न दूँगा ।

कमलिनी—तो मैं आज्ञा के विरुद्ध कुछ न करूँगी ।

इन्द्रजीतसिंह—(भैरोंसिंह से) इनकी बातचीत का ढंग देखते हो ?

भैरोंसिंह—(हँसकर) शादी हो जाने पर भी ये आपको नहीं छोड़ना चाहतीं, तो मैं क्या करूँ ?

कमलिनी—अच्छा, मुझे एक बात की इजाजत तो जरूर दीजिए ।

इन्द्रजीतसिंह—वह क्या ?

कमलिनी—आपकी शादी में मैं आपसे एक विचित्र दिल्लगी करना चाहती हूँ ।

इन्द्रजीतसिंह—वह कौन-सी दिल्लगी होगी ?

कमलिनी—यह बता दूँगी तो उसमें मजा ही क्या रह जायेगा ? बस, आप इतना कह दीजिए कि उस दिल्लगी से रंज न होंगे, चाहे वह कैसी गहरी क्यों न हो ।

इन्द्रजीतसिंह—(कुछ सोचकर) खैर, मैं रंज न करूँगा ।

इसके बाद थोड़ी देर तक हँसी की बातें होती रहीं, और फिर सब उठकर अपने-अपने ठिकाने चले गये ।

12

ब्याह की तैयारी और हँनी-खुशी में ही कई सप्ताह बीत गये और किसी को कुछ मालूम न हुआ । हाँ; कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह को खुशी के साथ ही रंज और उदासी से भी मुकाबला करना पड़ा । यह रंज और उदासी क्यों ? शायद कमलिनी और लाड़िली के सबब से हो । जिस तरह कुँअर इन्द्रजीतसिंह कमलिनी से मिलकर और उसकी जुबानी उसके ब्याह का हो जाना सुनकर दुःखी हुए, उसी तरह आनन्दसिंह को भी लाड़िली

से मिलकर दुःखी होना पड़ा या नहीं सो हम नहीं कह सकते क्योंकि लाड़िली में और आनन्दसिंह में जो बातें हुईं, उसमें और कमलिनी की बातों में बड़ा फर्क है। कमलिनी ने तो खुद इन्द्रजीतसिंह को अपने कमरे में बुलवाया था, मगर लाड़िली ने ऐसा नहीं किया। लाड़िली का कमरा भी आनन्दसिंह के कमरे के बगल में ही था। जिस रात कमलिनी में और इन्द्रजीतसिंह में दूसरी मुलाकात हुई थी, उसी रात को आनन्दसिंह ने भी अपने बगल वाले कमरे में लाड़िली को देखा था, मगर दूसरे ढंग से। आनन्दसिंह अपने कमरे में मसहरी पर लेटे हुए तरह-तरह की बातें सोच रहे थे कि उसी समय बगल वाले कमरे में से कुछ खटके की आवाज आई जिससे आनन्दसिंह चौंके और उन्होंने घूमकर देखा तो उस कमरे का दरवाजा कुछ खुला हुआ नजर आया। इन्हें यह जरूर मालूम था कि हमारे बगल ही में लाड़िली का कमरा है, और उससे मिलने की नीयत से इन्होंने कई दफे दरवाजा खोलना भी चाहा था, मगर बन्द पाकर लाचार हो गये थे। अब दरवाजा खुला पाकर बहुत खुश हुए और मसहरी पर से उठकर धीरे-धीरे दरवाजे के पास गये। हाथ के सहारे दरवाजा कुछ विशेष खोला और अन्दर की तरफ झाँककर देखा। लाड़िली पर निगाह पड़ी जो एक शमादान के आगे बैठी हुई कुछ लिख रही थी। शायद उसे इस बात की कुछ खबर ही न थी कि मुझे कोई देख रहा है।

भीतर सन्नाटा पाकर अर्थात् किसी गैर को न देखकर आनन्दसिंह बेधड़क कमरे के अन्दर चले गये। पैर की आहट पाते ही लाड़िली चौंकी तथा आनन्दसिंह को अपनी तरफ आते देख उठ खड़ी हुई और बोली, "आपने दरवाजा कैसे खोल लिया?"

आनन्दसिंह—(मुस्कराते हुए) किसी हिकमत से!

लाड़िली—क्या आज के पहले वह हिकमत मालूम न थी? शायद सफाई के लिए किसी लौंडी ने दरवाजा खोला हो और बन्द करना भूल गई हो।

आनन्दसिंह—अगर ऐसा ही हो तो क्या कुछ हर्ज है?

लाड़िली—नहीं, हर्ज काहे का है, मैं तो खुद ही आपसे मिलना चाहती थी, मगर लाचारी···

आनन्दसिंह—लाचारी कैसी? क्या किसी ने मना कर दिया था?

लाड़िली—मना ही समझना चाहिए, जबकि मेरी बहिन कमलिनी ने जोर देकर कह दिया कि "या तो तू मेरी इच्छानुसार शादी कर ले या इस बात की कसम खा जा कि किसी गैर मर्द से कभी बातचीत न करेगी।" जिस समय उनकी (कमलिनी की) शादी होने लगी थी, उस समय भी लोगों ने मुझ पर शादी कर लेने के लिए दबाव डाला था, मगर मैं इस समय जैसी हूँ, वैसी ही रहने के लिए कसम खा चुकी हूँ। मतलब यह है कि इसी बखेड़े में मुझमें और उनमें कुछ तकरार भी हो गई है।

आनन्दसिंह – (घबराहट और ताज्जुब के साथ) क्या कमलिनीजी की शादी हो गई?

लाड़िली—जी हाँ।

आनन्दसिंह—किसके साथ?

लाड़िली—सो तो मैं नहीं कह सकती, आपको खुद मालूम हो जायेगा।

आनन्दसिंह—यह बहुत बुरा हुआ।

लाड़िली—बेशक, बहुत बुरा हुआ, मगर क्या किया जाये ! जीजाजी (गोपालसिंह) की मर्जी ही ऐसी थी, क्योंकि किशोरी ने ऐसा करने के लिए उन पर बहुत जोर डाला था, अतः कमलिनी बहिन दबाव में पड़ गईं, मगर मैंने साफ इनकार कर दिया, कि जैसी हूँ वैसी ही रहूँगी।

आनन्दसिंह—तुमने बहुत अच्छा किया।

लाड़िली—और मैं ऐसा करने के लिए सख्त कसम खा चुकी हूँ।

आनन्दसिंह—(ताज्जुब से) क्या तुम्हारे इस कहने का यह मतलब लगाया जाय कि अब तुम शादी करोगी ही नहीं ?

लाड़िली—बेशक !

आनन्दसिंह—यह तो कोई अच्छी बात नहीं !

लाड़िली—जो हो, अब तो मैं कसम खा चुकी हूँ और बहुत जल्द यहाँ से चली जाने वाली भी हूँ, सिर्फ कामिनी बहिन की शादी हो जाने का इन्तजार कर रही हूँ।

आनन्दसिंह—(कुछ सोचकर) कहाँ जाओगी ?

लाड़िली—आप लोगों की कृपा से अब तो मेरा बाप भी प्रकट हो गया है, अब इसकी चिन्ता ही क्या है ?

आनन्दसिंह—मगर जहाँ तक मैं समझता हूँ, तुम्हारे बाप तुम्हें शादी करने के लिए जरूर जोर देंगे।

लाड़िली—इस विषय में उनकी कुछ न चलेगी।

लाड़िली की बातों से आनन्दसिंह को ताज्जुब के साथ-ही-साथ रंज भी हुआ और ज्यादा रंज तो इस बात का था कि अब तक लाड़िली ने खड़े-ही-खड़े बातचीत की और कुमार को बैठने तक के लिए नहीं कहा। शायद इसका यह मतलब हो कि 'मैं ज्यादा देर तक आपसे बात नहीं कर सकती।' अतः आनन्दसिंह को क्रोध और दुःख के साथ लज्जा ने भी धर दबाया और वे यह कहकर कि 'अच्छा मैं जाता हूँ' अपने कमरे की तरफ लौट चले।

आनन्दसिंह के दिल में जो बातें घूम रही थीं, उनका अन्दाजा शायद लाड़ली को भी मिल गया और जब वे लौटकर जाने लगे तब उसने पुनः इस ढंग पर कहा मानो उसकी आखिरी बात अभी पूरी नहीं हुई थी—"क्योंकि जिनकी मुझ पर कृपा रहती थी, अब वे और ही ढंग के हो गए !'

इस बात ने कुमार को तरद्दुद में डाल दिया। उन्होंने घूमकर एक तिरछी निगाह लाड़िली पर डाली और कहा, "इसका क्या मतलब ?"

लाड़िली—सो कहने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। हाँ, जब आपकी शादी हो जायगी तब मैं साफ-साफ आपसे कह दूंगी। उस समय जो कुछ आप राय देंगे, उसे मैं कबूल भी कर लूंगी !

इस आखिरी बात से कुमार को कुछ हिम्मत बँध गई, मगर बैठने की या और कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी और 'अच्छा' कहकर वे वे अपने कमरे में चले आये।

13

विवाह का सब सामान ठीक हो गया, मगर हर तरह की तैयारी हो जाने पर भी लोगों की मेहनत में कमी नहीं हुई। सब कोई उसी तरह दौड़-धूप और काम-काज में लगे हुए दिखाई दे रहे हैं। महाराज सुरेन्द्रसिंह सभी को लिए हुए चुनारगढ़ चले गए। अब इस तिलिस्मी मकान में सिर्फ जरूरत की चीजों के ढेर और इन्तजामकार लोगों के डेरे भर ही दिखाई दे रहे हैं। इस मकान में से उन लोगों के लिए भी रास्ता बनाया गया है जो हँसते-हँसते उस तिलिस्मी इमारत में कूदा करेंगे जिसके बनाने की आज्ञा इन्द्रदेव को दी गई थी और जो इस समय बनकर तैयार हो गई है।

यह इमारत बीस गज लम्बी और इतनी ही चौड़ी थी। ऊँचाई इसकी लगभग चालीस हाथ से कुछ ज्यादा होगी। चारों तरफ की दीवार साफ और चिकनी थी तथा किसी तरफ कोई दरवाजे का निशान दिखाई नहीं देता था। पूरब की तरफ ऊपर चढ़ जाने के लिए छोटी सीढ़ियाँ बनी हुई थीं जिनके दोनों तरफ हिफाजत के लिए लोहे के सींखचे लगा दिए गये थे। उसी पूरब की तरफ वाली दीवार पर बड़े-बड़े हरफों में यह भी लिखा हुआ था—

"जो आदमी इन सीढ़ियों की राह ऊपर जायगा और एक नजर अन्दर की तरफ झांक वहाँ की कैफियत देखकर इन्हीं सीढ़ियों की राह नीचे उतर आवेगा, उसे एक लाख रुपये इनाम में दिए जायेंगे।"

इस इमारत ने चारों तरफ एक अनूठा रंग पैदा कर दिया था। हजारों आदमी उस इमारत के ऊपर चढ़ जाने के लिए तैयार थे और हर एक आदमी अपनी-अपनी लालसा पूरी करने के लिए जल्दी मचा रहा था, मगर सीढ़ी का दरवाजा बन्द था। पहरेदार लोग किसी को ऊपर जाने की इजाजत नहीं देते थे और यह कह कर सभी को सन्तोष करा देते थे कि बारात वाले दिन यह दरवाजा खुलेगा और पन्द्रह दिन तक बन्द न होगा।

यहाँ से चुनारगढ़ की सड़क के दोनों तरफ जो सजावट की गई थी, उसमें भी एक अनूठापन था। दोनों तरफ रोशनी के लिए जाफरी बनी हुई थी और उनमें अच्छे-अच्छे नीति के श्लोक दरसाए गये थे। बीच-बीच में थोड़ी-थोड़ी दूर पर नौबतखाने के बगल में एक-एक मचान था जिस पर एक या दो कैदियों के बैठने के लिए जगह बनी हुई थी। जाफरी के दोनों तरफ दस हाथ चौड़ी जमीन में बाग का नमूना तैयार किया गया था और इसके बाद आतिशबाजी लगाई गई थी। आध-आध कोस की दूरी पर सर्वसाधारण और गरीब तमाशबीनों के लिए महफिल तैयार की गई थी और उसके लिए अच्छी-अच्छी गाने वाली रंडियाँ और भाँड़ मुकर्रर किए गए थे। रात अँधेरी होने के कारण रोशनी का सामान ज्यादा तैयार किया गया था और वह तिलिस्मी चन्द्रमा[1] जो

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति इक्कीसवाँ भाग, आठवाँ बयान।

दोनों राजकुमारों को तिलिस्म के अन्दर से मिला था, चुनारगढ़ किले के ऊँचे कँगूरे पर लगा दिया गया था जिसकी रोशनी इस तिलिस्मी मकान तक बड़ी खूबी और सफाई के साथ पड़ रही थी।

पाठक, दोनों कुमारों की बारात की सजावट, महफिलों की तैयारी, रोशनी और आतिशबाजी की खूबी, मेहमानदारी की तारीफ और खैरात की बहुतायत इत्यादि का हाल विस्तारपूर्वक लिखकर पढ़ने वालों का समय नष्ट करना हमारी आत्मा और आदत के विरुद्ध है। आप खुद समझ सकते हैं कि दोनों कुमारों की शादी का इन्तजाम किस खूबी के साथ किया गया होगा, नुमाइश की चीजें कैसी अच्छी होंगी, वड़प्पन का कितना बड़ा खयाल किया गया, और बारात किस धूमधाम से निकली होगी। हम आज तक जिस तरह संक्षेप में लिखते आए हैं अब भी उसी तरह लिखेंगे, तथापि हमारी उन लिखावटों से जो ब्याह के सम्बन्ध में ऊपर कई दफे मौके-मौके पर लिखी जा चुकी हैं आपको अन्दाज के साथ-साथ अनुमान करने का हौसला भी मिल जायगा और विशेष सोच-विचार की जरूरत न रहेगी। हम इस जगह पर केवल इतना ही लिखेंगे कि—

बारात बड़े धूम-धाम से चुनारगढ़ के बाहर हुई। आगे-आगे नौबत, निशान और उसके बाद सिलसिले से फौजी सवार, पैदल और तोपखाने वगैरह थे, जिसके बाद ऐसी फुलवारियाँ थीं जिनके देखने से खुशी और लूटने से दौलत हासिल हो। इसके बाद बड़े सजे हुए अम्बारीदार हाथी पर दोनों कुमार हाथी पर ही सवार अपने बड़े बुजुर्गों, रिश्तेदारों और मेहमानों से घिरे हुए धीरे-धीरे दोतर्फी बहार लूटते और दुश्मनों के कलेजों को जलाते हुए जा रहे थे और उनके बाद तरह-तरह की सवारियों और घोड़ों पर बैठे हुए वड़े-बड़े सरदार लोग दिखाई दे रहे थे। अन्त में फिर फौजी सिपाहियों का सिलसिला था। आगे वाले नौवत-निशान से लेकर कुमारों के हाथी तक कई तरह के बाजे वाले अपने मौके से अपना इल्म और हुनर दिखा रहे थे।

कुशलपूर्वक बारात ठिकाने पहुँची और शास्त्रानुसार कर्म तथा रीति होने के बाद कुँअर इन्द्रजीतसिंह का विवाह किशोरी से और आनन्दसिंह का कामिनी के साथ हो गया और इस काम में रणधीरसिंह ने भी वित्त के अनुसार दिल खोलकर खर्च किया। दूसरे रोज पहर भर दिन चढ़ने के पहले ही दोनों बहुओं की रुखसती कराके महाराज चुनार की तरफ लौट पड़े।

चुनारगढ़ पहुँचने पर जो कुछ रस्में थीं वे पूरी होने लगीं और मेहमान तथा तमाशबीन लोग नरह-तरह के तमाशों और महफिलों का आनन्द लूटने लगे। उधर तिलिस्मी मकान की सीढ़ियों पर लाख रुपया इनाम पाने की लालसा से लोगों ने चढ़ना आरम्भ किया। जो कोई दीवार के ऊपर पहुँचकर अन्दर की तरफ झाँकता, वह अपने दिल को किसी तरह न सम्हाल सकता और एक दफे खिलखिलाकर हँसने के बाद अन्दर की तरफ कूद पड़ता तथा कई घण्टे के बाद उस चबूतरे वाली बहुत बड़ी तिलिस्मी इमारत की राह से बाहर निकल जाता।

बस, विवाह का इतना ही हाल संक्षेप में लिखकर अब हम इस बयान को पूरा करते हैं और इसके बाद सोहागरात की एक बहुत ही अनूठी घटना का उल्लेख करके

इस बाईसवें भाग को समाप्त करेंगे क्योंकि हम दिलचस्प घटनाओं का लिखना ही पसन्द करते हैं।

14

आज कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की खुशी का कोई ठिकाना नहीं है क्योंकि तरह-तरह की तकलीफें उठाकर एक मुद्दत के बाद इन दोनों को दिली मुरादें हासिल हुई हैं।

रात आधी से कुछ ज्यादा जा चुकी है और एक सुन्दर सजे हुए कमरे में ऊँची और मुलायम गद्दी पर किशोरी और कुँअर इन्द्रजीतसिंह बैठे हुए दिखाई देते हैं। यद्यपि कुँअर इन्द्रजीतसिंह की तरह किशोरी के दिल में भी तरह-तरह की उमंगें भरी हुई हैं और वह आज इस ढंग पर कुँअर इन्द्रजीतसिंह की पहली मुलाकात को सौभाग्य का कारण समझती है मगर उस अनोखी लज्जा के पाले में पड़ी हुई किशोरी का चेहरा घूंघट की ओट से बाहर नहीं होता जिसे प्रकृति अपने हाथों से औरत की बुद्धि में जन्म ही से दे देती है। यद्यपि आज से पहले कुँअर इन्द्रजीतसिंह को कई दफे किशोरी देख चुकी है और उनसे बातें भी कर चुकी है तथापि आज पूरी स्वतन्त्रता मिलने पर भी यकायक सूरत दिखाने की हिम्मत नहीं पड़ती। कुमार तरह-तरह की बातें कहकर और समझाकर उसकी लज्जा दूर किया चाहते हैं मगर कृतकार्य नहीं होते। बहुत-कुछ कहने-सुनने पर कभी-कभी किशोरी दो-एक शब्द बोल देती है मगर वह भी धड़कते हुए कलेजे के साथ। कुमार ने सोच लिया कि यह स्त्रियों की प्रकृति है अतएव उसके विरुद्ध जोर न देना चाहिए, यदि इस समय इसकी हिम्मत नहीं खुलती तो क्या हुआ, घण्टे-दो-घण्टे, पहरदो-पहर या एक-दो दिन में खुल ही जायगी ! आखिर ऐसा ही हुआ।

इसके बाद किस तरह की छेड़छाड़ शुरू हुई या क्या हुआ, सो हम नहीं लिख सकते, हाँ उस समय का हाल जरूर लिखेंगे, जब धीरे-धीरे सुबह की सफेदी आसमान पर फैलने लग गई थी और नियमानुसार प्रातःकाल बजाई जाने वाली नफीरी की आवाज ने कुँअर इन्द्रजीतसिंह और किशोरी को नींद से जगा दिया था। किशोरी जो कुँअर इन्द्रजीतसिंह के बगल में सोई हुई थी, घबरा कर उठ बैठी और मुँह धोने तथा बिखरे बालों को सुधारने की नीयत से उस सुनहरी चौकी की तरफ बढ़ी, जिस पर सोने के बर्तन में गंगाजल भरा हुआ था और जिसके पास ही जल गिराने के लिए एक बड़ा-सा चाँदी का आफताबा भी रखा हुआ था। हाथ में जल लेकर चेहरे पर लगाने और पुनः अपना हाथ देखने के साथ ही किशोरी चौंक पड़ी और घबरा कर बोली, "हैं ! यह क्या मामला है ?"

इन शब्दों ने इन्द्रजीतसिंह को चौंका दिया। वे घबड़ा कर किशोरी के पास चले गए और पूछा, "क्यों, क्या हुआ ?"

किशोरी--मेरे साथ यह क्या दिल्लगी की गई है ?"

इन्द्रजीतसिंह—कुछ कहो भी तो क्या हुआ ?

किशोरी—(हाथ दिखा कर) देखिए यह रंग कैसा है, जो चेहरे पर से पानी लगने के साथ ही छूट रहा है।

इन्द्रजीतसिंह—(हाथ देख कर) हाँ है तो सही ! मगर मैंने तो कुछ भी नहीं किया, तुम खुद सोच सोच सकती हो कि मैं भला तुम्हारे चेहरे पर रंग क्यों लगाने लगा, मगर तुम्हारे चेहरे पर यह रंग आया ही कहाँ से ?

किशोरी—(पुनः चेहरे पर जल लगाकर) यह देखिए, है या नहीं !

इन्द्रजीतसिंह—सो तो मैं खुद कह रहा हूँ कि रंग जरूर है, मगर जरा मेरी तरफ देखो तो सही !

किशोरी ने जो अब समयानुकूल लज्जा के हाथों से छूट कर ढिठाई का पल्ला पकड़ चुकी थी और जो कई घण्टों की कशमकश और चाल-चलन की बदौलत बातचीत करने लायक समझी जाती थी, कुमार की तरफ देखा और फिर कहा, "देखिए और कहिए, यह किसकी सूरत है ?"

इन्द्रजीतसिंह—(और भी हैरान होकर) बड़े ताज्जुब की बात है ! और इस रंग छूटने से तुम्हारा चेहरा भी कुछ बदला हुआ सा मालूम पड़ता है ! अच्छा, जरा अच्छी तरह से मुँह धो डालो !

किशोरी ने 'अच्छा' कह मुँह धो डाला और रूमाल से पोंछने के बाद कुमार की तरफ देख कर बोली, "बताइए, अब कैसा मालूम पड़ता है ? रंग अब छूट गया या अभी नहीं ?"

इन्द्रजीतसिंह—(घबराकर) हैं ! अब तो तुम साफ कमलिनी मालूम पड़ती हो ! यह क्या मामला है ?

किशोरी—मैं कमलिनी तो नहीं हुई हूँ। क्या पहले कोई दूसरी मालूम पड़ती थी ?

इन्द्रजीतसिंह—बेशक ! पहले तुम किशोरी मालूम पड़ती थीं, कम रोशनी और कुछ लज्जा के कारण यद्यपि बहुत अच्छी तरह तुम्हारी सूरत रात को देखने में नहीं आई, तथापि मौके-मौके पर कई दफे निगाह पड़ ही गई थी। अतः किशोरी के सिवाय दूसरी औरत होने का गुमान भी नहीं हो सकता था ! मगर सच तो यह है कि तुमने मुझे बड़ा धोखा दिया !

कमलिनी—(जिसे अब इसी नाम से लिखना उचित है) मैंने धोखा नहीं दिया, बल्कि आप मुझे इस बात का जवाब तो दीजिए कि अगर आपने मुझे किशोरी समझा था तो इतनी ढिठाई करने की हिम्मत कैसे पड़ी ? क्योंकि किशोरी आपकी स्त्री नहीं थी !

इन्द्रजीतसिंह—क्या पागलपने की-सी बातें कर रही हो ! अगर किशोरी मेरी स्त्री नहीं थी तो क्या तुम मेरी स्त्री थीं ?

कमलिनी—अगर आपने मुझे किशोरी समझा था तो आपको मेरे पास से उठ जाना चाहिए था। जब कि आप जानते हैं कि किशोरी कुमार के साथ ब्याही गई है तो

आपको उसके पास बैठने या उससे बातचीत करने का क्या हक था ?

इन्द्रजीतसिंह—तो क्या मैं इन्द्रजीत नहीं हूँ ? बल्कि उचित तो यह था कि तुम मेरे पास से उठ जातीं । जब तुम कमलिनी थीं तो तुम्हें पराये मर्द के पास बैठना भी न चाहिए था ।

कमलिनी—(ताज्जुब और कुछ क्रोध का चेहरा बना कर) फिर आप वही बातें कहे जाते हैं ? आप अपने को समझ ही क्या रहे हैं ? पहले आप आईने में अपनी सूरत देखिए और तब कहिए कि आप किशोरी के पति हैं या कमलिनी के ! (आले पर से आईना उठा और कुमार को दिखाकर) अब बताइये, आप कौन हैं ? और मैं क्यों आपके पास से उठ जाती ?

अब तो कुमार के ताज्जुब की कोई हद न रही, क्योंकि आईने में उन्होंने अपनी सूरत में फर्क पाया । यह तो नहीं कह सकते थे कि किस आदमी की सूरत मालूम पड़ती है । क्योंकि ऐसे आदमी को कभी देखा भी न था, मगर इतना जरूर कह सकते थे कि सूरत बदल गई और अब मैं इन्द्रजीतसिंह नहीं मालूम पड़ता । इन्द्रजीतसिंह समझ गए कि किसी ने मेरे और कमलिनी के साथ चालबाजी करके दोनों का धर्म नष्ट किया और इसमें बेचारी कमलिनी का कोई कसूर नहीं है । मगर फिर भी कमलिनी को आज का सामान देख कर चौंकना चाहिए था । हाँ, ताज्जुब की बात यह है कि इस घर में आने के पहले मुझे किसी ने टोका भी नहीं ! तो क्या इस घर में आने के बाद मेरी सूरत बदली गई ? मगर ऐसा भी क्योंकर हो सकता है ?—इत्यादि बातें सोचते हुए कुमार कमलिनी का मुँह देखने लगे । कमलिनी ने आईना हाथ से रख दिया और पूछा, "अब बताइये, आप कौन हैं ?" इसके जवाब में इन्द्रजीतसिंह ने कहा, "अब मैं भी अपना मुँह धो डालूँ तो कहूँ ।"

यह कहकर कुमार ने भी जल से अपना चेहरा साफ किया और रूमाल से पोंछने के बाद कमलिनी की तरफ देखकर कहा—"अब तुम ही बताओ कि मैं कौन हूँ ?"

कमलिनी—अरे, यह क्या हुआ ! तुम तो बेशक बड़े कुमार हो ? मगर तुमने मेरे साथ ऐसा क्यों किया ? तुम्हें जरा भी धर्म का विचार न हुआ ? बताओ, अब मैं किस लायक रह गई और क्या कर सकती हूँ ? लोगों को कैसे अपना मुँह दिखाऊँगी और इस दुनिया में क्योंकर रहूँगी ?

इन्द्रजीतसिंह—जिसने ऐसा किया वह बेशक मारे जाने लायक है । मैं उसे कभी न छोड़ूँगा क्योंकि ऐसा होने से मेरा भी धर्म नष्ट हुआ है । और इस बदमाशी को मैं कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता, मगर यह तो बताओ कि आज का सामान देखकर तुम्हारे दिल में किसी प्रकार का शक पैदा न हुआ ?

कमलिनी—क्योंकर शक पैदा हो सकता था, जब कि आप ही की तरह मेरे लिए भी 'सोहागरात' आज ही तय गई थी ! मैं नहीं कह सकती थी कि दूसरी तरफ का क्या हाल है ! ताज्जुब नहीं कि जिस तरह मैं धोखे में डाली गई, उसी तरह किशोरी के साथ भी बेईमानी की गई हो और आपके बदले में किशोरी मेरे पति के पास पहुँचाई गई हो !

ओ हो ! कमलिनी की इस बात ने तो कुमार की रही-सही अक्ल भी खो दी !

जिस बात का अब तक कुमार के दिल में ध्यान भी न था, उसे समझा कर तो कमलिनी ने अनर्थ कर दिया। ब्याह हो जाने पर भी किशोरी किसी दूसरे मर्द के पास भेजी जाय, क्या इस बात को कुमार बर्दाश्त कर सकते थे ? कभी नहीं ! सुनने के साथ ही मारे क्रोध के उनका शरीर काँपने लगा और वे घबरा कर कमलिनी से बोले, "यह तो तुमने ठीक कहा ! ताज्जुब नहीं कि ऐसा हुआ हो। लेकिन अगर ऐसा हुआ होगा तो मैं उन दोनों को इस दुनिया से उठा दूंगा !"

इतना कहकर कुमार ने अपनी तलवार उठा ली जो गद्दी पर पड़ी हुई थी और कमरे के बाहर जाने लगे। उस समय कमलिनी ने कुमार का हाथ पकड़ लिया और कहा, "कृपानिधान, जरा मेरी एक बात का जवाब दे दीजिये तो यहाँ से जाइये !"

इन्द्रजीतसिंह—कहो।

कमलिनी—आपका धर्म नष्ट हुआ, खैर, कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि धर्मशास्त्र में मर्दों के लिए कोई कड़ी पाबन्दी नहीं लगाई गई है, मगर औरतों को तो किसी लायक नहीं छोड़ा है। आपके लिए तो प्रायश्चित्त है, मगर मेरे लिए तो कोई प्रायश्चित्त भी नहीं जिसे करके मैं सुधार जाऊँगी, इतना जानकर भी मेरा धर्म नष्ट होने पर आपको उतना रंज या क्रोध नहीं हुआ, जितना यह सोच कर हुआ कि किशोरी की भी ऐसी ही दशा हुई होगी ! ऐसा क्यों ? क्या मेरा पति कमजोर और नामर्द है ? क्या वह भी आपकी ही तरह क्रोध में न आया होगा ? क्या इसी तरह वह भी तलवार लेकर मेरी और आपकी खोज में न निकला होगा ? आप जल्दी क्यों करते हैं, वह खुद यहाँ आता होगा क्योंकि वह आपसे ज्यादा क्रोधी है, मैं तो खुद उसके सामने अपनी गर्दन झुका दूंगी !

कुमार को क्रोध-पर-क्रोध, रंज-पर-रंज और अफसोस-पर-अफसोस होता ही जाता था। कमलिनी की इस आखिरी बात ने कुमार के दिल में दूसरा ही रंग पैदा कर दिया। उन्होंने घबरा कर एक लम्बी साँस ली और ऊपर की तरफ मुँह करके कहा, "विधाता ! तूने यह क्या किया ? मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिसके बदले में इस खुशी को ऐसे रंज के साथ तूने बदल दिया ! अब मैं क्या करूँ ? क्या अपने हाथ से अपना गला काटकर निश्चिन्त हो जाऊँ ? मुझ पर आत्मघात का दोष तो नहीं लगाया जायगा !"

इन्द्रजीतसिंह ने इतना ही कहा था कि कमरे का वह दरवाजा, जिसे कुमार बन्द समझते थे, खुला और किशोरी तथा कमला अन्दर आती हुई दिखाई पड़ीं। कुमार ने समझा कि बेशक किशोरी इसी ढंग का उलाहना लेकर आई होगी, मगर उन दोनों के चेहरों पर हँसी देख कर कुमार को ताज्जुब हुआ और यह देख कर उनका ताज्जुब और भी बढ़ गया कि किशोरी और कमला को देख कर कमलिनी खिलखिला कर हँस पड़ी और किशोरी से बोली—"लो बहिन, आज मैंने तुम्हारे पति को अपना बना लिया !" इसके जवाब में किशोरी बोली, "तुमने पहले ही अपना बना लिया था, आज की बात ही क्या है !"

चन्द्रकान्ता सन्तति

तेईसवाँ भाग

1

सोहागरात के दिन कुँअर इन्द्रजीतसिंह जैसे तरद्दुद और फेर में पड़ गये थे, ठीक वैसा तो नहीं मगर करीब उसी ढंग का बखेड़ा कुँअर आनन्दसिंह के साथ भी मचा, अर्थात् उसी दिन रात के समय जब आनन्दसिंह और कामिनी का एक कमरे में मेल हुआ तो आनन्दसिंह छेड़छाड़ करके कामिनी की शर्म को तोड़ने और कुछ बातचीत करने के लिए उद्योग करने लगे मगर लज्जा और संकोच के बोझ से कामिनी हर तरह दबी जाती थी। आखिर थोड़ी देर की मेहनत, चालाकी तथा बुद्धिमानी की बदौलत आनन्दसिंह ने अपना मतलब निकाल ही लिया और कामिनी भी, जो बहुत दिनों से दिल के खजाने में आनन्दसिंह की मुहब्बत को हिफाजत के साथ छिपाये हुए थी, लज्जा और डर को बिदाई का बीड़ा दे कुमार से बातचीत करने लगी।

जब रात लगभग दो घण्टे के बाकी रह गई तो कामिनी जाग पड़ी और घबराहट के साथ चारों तरफ देख के सोचने लगी कि कहीं सवेरा तो नहीं हो गया क्योंकि कमरे के सभी दरवाजे बन्द रहने के कारण आसमान दिखाई नहीं देता था। उस समय आनन्दसिंह गहरी नींद में सो रहे थे और उनके खर्राटों की आवाज से मालूम होता था कि वे अभी दो-तीन घंटे तक बिना जगाये नहीं जाग सकते अतः कामिनी अपनी जगह से उठी और कमरे की कई छोटी-छोटी खिड़कियों (छोटे दरवाजों) में से, जो मकान के पिछली तरफ पड़ती थीं, एक खिड़की खोलकर आसमान की तरफ देखने लगी। इस तरफ से पतित-पावनी भगवती जाह्नवी की तरल तरंगों की सुन्दर छटा दिखाई देती थी जो उदास से उदास और बुझे दिल को भी एक दफे प्रसन्न करने की सामर्थ्य रखती थी, परन्तु इस समय अंधकार के कारण कामिनी उस छटा को नहीं देख सकती थी और इस सबब से आसमान की तरफ देखकर भी वह इस बात का पता न लगा सकी कि अब रात कितनी बाकी है, मगर सवेरा होने में अभी देर है इतना जान कर उसके दिल को कुछ भरोसा हुआ। उसी समय सरकारी पहरे वाले ने घंटा बजाया जिसे सुनकर कामिनी ने निश्चय कर लिया कि रात अभी दो घंटे से कम बाकी नहीं है। उसने उसी तरफ की एक और खिड़की खोल दी और तब यह उस जगह चली गई जहाँ चौकी के ऊपर गंगा-

जमुनी लोटे में जल रक्खा हुआ था। उसी चौकी पर से एक रूमाल उठा लिया और उसे गीला करके अपना मुँह अच्छी तरह पोंछने अथवा धोने के बाद रूमाल खिड़की के बाहर फेंक दिया। और तब उस जगह चली आई जहाँ आनन्दसिंह गहरी नींद में सो रहे थे।

कामिनी ने आँचल के कपड़े से एक मामूली बत्ती बनाई और नाक में डाल कर उसके जरिये से दो-तीन छींकें मारीं, जिनकी आवाज से आनन्दसिंह की आँख खुल गई और उन्होंने अपने पास कामिनी को बैठे हुए देखकर ताज्जुब से कहा, "हैं, तुम बैठी क्यों हो ? खैरियत तो है !"

कामिनी—जी हाँ, मेरी तबीयत तो अच्छी है मगर तरद्दुद और सोच के मारे नींद नहीं आ रही है। बहुत देर से जाग रही हूँ।

आनन्दसिंह—(उठकर) इस समय भला कौन से तरद्दुद और सोच ने तुम्हें आ घेरा ?

कामिनी—क्या कहूँ, कहते हुए भी शर्म मालूम पड़ती है ?

अनान्दसिंह—आखिर कुछ कहो तो सही, शर्म कहाँ तक करोगी ?

कामिनी—खैर मैं कहती हूँ, मगर आप बुरा तो न मानेंगे ?

आनन्दसिंह—मैं कुछ भी बुरा न मानूँगा, तुम्हें जो कुछ कहना है कहो।

कामिनी—बात केवल इतनी ही है कि मैं छोटे कुमार से एक दिल्लगी कर बैठी हूँ मगर आज उस दिल्लगी का भेद जरूर खुल गया होगा, इसलिए सोच रही हूँ कि अब क्या करूँ ? इस समय कामिनी बहिन से भी मुलाकात नहीं हो सकती, जो उनको कुछ समझा-बुझा देती।

आनन्दसिंह—(ताज्जुब में आकर) तुमने कोई भयानक सपना तो नहीं देखा जिसका असर अभी तक तुम्हारे दिमाग में घुसा हुआ है ? यह मामला क्या है ? तुम कैसी बातें कर रही हो !

कामिनी—नहीं-नहीं, कोई विशेष बात नहीं है और मैंने कोई भयानक सपना भी नहीं देखा, बात केवल इतनी ही है कि मैं हँसी-हँसी में छोटे कुमार से कह चुकी हूँ कि 'मेरी शादी अभी तक नहीं हुई है और मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ कि ब्याह कदापि न करूँगी।' अब आज ताज्जुब नहीं कि कामिनी बहिन ने मेरा सच्चा भेद खोल दिया हो और कह दिया हो कि 'लाड़िली की शादी तो कमलिनी की शादी के साथ-ही-साथ अर्थात् दोनों की एक ही दिन हो चुकी है और आज उसकी भी सोहागरात है।' अगर ऐसा हुआ तो मुझे बड़ी शर्म···

आनन्दसिंह—(ताज्जुब और घबराहट से) तुम तो पागलों की सी बातें कर रही हो। आखिर तुमने अपने को और मुझको समझा ही क्या है ? जरा घूंघट हटा कर बातें करो। तुम्हारा मुँह तो दिखाई ही नहीं देता !

कामिनी—नहीं, मुझे इसी तरह बैठे रहने दीजिए। मगर आपने क्या कहा सो मैं कुछ भी नहीं समझी, इसमें पागलपने की भला कौन सी बात है ?

आनन्दसिंह—तुमने जरूर कोई सपना देखा है जिसका असर अभी तक तुम्हारे

दिमाग में बसा हुआ है और तुम अपने को लाड़िली समझ रही हो, ताज्जुब नहीं कि लाड़िली ने तुमसे वे बातें कही हों जो उसने मुझसे दिल्लगी के ढंग पर की थीं।

कामिनी—मुझे आपकी बातों पर ताज्जुब मालूम पड़ता है। मैं समझती हूँ कि आप ही ने कोई अनूठा स्वप्न देखा है और शायद यह भी देखा है कि कामिनी आपके बगल में पड़ी हुई है जिसका खयाल अभी तक बना हुआ है और मुझे आप कामिनी समझ रहे हैं। भला सोचिए तो सही कि छोटे कुमार (आनन्दसिंह) को छोड़कर कामिनी आपके पास आने ही क्यों लगी? कहीं आप मुझसे दिल्लगी तो नहीं कर रहे हैं?

कामिनी की आखिरी बात को सुनकर आनन्दसिंह बहुत बेचैन हो गये और उन्होंने घबरा कर कामिनी के मुँह से घूँघट हटा दिया, मगर शमादान की रोशनी में उसका खूबसूरत चेहरा देखते ही वे चौंक पड़े और बोले—"हैं! यह मामला क्या है? लाड़िली को मेरे पास आने की क्या जरूरत थी? बेशक तुम लाड़िली मालूम पड़ती हो? कहीं तुमने अपना चेहरा रँगा तो नहीं है?"

कामिनी—(घबराहट के ढंग पर) आपकी बातें तो मेरे दिल में हौल पैदा करती हैं! न मालूम आप क्या कह रहे हैं और इस बात को क्यों नहीं सोचते कि कामिनी को आपके पास आने की जरूरत ही क्या थी!

आनन्दसिंह—(बेचैनी के साथ) पहले तुम अपना चेहरा धो डालो तो मैं तुमसे बातें करूँ! तुम मुझे जरूर धोखा दे रही हो और अपनी सूरत लाड़िली की सी बनाकर मेरी जान को साँसत में डाल रही हो! मैं अभी तक तुम्हें कामिनी समझ रहा था और समझता हूँ।

कामिनी—(ताज्जुब से आनन्दसिंह की सूरत देखकर) आपकी बातें तो कुछ विचित्र ढंग की हो रही हैं। जब आप मुझे कामिनी समझते हैं तो अपने को भी जरूर आनन्दसिंह समझते होंगे?

आनन्दसिंह—इसमें शक ही क्या है? क्या मैं आनन्दसिंह नहीं हूँ?

कामिनी—(अफसोस से हाथ मलकर) हे परमेश्वर! आज इनको क्या हो गया है!

आनन्द—बस, अब तुम अपना चेहरा धो डालो तब मुझसे बातें करो, तुम नहीं जानतीं कि इस समय मेरे दिल की कैसी अवस्था है!

कामिनी—ठहरिये-ठहरिये, मैं बाहर जाकर सभी को इस बात की खबर कर देती हूँ कि आपको कुछ हो गया है। मुझे आपके पास बैठते डर लगता है! हे परमेश्वर!

आनन्दसिंह—तुम नाहक मेरी जान को दुःख दे रही हो! पास ही तो पानी पड़ा है, अपना चेहरा क्यों नहीं धो डालतीं? मुझे ऐसी दिल्लगी अच्छी नहीं मालूम होती, खैर, अब बहुत हो गया, तुम उठो!

कामिनी—मेरे चेहरे में क्या लगा है जो धो डालूँ? आप ही क्यों नहीं अपना चेहरा धो डालते! क्या मुँह में पानी लगाकर मैं लाड़िली से कोई दूसरी ही औरत बन जाऊँगी? या आप मुँह धोकर छोटे कुमार बन जायँगे?

आनन्द—(बेचैनी से बिगड़कर) बस-बस, अब मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता और

न ज्यादे देर तक ऐसी दिल्लगी सह सकता हूँ। मेरा हुक्म है कि तुम तुरत अपना चेहरा धो डालो, नहीं तो तुम्हारे साथ जबर्दस्ती की जायगी, फिर पीछे दोष न देना !

यह सुनते ही कामिनी घबड़ाकर उठ खड़ी हुई और यह कहती हुई कि 'आज भोर-ही-भोर ऐसी दुर्दशा में फँसी हूँ, न मालूम दिन कैसा बीतेगा, उस चौकी के पास चली गई जिस पर जल से भरा गंगाजमनी लोटा हुआ रक्खा था और पास ही में एक बड़ा सा आफताबा भी था। पानी से अपना चेहरा साफ किया और दो-चार कुल्ला भी करने के बाद रूमाल से मुँह पोंछ आनन्दसिंह से बोली, "कहिये, मैं वही हूँ कि बदल गई ?"

कामिनी के साथ-ही-साथ आनन्दसिंह भी बिछावन पर से उठकर वहाँ तक चले आये थे जहाँ पानी और आफताबा रक्खा हुआ था। जब कामिनी ने मुँह धोकर उनकी तरफ देखा तो कुमार के ताज्जुब की कोई हद न रही और वह पत्थर की मूरत बनकर एकटक उसकी तरफ देखते खड़े रह गये। इस समय खिड़कियों में से आसमान पर सुबह की सुफेदी फैली हुई दिखाई दे रही थी और कमरे में भी रोशनी की कमी न थी।

कामिनी— (कुछ चिढ़ी हुई आवाज से) कहिये-कहिये, क्या मैं मुँह धोने से कुछ बदल गई ? आप बोलते क्यों नहीं ?

आनन्दसिंह—(एक लम्बी साँस लेकर) अफसोस ! तुम्हारे घूँघट ने मुझे धोखा दिया। अगर मिलाप के पहले तुम्हारी सूरत देख लेता तो धर्म नष्ट क्यों होता !

कामिनी—(जिसे अब हम लाड़िली लिखेंगे, क्योंकि यह वास्तव में लाड़िली ही है) फिर भी आप उसी ढंग की बातें कर रहे हैं और अभी तक अपने को छोटे कुमार समझते हैं। इतना हिलने-डोलने पर भी आपके दिमाग से स्वप्न का गुबार न निकला। (कमरे में लटकते हुए एक बड़े आईने की तरफ उँगली से इशारा करके) अब आप उसमें अपना चेहरा देख लीजिये तो मुझसे बातें कीजिये !

कुँअर आनन्दसिंह भी यही चाहते थे, अतः वे उस आईने के सामने चले गये और बड़े गौर से अपनी सूरत देखने लगे। लाड़िली भी उनके साथ-ही-साथ उस आईने के पास चली गई और जब वे ताज्जुब के साथ आईने में अपना चेहरा देख रहे थे तो बोली, "कहिये, अब भी आप अपने को छोटे कुमार ही समझते हैं या और कोई ?"

क्रोध के साथ-ही-साथ शर्मिन्दगी ने भी आनन्दसिंह पर अपना कब्जा कर लिया और वे घबड़ा कर अपनी पोशाक पर ध्यान देने लगे, मगर उसमें किसी तरह की खराबी न पाकर उन्होंने पुनः लाड़िली की तरफ देखा और कहा, "यह क्या मामला है ? मेरी सूरत किसने बदली ?"

लाड़िली—(ताज्जुब और घबराहट के ढंग पर) क्या आप अपनी सूरत बदली हुई समझते हैं ?

आनन्दसिंह—बेशक !

लाड़िली—(अफसोस के साथ हाथ मलकर) अफसोस ! अगर यह बात ठीक है तो बड़ा ही गजब हुआ !

आनन्दसिंह—जरूर ऐसा ही है, मैं अभी अपना चेहरा धोता हूँ।

इतना कहकर कुँअर आनन्दसिंह उस चौकी के पास चले गये जिस पर पानी

रक्खा हुआ था और अपना चेहरा धोने लगे। पानी पड़ते ही हाथ पर रंग उतर आया जिस पर निगाह पड़ते ही लाड़िली चौंकी और रंज के साथ बोली, "बेशक चेहरा रँगा हुआ है ! हाय बड़ा ही गजब हो गया ! मैं बेमौत मारी गई ! मेरा धर्म नष्ट हुआ ! अब मैं अपने पति के सामने किस मुँह से जाऊंगी और अपनी हमजोलियों की बातों का क्या जवाब दूँगी ! औरतों के लिए यह बड़े ही शर्म की बात है, नहीं-नहीं, बल्कि औरतों के लिए यह घोर पातक है कि पराये मर्द का संग करें। सच तो यह है कि पराये मर्द का शरीर छू जाने से भी प्रायश्चित्त लगता है, और बात का तो कहना ही क्या है ! हाय, मैं बर्बाद हो गई और कहीं की भी न रही। इसमें कोई शक नहीं कि आपने जान-बूझकर मुझे मिट्टी में मिला दिया !

आनन्दसिंह-- (अच्छी तरह चेहरा धोने के बाद रूमाल से मुँह पोंछकर) क्या कहा ? क्या जानबूझकर मैंने तुम्हारा धर्म नष्ट किया ?

लाड़िली—बेशक ऐसा ही है, मैं इस बात की दुहाई दूँगी और लोगों से इन्साफ चाहूँगी।

आनन्दसिंह —क्या मेरा धर्म नष्ट नहीं हुआ ?

लाड़िली—मर्दों के धर्म का क्या कहना है और उसका बिगड़ना ही क्या, जो दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह ब्याह से भी ज्यादा कर सकते हैं ! बर्बादी तो औरतों के लिए है। इसमें कोई शक नहीं कि आपने जान-बूझकर मेरा धर्म नष्ट किया। जब आप छोटे कुमार ही थे तो आपको मेरे पास से उठ जाना चाहिए था या मेरे पास बैठना ही मुनासिब न था।

आनन्दसिंह—मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि मैंने तुम्हारी सूरत घूँघट के सबब से अच्छी तरह नहीं देखी, एक दफे ऐंचातानी में निगाह पड़ भी गयी थी तो तुम्हें कामिनी ही समझा था, और इसके लिए भी मैं कसम खाता हूँ कि मैंने तुम्हें धोखा देने के लिए जान-बूझकर अपनी सूरत नहीं रँगी है बल्कि मुझे इस बात की खबर भी नहीं कि मेरी सूरत किसने रँगी या क्या हुआ।

लाड़िली —अगर आपका यह कहना ठीक है तो समझ लीजिये कि और भी गजब हो गया ! मेरे साथ-ही-साथ कामिनी भी बर्बाद हो गई होगी। जिस धर्मात्मा ने धोखा देकर मेरा संग आपके साथ करा दिया है, उसने कामिनी को भी, जो आपके साथ ब्याही गई है, जरूर धोखा देकर मेरे पति के पलंग पर सुला दिया होगा !

यह एक ऐसी बात थी जिसे सुनते ही आनन्दसिंह का रंग बदल गया। रंज और अफसोस की जगह क्रोध ने अपना दखल जमा लिया और कुछ सुस्त तथा ठंडी रगों में बेमौके हरारत पैदा हो गई जिससे बदन काँपने लगा और उन्होंने लाल आँखें करके लाड़िली की तरफ देख के कहा—"क्या कहा ? तुम्हारे पति के पलंग पर कामिनी ! यह किसकी मजाल है कि···

लाड़िली—ठहरिये-ठहरिये, आप गुस्से में न आ जाइये। जिस तरह आप अपनी और कमलिनी की इज्जत समझते हैं, उसी तरह मेरी और मेरे पति की इज्जत पर भी आपको ध्यान देना चाहिए। मेरी बर्बादी पर तो आपको गुस्सा न आया और कमलिनी

का भी मेरा ही सा हाल सुनकर आप जोश में आकर उछल पड़े, अपने आपे से बाहर हो गये और आपको बदला लेने की धुन सवार हो गई ! सच है, दुनिया में किसी बिरले ही महात्मा को हमदर्दी और इन्साफ का ध्यान रहता है, दूसरे पर जो कुछ बीती है उसका अन्दाजा किसी को तब तक नहीं लग सकता, जब तक उस पर भी वैसी ही न बीते। जिसने कभी एक उपवास भी नहीं किया है, वह अकाल के मारे भूखे गरीबों पर उचित और सच्ची हमदर्दी नहीं कर सकता, यों उनके उपकार के लिए भले ही बहुत-कुछ जोश दिखाये और कुछ कर भी बैठे। ताज्जुब नहीं कि हमारे बुजुर्ग और बड़े लोग इसी खयाल से बहुत से व्रत चला गये और इससे उनका मतलब यह भी हो कि स्वयं भूखे रहकर देख लो, तब भूखों की कदर कर सकोगे। दूसरे के गले पर छुरी चला देना कोई बड़ी बात नहीं है, मगर अपने गले पर सूई से भी निशान नहीं किया जाता। जो दूसरों की बहू-बेटियों को झाँका करते हैं, वे अपनी बहू-बेटियों का झाँका जाना सहन नहीं कर सकते। बस, इसी से समझ लीजिये कि मेरी बर्बादी पर आपको अगर कुछ खयाल हुआ तो केवल इतना ही कि बस, कसम खाकर अफसोस करने लगे और सोचने लगे कि मेरे दिल से किसी तरह इस बात का रंज निकल जाय, मगर कामिनी का भी मेरे ही ऐसा हाल सुन-कर म्यान के बाहर हो गये ! क्या यही इन्साफ है और यही हमदर्दी है ! इसी दिल को लेकर आप राजा बनेंगे और र.ज-काज करेंगे !

लाड़िली की जोश-भरी बातें सुनकर आनन्दसिंह सहम गये और शर्म ने उनकी गर्दन झुका दी। वह सोचने लगे कि क्या करूँ और इसकी बातों का क्या जवाब दूँ ! इसी समय कमरे का दरवाजा खुला (जो शायद धोखे में खुला रह गया होगा) और इन्द्रदेव की लड़की इन्दिरा को साथ लिए हुए कामिनी आती दिखाई पड़ी।

लाड़िली—लीजिये, कामिनी बहिन भी आ पहुँचीं ! कुछ ताज्जुब नहीं कि ये भी अपना हाल कहने के लिए आई हों। (कामिनी से) लो बहिन, आज हम तुम्हारे बराबर हो गये !

कामिनी – बराबर नहीं, बल्कि बढ़ के !

2

रात पहर भर से ज्यादा जा चुकी है। महल के अन्दर एक सजे हुए कमरे में एक तरफ रानी चन्द्रकान्ता, चपला और चम्पा बैठी हुई हैं और उनसे थोड़ी ही दूर पर राजा वीरेन्द्रसिंह, गोपालसिंह और भैरोंसिंह बैठे आपस में कुछ बातचीत कर रहे हैं।

चन्द्रकान्ता—(वीरेन्द्रसिंह से) सच्चा-सच्चा हाल मालूम होना तो दूर रहा मुझे इस बात का किसी तरह कुछ गुमान भी न गुआ। इस समय मैं दुल्हिनों की सोहागरात का इन्तजाम देख-सुनकर यहाँ आई और दिन भर की थकावट से सुस्त होकर पड़ रही, जी में आया कि घंटे दो घंटे सो रहूँ, मगर इसी बीच में चपला बहिन आ पहुँची और बोली, ''लो बहिन, मैं तुम्हें एक अनूठा हाल सुनाती हूँ जिसकी अब तक हम लोगों को

कुछ खबर ही न थी !" बस इतना कहकर बैठ गई और कहने लगी कि 'कमलिनी और लाड़िली की शादी तिलिस्म के अन्दर ही इन्द्रजीत और आनन्द के साथ भी हो चुकी है जिसके बारे में अब तक हम लोगों को किसी ने कुछ भी नहीं कहा। इसी समय लड़के (भैरोंसिह) ने मुझसे कहा है।' सुनते ही मैं सन्न हो गई कि हे राम, यह कौन-सी बात थी जिसे अभी तक सब कोई छिपाये बैठे रहे !

चपला—(भैरोंसिह की तरफ इशारा करके) सामने तो बैठा हुआ है, पूछिये कि इस समय के पहले ही कभी कुछ कहा था। यद्यपि दोनों की शादियाँ इसके सामने ही तिलिस्म के अन्दर हुई थीं।

वीरेन्द्रसिंह—मुझे भी इस विषय में किसी ने कुछ नहीं कहा था, अभी थोड़ी देर हुई कि गोपालसिंह ने यह सब हाल पिताजी से बयान किया तब मालूम हुआ।

चन्द्रकान्ता—यही सुन के तो मैंने आपको तकलीफ दी, क्योंकि आपकी जुबानी सुने बिना मेरी दिलजमई नहीं हो सकती।

वीरेन्द्रसिंह—जो कुछ तुमने सुना, सब ठीक है।

चन्द्रकान्ता—मजा तो यह है कि लड़कों ने भी मुझसे इस बात की कुछ चर्चा नहीं की।

वीरेन्द्रसिंह—लड़कों को तो खुद ही इस बात की खबर नहीं है कि उनकी शादी कमलिनी और लाड़िली के साथ हुई थी।

चन्द्रकान्ता—यह तो आप और भी ताज्जुब की बात कहते हैं। यह भला कैसे हो सकता है कि उनकी शादी हो, उन्हीं को पता न लगे कि हमारी शादी हो गई है ? इस पर कौन किश्वास करेगा !

वीरेन्द्रसिंह—बात ही कुछ ऐसी हो गई थी और यह शादी जान-बूझकर किसी मतलब से छिपाई गई थी। (गोपालसिंह की तरफ इशारा करके) अब ये खुलासा हाल तुमसे बयान करेंगे, तब तुम समझ जाओगी कि ऐसा क्यों हुआ।

गोपालसिंह—मैं सब हाल आपसे खुलासा बयान करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप मेरा कसूर माफ करेंगी, क्योंकि यह सब मेरी ही करतूत है और मैंने ही यह शादी कराई है।

चन्द्रकान्ता—अगर तुमने ऐसा किया तो छिपाने की क्या जरूरत थी ? क्या हम लोग तुमसे रंज हो जाते ? या हम लोग इस बात को नहीं समझते कि जो कुछ भी तुम करोगे, अच्छा ही समझ के करोगे !

गोपालसिंह—ठीक है, मगर किया क्या जाय ! इस बात को छिपाये बिना काम नहीं चलता था, यही तो सबब हुआ कि खुद दोनों कुमारों को भी इस बात का पता न लगा कि उनकी शादी फलाँ के साथ हो गई है।

चन्द्रकान्ता—आखिर ऐसा क्यों किया गया, सो तो कहो !

गोपालसिंह—इसका सबब यह है कि एक दिन कमला मेरे पास आई और बोली कि 'मैं आपसे एक जरूरी बात कहती हूँ जिस पर आपको विशेष ध्यान देना होगा।' मैंने पूछा—'क्या ?' इस पर उसने जवाब दिया कि 'कमलिनी ने जो कुछ अहसान हम लोगों

पर, खास करके दोनों कुमारों तथा किशोरी और कामिनी पर किये हैं, वह किसी से छिपे नहीं हैं। किशोरी का खयाल है कि इसका बदला किसी तरह अदा हो ही नहीं सकता, और बात भी ऐसी ही है, अब किशोरी ने बात-ही-बात में अपने दिल का हाल मुझसे भी कह दिया और इस बारे में जो कुछ उसने सोच रखा था, वह भी बयान किया, किशोरी कहती है कि अगर मैं शादी न करूँ या शादी होने के पहले ही इस दुनिया से उठ जाऊँ तो उसके अहसान और ताने से कुछ बच सकती हूँ। इस विषय पर जब मैंने किशोरी को बहुत-कुछ समझाया तो बोली कि खैर, अगर मेरी शादी के पहले कमलिनी की शादी कुँअर इन्द्रजीतसिंह के साथ हो जायेगी तब मैं सुख से जिंदगी बिता सकूँगी और उसके अहसान से भी हलकी हो जाऊँगी, क्योंकि ऐसा होने से कमलिनी को पटरानी की पदवी मिलेगी और उसी का लड़का गद्दी का मालिक समझा जायेगा। मैं छोटी और कमलिनी की लौंडी होकर रहूँगी; तभी मेरे दिल को तस्कीन होगा और मैं समझूँगी कि कमलिनी के अहसान का बोझ मेरे सिर से उतर गया।'

चन्द्रकान्ता—शाबाश ! शाबाश !

वीरेन्द्रसिंह—बेशक, किशोरी ने बड़े हौसले की और लासानी बात सोची !

चपला—बेशक, यह साधारण बात नहीं है, यह बड़े कलेजे वाली औरतों का काम है, और इससे बढ़कर किशोरी कुछ कर ही नहीं सकती थी।

गोपालसिंह—मैंने जब कमला की जुबानी यह बात सुनी तो दंग हो गया और मन में किशोरी की तारीफ करने लगा। सच तो यों है कि यह बात मेरे दिल में भी जम गई। अब मैंने कमला से वादा तो कर दिया कि 'ऐसा ही होगा', मगर तरद्दुद में पड़ गया कि यह काम क्योंकर पूरा होगा, क्योंकि यह बात बड़ी ही कठिन बल्कि असम्भव थी कि इन्द्रजीतसिंह और कमलिनी इस राय को मंजूर करें। इसके अतिरिक्त यह भी उम्मीद नहीं हो सकती थी कि हमारे महाराज इस बात को स्वीकार कर लेंगे।

भैरोंसिंह—बेशक, यह कठिन काम था, इन्द्रजीतसिंह इस बात को कभी मंजूर न करते।

गोपालसिंह—कई दिन के सोच-विचार के बाद मैंने और भैरोंसिंह ने मिलकर एक तरकीब निकाल ली और किसी न किसी तरह कमलिनी और लाड़िली को इन्द्रानी और आनन्दी बनाकर दोनों की शादी इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह के साथ करा दी। उन दिनों कमलिनी के पिता बलभद्रसिंहजी, भूतनाथ की मदद से छूटकर यहाँ (अर्थात् बगुले वाले तिलिस्मी मकान में) आ चुके थे। अब मैं तिलिस्म के अन्दर ही अन्दर यहाँ आया और बलभद्रहिजी को कन्यादान करने के लिए समझा-बुझाकर जमानिया ले गया।[1] उस दिन भूतनाथ बहुत परेशान हुआ था और भैरोंसिंह मेरे साथ था। हम लोग पहले जब इस मकान में आये थे, तो भूतनाथ और बलभद्रसिंहजी के नाम की एक-एक चिट्ठी दोनों की चारपाई पर रख के चले गये थे। बलद्रसिंहजी की चिट्ठी में उनकी दिलजमई के लिए एक अंगूठी भी रखी थी जो उन्होंने ब्याह के पहले मुझे बतौर सगुन के दी थी। इसके बाद दूसरे दिन फिर पहुँचे और भूतनाथ को अपना पूरा-पूरा निश्चय देकर बलभद्र-

सिंहजी को ले गये। उनके जाने का सबब भूतनाथ को ठीक-ठीक कह दिया था। मगर साथ इसके इस बात की भी ताकीद कर दी थी कि यह हाल किसी को मालूम न होवे।

इतना कहते-कहते गोपालसिंह कुछ देर के लिए रुके और फिर इस तरह कहने लगे—

''पहले तो मुझे इस बात की चिन्ता थी कि बलभद्रसिंह मेरा कहना मानेंगे या नहीं, मगर उन्होंने इस बात को बड़ी खुशी से मंजूर कर लिया। अपनी लड़कियों से मिल कर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और हम लोगों पर जो कुछ आफतें बीत चुकी थीं, उन्हें सुन-सुनाकर अफसोस करते रहे, फिर अपनी बीती सुनाकर प्रसन्नतापूर्वक हम लोगों के काम में शरीक हुए, अर्थात् हँसी-खुशी के साथ उन्होंने कमलिनी और लाड़िली का कन्यादान कर दिया।[1] इस काम में भैरोंसिंह को भी कम तरद्दुद नहीं उठाना पड़ा, बल्कि दोनों कुमार इनसे रंज भी हो गये थे, क्योंकि इनकी जुबानी असल बातों का पता उन्हें नहीं लगता था, अतः शादी हो जाने के बाद इस बात का बन्दोबस्त किया गया कि इन्द्रजीत-सिंह और आनन्दसिंह इस अनूठे ब्याह को भूल जायें तथा इन्द्रानी और आनन्दी से मिलने की उम्मीद न रखें।

इसके बाद राजा गोपालसिंह ने भी बहुत-सा हाल बयान किया जो हम सन्तति के अठारहवें भाग में लिख आये हैं और सब बातें सुनकर अन्त में चन्द्रकान्ता ने कहा, ''खैर, जो हुआ अच्छा हुआ, हम लोगों के लिए तो जैसे किशोरी और कामिनी हैं, वैसे ही कमलिनी और लाड़िली हैं। मगर किशोरी के नाना को यदि इस बात का कुछ रंज हो तो ताज्जुब नहीं।"

वीरेन्द्रसिंह—पिताजी भी यही कहते थे। मगर इसमें कोई शक नहीं कि किशोरी ने परले सिरे की हिम्मत दिखलाई!

गोपालसिंह—साथ ही इसके यह भी समझ लीजिए कि कमलिनी ने भी इस बात को सहज ही में स्वीकार नहीं कर लिया, इसके लिए भी हम लोगों को बहुत-कुछ उद्योग करना पड़ा। बात यह है कि कमलिनी भी किशोरी को जान से ज्यादा चाहती है और मानती है।

चन्द्रकान्ता—मगर मुझे इस बात का अफसोस जरूर है कि इन दोनों की शादी में किसी तरह की तैयारी नहीं की गई और न कुछ धूमधाम ही हुई।

इसके बाद बहुत देर तक इन सभी में बातचीत होती रही।

3

अब हम कुंअर इन्द्रजीतसिंह की तरफ चलते और देखते हैं कि उधर क्या हो रहा है।

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, अठारहवां भाग, बारहवां बयान।

किशोरी और कमलिनी की बातचीत सुनकर कुँअर इन्द्रजीतसिंह से न रहा गया और उन्होंने बेचैनी के साथ उन दोनों की तरफ देखकर कहा, "क्या तुम लोगों ने मुझे सताने और दुःख देने के लिए कसम ही खा ली है ? क्यों मेरे दिल में हौल पैदा कर रही हो ? असल बात क्यों नहीं बतातीं ?"

किशोरी—(मुस्कुराती हुई) यद्यपि मुझे आपसे शर्म करनी चाहिए, मगर कमला और कमलिनी बहिन ने मुझे बेहया बना दिया, तिस पर आज की दिल्लगी मुझे हँसाते-हँसाते बेहाल कर रही है। आप बिगड़े क्यों जाते हैं। ठहरिये-ठहरिये, जल्दी न कीजिए, और समझ लीजिए कि मेरी शादी आपके साथ नहीं हुई बल्कि कमलिनी की शादी आपके साथ हुई है।

कुमार—सो कैसे हो सकता है ! और मैं क्योंकर ऐसी अनहोनी बात मान लूं ?

कमलिनी—अब आपकी हालत बहुत ही खराब हो गई ! क्या कहूँ, मैं तो आप को अभी और छकाती, मगर दया आती है इसलिए छोड़ देती हूँ। इसमें कोई शक नहीं कि मैंने आपसे दिल्लगी की है, मगर इसके लिए मैं आपसे इजाजत ले चुकी हूँ ! अपनी तर्जनी उँगली की अँगूठी दिखाकर) आप इसे पहचानते हैं ?

कुमार—हाँ-हाँ, मैं इस अँगूठी को खूब पहचानता हूँ। तिलिस्म के अन्दर यह अँगूठी मैंने इन्द्रानी को दी थी, मगर अफसोस !

कमलिनी—अफसोस न कीजिए, आपकी इन्द्रानी मरी नहीं, बल्कि जीती-जागती आपके सामने खड़ी है।

कमलिनी की इस आखिरी बात ने कुमार के दिल से आश्चर्य और दुःख को धोकर साफ कर दिया और उन्होंने खुशी-खुशी कमलिनी और किशोरी का हाथ पकड़कर कहा, "क्या यह सच है ?"

किशोरी—जी हाँ, सच है।

कुमार—और जिन दोनों को मैंने मरी हुई देखा था, वे कौन थीं ?

किशोरी—वे वास्तव में माधवी और मायारानी थीं जो तिलिस्म के अन्दर ही अपनी बदकारियों का फल भोगकर मर चुकी थीं। आपके दिल से उस शादी का खयाल उठा देने के लिए ही उनकी लाशें इन्द्रानी और आनन्दी बनाकर दिखा दी गई थीं, मगर वास्तव में इन्द्रानी यहीं मौजूद हैं और आनन्दी, यही लाड़िली थी जो आनन्दसिंह के साथ ब्याही गई थी—इस समय उधर भी कुछ ऐसा ही रंग मचा हुआ है।

कुमार—तुम्हारी बातों ने इस समय मुझे प्रसन्न कर दिया। विशेष प्रसन्नता तो इस बात से होती है कि तुम खुले दिल से इन बातों को बयान कर रही हो और कमलिनी में तथा तुममें पूरे दर्जे की मुहब्बत मालूम होती है। ईश्वर इस मुहब्बत को बराबर इसी तरह बनाए रहे। (कमलिनी से) मगर तुमने मुझे बड़ा ही धोखा दिया, ऐसी दिल्लगी भी कभी किसी ने नहीं सुनी होगी ! आखिर ऐसा किया ही क्यों !

कमलिनी—अब क्या सब बातें खड़े-खड़े ही खतम होंगी और बैठने की इजाजत न दी जायगी ?

कुमार—क्यों नहीं, अब बैठकर हँसी-दिल्लगी करने और खुशी मनाने के सिवाय

और हम लोगों को करना ही क्या है !

इतना कहकर कुँअर इन्द्रजीतसिंह गद्दी पर बैठ गये और हाथ पकड़कर किशोरी और कमलिनी को अपने दोनों बगल बैठा लिया। कमला आज्ञा पाकर बैठा ही चाहती थी कि दरवाजे पर ताली बजने की आवाज आई जिसे सुनते ही वह बाहर चली गई और तुरन्त लौटकर बोली, "पहरे वाली लौंडी कहती है कि भैरोंसिंह खड़े हैं।"

कुमार—(खुश होकर) हाँ-हाँ, उन्हें जल्द ले आओ, इन हजरत ने मेरे साथ क्या कम दिल्लगी की है ? अब तो मैं सब बातें समझ गया। भला आज उन्हें इत्तिला कराके मेरे पास आने का दिन तो नसीब हुआ।

कुमार की बातें सुनकर कमला पुनः बाहर चली गई और कमलिनी तथा किशोरी, कुमार के बगल से कुछ हटकर बैठ गईं, इतने ही में भैरोंसिंह भी आ पहुँचे।

कुमार—आइए-आइए ! आपने भी मुझे बहुत छकाया है। पर क्या चिन्ता है, समय मिलने पर समझ लूँगा।

भैरोंसिंह—(हँसकर)जो कुछ किया (किशोरी की तरफ बताकर)इन्होंने किया, मेरा कोई कसूर नहीं !

कुमार—खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ, अब मुझे सच्चा-सच्चा हाल तो सुना दो कि तिलिस्म के अन्दर इस तरह की रूखी-फीकी शादी क्यों कराई गई और इस काम के अगुआ कौन महापुरुष थे ?

भैरोंसिंह—(किशोरी की तरफ इशारा करके)जो कुछ किया सब इन्होंने किया, यही सब काम में अगुआ थीं और राजा गोपालसिंह इस काम में इनकी मदद कर रहे थे। उन्हीं की आज्ञानुसार मुझे भी मजबूर होकर इन लोगों का साथ देना पड़ा था। इसका खुलासा हाल आप कमला से पूछिये, यही ठीक-ठीक बतावेगी।

कुमार—(कमला से) खैर, तुम्हीं बताओ कि क्या हुआ ?

कमला—(किशोरी से) कहो बहिन, अब तो मैं साफ-ही-साफ कह दूँ ?

किशोरी—अब छिपाने की जरूरत ही क्या है ?

कमला ने इस तरह से कहना शुरू किया, "किशोरी बहिन ने मुझसे कई दफे कहा कि 'तू इस बात का बन्दोबस्त कर कि किसी तरह मेरी शादी के पहले ही कमलिनी की शादी कुमार के साथ हो जाय।' मगर मेरे किये इसका कुछ भी बन्दोबस्त न हो सका और कमलिनी रानी भी इस बात पर राजी होती दिखाई न दीं, अतः मैं बात टाल कर चुपकी हो बैठी, मगर मुझे इस काम में सुस्त देखकर किशोरी ने फिर मुझसे कहा कि 'देख कमला, तू मेरी बात पर कुछ ध्यान नहीं देती, मगर इसे खूब समझ रखना कि अगर मेरा इरादा पूरा न हुआ अर्थात् मेरी शादी के पहले ही कमलिनी की शादी कुमार के साथ न हो गई तो मैं कदापि ब्याह न करूँगी, बल्कि अपने गले में फाँसी लगाकर जान दे दूँगी। कमलिनी ने जो कुछ अहसान मुझ पर किये हैं, उनका बदला मैं किसी तरह चुका नहीं सकती, अगर कुछ चुका सकती हूँ तो इसी तरह कि कमलिनी को पटरानी बनाऊँ और आप उसकी लौंडी होकर रहूँ, मगर अफसोस है कि तू मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं देती जिसका नतीजा यह होगा कि एक दिन तू रोयेगी और पछताएगी।'

"किशोरी की इस आखिरी बात से मेरे कलेजे पर एक चोट-सी लगी और मैंने सोचा कि जो कुछ यह कहती हैं, बहुत ठीक है, ऐसा होना ही चाहिए। आखिर मैंने राजा गोपालसिंह से यह सब हाल कहा और उन्हें अपनी तरफ से भी बहुत-कुछ समझाया जिसका नतीजा यह निकला कि वे दिलोजान से इस काम के लिए तैयार हो गये। जब वे खुद तैयार हो गये तो फिर क्या था ? सब काम खूबी के साथ होने लगा।

"राजा गोपालसिंह ने इस विषय में कमलिनीजी से कहा और इन्हें बहुत समझाया, मगर ये राजी न हुईं और बोलीं कि 'आपकी आज्ञानुसार मैं कुमार से ब्याह कर लेने के लिए तैयार हूँ, मगर यह नहीं हो सकता कि किशोरी से पहले ही अपनी शादी करके उसका हक मार दूँ। हाँ, किशोरी की शादी हो जाने के बाद जो कुछ आप आज्ञा देंगे मैं करूंगी।" यह जवाब सुनकर गोपालसिंहजी ने फिर कमलिनी को समझाया और कहा कि 'अगर तुम किशोरी की इच्छा पूरी न करोगी तो वह अपनी जान दे देगी, फिर तुम ही सोच लो कि उसके मर जाने पर कुमार की क्या हालत होगी और तुम्हारी इस जिद का क्या नतीजा निकलेगा ?'

"गोपालसिंहजी की इस बात ने इन्हें (कमलिनी की तरफ बता कर) लाजवाब कर दिया और ये लाचार हो शादी करने पर राजी हो गईं। तब राजा साहब ने भैरोंसिंह को मिलाया और ये भी इस बात पर राजी हो गये। इसके बाद यह सोचा गया कि कुमार इस बात को स्वीकार न करेंगे अतः उन्हें धोखा देकर जहाँ तक जल्द हो तिलिस्म के अन्दर ही कमलिनी के साथ उनकी शादी कर देनी चाहिए, क्योंकि तिलिस्म के बाहर हो जाने पर हम लोग स्वाधीन न रहेंगे और अगर बड़े महाराज इस बात को सुनकर अस्वीकार कर देंगे तो फिर हम लोग कुछ भी न कर सकेंगे, इत्यादि।

"बस यही सबब हुआ कि तिलिस्म के अन्दर आपसे तरह-तरह की चालबाजियाँ खेली गईं और भैरोंसिंह ने भी आप से सब भेद छिपा रक्खा। खुद राजा गोपालसिंहजी तिलिस्म के अन्दर आये और बुड्ढे दारोगा बनकर इस काम में उद्योग करने लगे।"

कुमार—(बात रोक कर ताज्जुब के साथ) क्या खुद गोपालसिंह बुड्ढे दारोगा बने थे ?

कमला—जी हाँ, वह बुड्ढी मैं बनी थी, तथा किशोरी और इन्दिरा आदि ने लड़कों का रूप धरा था।

कमला—(हँसकर) यह बुड्ढी भैरोंसिंह की जोरू बनी थी। अब इस बात को सच कर दिखाना चाहिए, अर्थात् इस बुड्ढी को भैरोंसिंह के गले मढ़ना चाहिए।

कुमार—जरूर ! (कमला से) तब तो मैं समझता हूँ कि 'मकरन्द' इत्यादि के बारे में जो भैरोंसिंह ने बयान किया था, वह सब झूठ था ?

कमलिनी—हाँ, बेशक उसमें बारह आने से ज्यादा झूठ था।

कुमार—खैर, तब क्या हुआ ? तुम आगे बयान करो।

कमला ने फिर इस तरह बयान करना शुरू किया—

"भैरोंसिंह जान-बूझ कर इसलिए पागल बनाकर आपको दिखाये गये थे जिसमें एक तो आप धोखे में पड़ जायँ और समझें कि हमारे विपक्षी लोग भी यहाँ रहते हैं, दूसरे

आपसे मिलाप हो जाने पर यदि भैरोंसिंह से कुछ भूल भी हो जाय तो आप यही समझें कि अभी तक इनके दिमाग में पागलपन का कुछ धुआँ बचा हुआ है। जिस समय हम लोग तिलिस्म के अन्दर पहुँचाए गये थे, उस समय राजा गोपालसिंह ने अपनी खास तिलिस्मी किताब कमलिनीजी को दे दी थी जिससे तिलिस्म का बहुत-कुछ हाल मालूम हो गया था और इनकी मदद से हम लोग जो चाहते थे करते थे तथा हमें किसी बात की तकलीफ भी नहीं होती थी और खाने-पीने की सभी चीजें राजा गोपालसिंहजी पहुँचा दिया करते थे।

"भैरोंसिंह जब पागल बनने के बाद आपसे मिले थे तो अपना ऐयारी का बटुआ जान-बूझ कर कमलिनी के पास रख गये थे। फिर जब भैरोंसिंह को बुलाने की इच्छा हुई तो उन्हीं का बटुआ और पीले मकरन्द की लड़ाई दिखा कर वे आपसे अलग कर लिए गये, कमलिनी पीछे मकरन्द की सूरत में थीं और मैं उनका मुकाबला कर रही थी, कही-बदी और मेल की लड़ाई थी इसलिए आपने समझा होगा कि हम दोनों बड़े बहादुर और लड़ाके हैं। अतः इस मामले के बाद जब इन्द्रानी और आनन्दी वाले बाग में भैरों-सिंह आपसे मिले तब भी इन्होंने बहुत-सी झूठी बातें बनाकर आपसे कहीं और जब आप इनसे रंज हुए तो आपका संग छोड़ कर ये फिर हम लोगों की तरफ चले आये।[1] आप दोनों भाई उस शादी करने से इन्कार करते थे, मगर मजबूरी और लाचारी ने आपका पीछा न छोड़ा, इसके अतिरिक्त खुद इन्द्रानी और आनन्दी ने भी आप दोनों को किशोरी और कामिनी की चिट्ठी दिखा कर खुश कर लिया था। यहाँ आकर आपने सुना ही है कि कमलिनीजी के पिता बलभद्रसिंहजी, जिन्हें भूतनाथ छुड़ा लाया था, यकायक गायब हो गए और कई दिनों के बाद लौट कर आये।"

कुमार—हाँ, सुना था।

कमला—बस, उन्हें राजा गोपालसिंह ही यहाँ आकर ले गये थे और खुद बल-भद्रसिंहजी ने ही अपनी दोनों लड़कियों का कन्या-दान किया था।

कुमार—(हँसते हुए) ठीक है, अब मैं सब बातें समझ गया और यह भी मालूम हो गया कि केवल धोखा देने के लिए ही माधवी और मायारानी, जो पहले ही मर चुकी थीं, इन्द्रानी और आनन्दी बनाकर दिखाई गई थीं।

भैरोंसिंह—जी हाँ।

कुमार—मगर नानक वहाँ क्योंकर पहुँचा था?

भैरोंसिंह—आप सुन चुके हैं कि तारासिंह ने नानक को कैसा छकाया था, अतः वह हम लोगों से बदला लेने की नीयत करके वहाँ गया और मायारानी से मिल गया था। कमलिनीजी ने वहाँ का रास्ता उसे बता दिया था, उसी का यह नतीजा निकला। जब मायारानी राजा गोपालसिंह के कब्जे में पड़ गई तब राजा साहब ने नानक को बहुत कुछ बुरा-भला कहा, यहाँ तक कि नानक उनके पैरों पर गिर पड़ा और उनसे अपने कसूर की माफी माँगी। उस समय राजा साहब ने उसका कसूर माफ करके उसे अपने साथ रख लिया। तब से वह उन्हीं के कब्जे में रहा और उन्हीं की आज्ञानुसार आपको धोखे में

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, अठारहवाँ भाग, ग्यारहवाँ बयान।

डालने की नीयत से मायारानी और माधवी की लाश के पास दिखाई दिया था। वे दोनों पहले ही मारी जा चुकी थीं, मगर आपको भुलावा देने की नीयत से उनकी लाश इन्द्रानी और आनन्दी बना कर दिखाई गई थीं। इसके अतिरिक्त और जो कुछ हाल है, वह आपको राजा गोपालसिंहजी की जुबानी मालूम होगा।

कुमार—ठीक है, मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि मायारानी और माधवी की लाश को इन्द्रानी और आनन्दी की सूरत में देखकर जो कुछ रंज मुझे हुआ था और आज तक इस घटना का जो कुछ असर मेरे दिल पर था वह जाता रहा अब मैं अपने को खुश-नसीब समझने लगा। (कमलिनी से) अच्छा यह बताओ कि रात की दिल्लगी तुमने किस तौर पर की ? मेरी समझ में कुछ नहीं आया और न इसी बात का पता लगा कि मेरी सूरत क्योंकर बदल गई ?

कमलिनी—इस बात का जवाब आपको कमला से मिलेगा।

कमला—यह तो एक मामूली बात है। समझ लीजिये कि जब आप सो गए तो इन्हीं (कमलिनी) ने आपको बेहोश करके आपकी सूरत बदल दी।[1]

कुमार—ठीक है मगर ऐसा क्यों किया ?

कमला—एक तो दिल्लगी के लिए और दूसरे किशोरी के इस खयाल से कि जिसकी शादी पहले हुई है, उसी की सुहागरात भी पहले होनी चाहिए।

कुमार—(हँस कर और किशोरी की तरफ देखकर) अच्छा, तो यह सब आपकी बहादुरी है। खैर, आज आपकी पारी होगी ही, समझ लूंगा !

किशोरी ने शरमाकर सिर नीचा कर लिया और कुमार की बात का कुछ भी जवाब न दिया।

इसके बाद वे लोग कुछ देर तक हँसी-खुशी की बातें करते रहे और तब अपने-अपने ठिकाने चले गये।

कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की शादी के बाद कई दिनों तक हँसी-खुशी का जलसा बराबर बना रहा क्योंकि इस शादी के आठवें ही दिन कमला की शादी भैरों-सिंह के साथ और तारासिंह की शादी इन्दिरा के साथ हो गई और इस नाते को भूतनाथ तथा इन्द्रदेव ने बड़ी खुशी के साथ मंजूर कर लिया।

इन सब कामों से छुट्टी पाकर महाराज ने निश्चय किया कि अब पुनः उसी बगुले वाले तिलिस्मी मकान में चल कर कैदियों का मुकदमा सुना जाय, अतः आज्ञानुसार बाहर के आये हुए मेहमान लोग हँसी-खुशी के साथ बिदा किए गये और फिर कई दिनों तक तैयारी करने के बाद सभी का डेरा कूच हुआ और पहले की तरह पुनः वह तिलिस्मी मकान हरा-भरा दिखाई देने लगा। कैदी भी उसी मकान के तहखानों में पहुँचाये गये और सब का मुकदमा सुनने की तैयारी होने लगी।

---

1. यही काम उधर लाड़िली ने किया था। खुद तो पहले ही से कामिनी बनी हुई थी मगर जब कुमार सो गये तब उन्हें बेहोश करके उनकी सूरत बदल दी और सुबह को उनके जागने के पहले ही अपना चेहरा साफ कर लिया।

4

अब हम थोड़ा-सा हाल नानक और उसकी माँ का बयान करते हैं जो हर तरफ से कसूरवार होने पर भी महाराज की आज्ञानुसार कैद किये जाने से बच गये और उन्हें केवल देश-निकाले का दण्ड दिया गया।

यद्यपि महाराज ने उन दोनों पर दया की और उन्हें छोड़ दिया, मगर यह बात सर्वसाधारण को पसन्द न आई। लोग यही कहते रहे कि 'यह काम महाराज ने अच्छा नहीं किया और इसका नतीजा बहुत बुरा निकलेगा।' आखिर ऐसा ही हुआ अर्थात् नानक ने इस अहसान को भूल कर फसाद करने और लोगों की जान लेने पर ही कमर बाँधी।

जब नानक की माँ और नानक को देश-निकाले का हुक्म हो गया और इन्द्रदेव के आदमी इन दोनों को सरहद के पार करके लौट आये तब ये दोनों बहुत ही दुःखी और उदास हो एक पेड़ के नीचे बैठ कर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। उस समय सवेरा हो चुका था और सूर्य की लालिमा पूरब में आसमान पर फैल रही थी।

रामदेई—कहो, अब क्या इरादा है ? हम लोग तो बड़ी मुसीबत में फँस गए !

नानक—बेशक मुसीबत में फँस गए और बिल्कुल कंगाल कर दिये गए। तुम्हारे जेवरों के साथ ही साथ मेरे हर्बे भी छीन लिए गये और हम इस लायक भी न रहे कि किसी ठिकाने पहुँच कर रोजी के लिए कुछ उद्योग कर सकते।

रामदेई—ठीक है, मगर मैं समझती हूँ कि अगर हम लोग किसी तरह नन्हीं के यहाँ पहुँच जायँगे तो खाने का ठिकाना हो जायेगा और उससे किसी तरह की मदद भी ले सकेंगे।

नानक—नन्हीं के यहाँ जाने से क्या फायदा होगा ? वह तो खुद गिरफ्तार होकर कैद की हवा खा रही होगी ! हाँ, उसका भतीजा बेशक बचा हुआ है जिसे उन लोगों ने छोड़ दिया और जो नन्हीं की जायदाद का मालिक बन बैठा होगा, मगर उससे किसी तरह की उम्मीद मुझको नहीं हो सकती।

रामदेई—ठीक है, मगर नन्हीं की लौंडियों में से दो-एक ऐसी हैं जिनसे मुझे मदद मिल सकती है।

नानक—मुझे इस बात की भी उम्मीद नहीं है, इसके अतिरिक्त वहाँ तक पहुँचने के लिए भी तो समय चाहिए, यहाँ तो शाम की भूख बुझाने को पल्ले में कुछ नहीं है।

रामदेई—ठीक है मगर क्या तुम अपने घर भी मुझे नहीं ले जा सकते ? वहाँ तो तुम्हारे पास रुपये-पैसे की कमी नहीं होगी !

नानक—हाँ, यह हो सकता है, वहाँ पहुँचने पर फिर मुझे किसी तरह की तकलीफ नहीं हो सकती, मगर इस समय तो वहाँ तक पहुँचना भी कठिन हो रहा है। (लम्बी साँस लेकर) अफसोस, मेरा ऐयारी का बटुआ भी छीन लिया गया और हम लोग इस लायक भी नहीं रह गये कि किसी तरह सूरत बदल कर अपने को लोगों की आँखों से छिपा लेते।

रामदेई—खैर, जो होना था सो हो गया, अब इस समय अफसोस करने से काम नहीं चलेगा। सब जेवर छिन जाने पर भी मेरे पास थोड़ा-सा सोना बचा हुआ है, अगर इससे कुछ काम चले तो···

नानक—(चौंक कर) क्या कुछ है ?

रामदेई—हाँ !

इतना कहकर रामदेई ने धोती के अन्दर से छिपी हुई सोने की एक करधनी निकाली और नानक के आगे रख दी।

नानक—(करधनी को हाथ में लेकर) बहुत है, हम लोगों घर तक पहुँचा देने के लिए काफी है, और वहाँ पहुँचने पर किसी तरह की तकलीफ न रहेगी, क्योंकि वहाँ मेरे पास खाने-पीने की कमी नहीं है।

रामदेई—तो क्या वहाँ चलकर इन बातों को भूल···

नानक—(बात काट कर) नहीं-नहीं, यह न समझना कि वहाँ पहुँच कर हम इन बातों को भूल जायँगे और बेकार बैठे टुकड़े तोड़ेंगे, बल्कि वहाँ पहुँच कर इस बात का बन्दोबस्त करेंगे कि अपने दुश्मनों से बदला लिया जाय।

रामदेई—हाँ, मेरा भी यही इरादा है, क्योंकि मुझे तुम्हारे बाप की बेमुरौवती का बड़ा रंज है जिसने हम लोगों को दूध की मक्खी की तरह एकदम निकाल कर फेंक दिया और पिछली मुहब्बत का कुछ खयाल न किया। शान्ता और हरनामसिंह को पाकर ऐंठ गया और इस बात का कुछ भी खयाल न किया कि आखिर नानक भी तो उसका ही लड़का है और वह ऐयारी भी जानता है।

नानक—(जोश के साथ) बेशक यह उसकी बेईमानी और हरामजदगी है ! अगर वह चाहता तो हम लोगों को बचा सकता था।

रामदेई—बचा लेना क्या, यह जो कुछ किया सब उसी ने तो किया। महाराज ने तो हुक्म दे ही दिया था कि 'भूतनाथ की इच्छानुसार इन दोनों के साथ बर्ताव किया जाय।'

नानक—बेशक ऐसा ही है ! उसी कम्बख्त ने हम लोगों के साथ ऐसा सलूक किया। मगर क्या चिन्ता है, इसका बदला लिये बिना मैं कभी न छोड़ूँगा।

रामदेई—(आँसू बहाकर) मगर तेरी बातों पर मुझे विश्वास नहीं होता क्योंकि तेरा जोश थोड़ी ही देर का होता है।

नानक—(क्रोध के साथ रामदेई के पैरों पर हाथ रख के) मैं तुम्हारे चरणों की कसम खाकर कहता हूँ कि इसका बदला लिए बिना कभी न रहूँगा।

रामदेई—भला मैं भी तो सुनूँ कि तू क्या बदला लेगा ? मेरे खयाल से तो वह जान से मार देने लायक है।

नानक—ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा ! जो तुम कहती हो वही करूँगा बल्कि उसके लड़के हरनामसिंह को भी यमलोक पहुँचाऊँगा !

रामदेह—शाबाश ! मगर मेरा चित्त तब तक प्रसन्न नहीं होगा जब तक शान्ता का सिर अपने तलवों से न रगड़ने पाऊँगी !

नानक—मैं उसका सिर भी काट कर तुम्हारे सामने लाऊँगा और तब तुमसे आशीर्वाद लूंगा।

रासदेई—शाबाश, ईश्वर तेरा भला करे ! मैं समझती हूँ कि इन बातों के लिए तू एक दफा फिर कसम खा जिसमें मेरी पूरी दिलजमई हो जाय।

नानक—(सूर्य की तरफ हाथ उठाकर) मैं त्रिलोकीनाथ के सामने हाथ उठाकर कसम खाता हूँ कि अपनी माँ की इच्छा पूरी करूँगा और जब तक ऐसा न कर लूंगा, अन्न न खाऊँगा।

रामदेई—(नानक की पीठ पर हाथ फेरकर) बस-बस, अब मैं प्रसन्न हो गई और मेरा आधा दुःख जाता रहा।

नानक—अच्छा, तो फिर यहाँ से उठो। (हाथ का इशारा करके) किसी तरह उस गाँव में पहुँचना चाहिए, फिर सब बन्दोबस्त होता रहेगा।

दोनों उठे और एक गाँव की तरफ रवाना हुए जो वहाँ से दिखाई दे रहा था।

5

पाठक, आपने सुना कि नानक ने क्या प्रण किया ? अतः अब यहाँ पर हम यह कह देना उचित समझते हैं कि नानक अपनी माँ को लिये हुए जब घर पहुँचा तो वहाँ उसने एक दिन के लिए भी आराम न किया। ऐयारी का बटुआ तैयार करने के बाद हर तरह का इन्तजाम करके और चार-पाँच शागिर्दों और नौकरों को साथ लेकर वह उसी दिन घर के बाहर निकला और चुनार की तरफ रवाना हुआ। जिस दिन कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह की बारात निकलने वाली थी उस दिन वह चुनार की सरहद में मौजूद था। बारात की कैफियत उसने अपनी आँखों से देखी थी और इस बात की फिक्र में भी लगा हुआ था कि किसी तरह दो-चार कैदियों को कैद से छुड़ा कर अपना साथी बना लेना चाहिए और मौका मिलने पर राजा गोपालसिंह को भी इस दुनिया से उठा देना चाहिए।

अब हम कुँअर इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह का हाल बयान करते हैं।

दोपहर दिन का समय है और सब कोई भोजन इत्यादि से निश्चिन्त हो चुके हैं। एक सजे हुए कमरे में राजा गोपालसिंह, भरतसिंह, कुँअर आन्दसिंह, भैरोंसिंह और तारासिंह बैठे हुए हँसी-खुशी की बातें कर रहे हैं।

गोपालसिंह—(भरतसिंह से) क्या मुझे स्वप्न में भी इस बात की उम्मीद हो सकती थी कि आपसे किसी दिन मुलाकात होगी ? कदापि नहीं, क्योंकि लोगों के कहने पर मुझे विश्वास हो गया कि आप जंगल में डाकुओं के हाथ से मारे गए···

भरतसिंह—और इसका बहुत बड़ा सबब यह था कि तब तक दारोगा की बेई-मानी का आपको पता न लगा था, उसे आप ईमानदार समझते थे और उसी ने मुझे कैद किया था।

गोपालसिंह—बेशक यही बात है मगर खैर, ईश्वर जिसका सहायक रहता है वह किसी के बिगाड़े नहीं बिगड़ सकता। देखिए, मायारानी ने मेरे साथ क्या कुछ नहीं किया, मगर ईश्वर ने मुझे बचा लिया और साथ ही इसके बिछुड़े हुओं को भी मिला दिया !

भरतसिंह—ठीक है, मगर मेरे प्यारे दोस्त, मैं कह नहीं सकता कि कम्बख्त दारोगा ने मुझे कैसी-कैसी तकलीफें दी हैं और मजा तो यह है कि इतना करने पर भी वह बराबर अपने को निर्दोष ही बताता रहा। अतः जब मैं अपना हाल बयान करूँगा तब आपको मालूम होगा कि दुनिया में कैसे-कैसे नमकहराम और संगीन लोग होते हैं और बदों के साथ नेकी करने का नतीजा बहुत बुरा होता है।

गोपालसिंह—ठीक है, ठीक है, इन्हीं बातों को सोचकर तो भैरोंसिंह बार-बार मुझसे कहते हैं कि 'आपने नानक को सूखा छोड़ दिया सो अच्छा नहीं किया, वह बद है और बदों के साथ नेकी करना वैसा ही है जैसा नेकों के साथ बदी करना।'

भरतसिंह—भैरोंसिंह का कहना वाजिब है, मैं उनका समर्थन करता हूँ।

भैरोंसिंह—कृपानिधान, सच तो यह है कि नानक की तरफ से मुझे किसी तरह बेफिक्री होती ही नहीं। मैं अपने दिल को कितना ही समझाता हूँ मगर वह जरा भी नहीं मानता। ताज्जुब नहीं कि···

भैरोंसिंह इतना कह ही रहा था कि सामने से भूतनाथ आता हुआ दिखाई पड़ा।

गोपालसिंह—अजी वाह जी भूतनाथ, चार-चार दफा बुलाने पर भी हमें आपके दर्शन नहीं होते !

भूतनाथ—(मुस्कुराता हुआ) अभी क्या हुआ है, दो-चार दिन बाद तो मेरे दर्शन और भी दुर्लभ हो जायँगे !

गोपालसिंह—(ताज्जुब से) सो क्यों ?

भूतनाथ—यही कि मेरा सपूत नानक शहर में आ पहुँचा है और मेरी अन्त्येष्टि क्रिया करके बहुत जल्द अपने सिर का बोझ हलका करने की फिक्र में लगा है। (बैठ कर) कृपा कर आप भी जरा होशियार रहियेगा !

गोपालसिंह—तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि वह इस बदनीयती के साथ यहाँ पर आ गया है ?

भूतनाथ—मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है। इसी से तो मुझे यहाँ आने में देर हो गई क्योंकि मैं यह हाल कहने और तीन-चार दिन की छुट्टी लेने के लिए महाराज के पास चला गया था, वहाँ से लौटा हुआ आपके पास आ रहा हूँ।

गोपालसिंह—तो क्या महाराज से छुट्टी ले आये ?

भूतनाथ—जी हाँ, अब आपसे यह पूछना है कि आप अपने लिए क्या बन्दोबस्त करेंगे ?

गोपालसिंह—तुम तो इस तरह की बातें करते हो जैसे उसकी तरफ से कोई बहुत बड़ा तरद्दुद हो गया हो ! वह बेचारा कल का लौंडा हम लोगों के साथ क्या कर सकता है ?

भूतनाथ—सो तो ठीक है, मगर दुश्मन को कभी छोटा और कमजोर नहीं

समझना चाहिए।

गोपालसिंह—तुम्हें ऐसा ही डर है तो कहो बैठे-ही-बैठे चौबीस घण्टे के अन्दर उसे गिरफ्तार कराकर तुम्हारे हवाले कर दूँ ?

भूतनाथ—यह मुझे विश्वास है और आप ऐसा कर सकते हैं, मगर मुझे यह मंजूर नहीं है, क्योंकि मैं जरा दूसरे ढंग से उसका मुकाबला करना चाहता हूँ। आप जरा बाप-बेटे की लड़ाई देखिए तो ! हाँ, अगर वह आपकी तरफ झुके, तो जैसा मौका देखिये, कीजियेगा।

गोपालसिंह—खैर, ऐसा ही सही ! मगर तुमने क्या सोचा है, जरा अपना मन-सूबा तो सुनाओ !

इसके बाद उन लोगों में देर तक बातें होती रहीं और दो घण्टे के बाद भूतनाथ उठकर अपने डेरे की तरफ चला गया।

6

नानक जब चुनारगढ़ की सरहद पर पहुँचा, तब सोचने लगा कि दुश्मनों से क्यों कर बदला लेना चाहिए। वह पाँच आदमियों को अपना शिकार समझे हुए था और उन्हीं पाँचों की जान लेने का विचार करता था। एक तो राजा गोपालसिंह, दूसरे इन्द्रदेव, तीसरा भूतनाथ, चौथा हरनामसिंह और पाँचवीं शान्ता। बस, ये ही पाँच उसकी आँखों में खटक रहे थे, मगर इनमें से दो अर्थात् राजा गोपालसिंह और इन्द्रदेव के पास फटकने की तो उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी और वह समझता था कि ये दोनों तिलिस्मी आदमी हैं, इनके काम जादू की तरह हुआ करते हैं और इनमें लोगों के दिल की बात समझ जाने की कुदरत है। मगर बाकी तीनों को वह निरा शिकार ही समझता था और विश्वास करता था कि इन तीनों को किसी न किसी तरह फँसा लेंगे। अतः चुनारगढ़ की सरहद में आ पहुँचने के बाद उसने गोपालसिंह और इन्द्रदेव का खयाल तो छोड़ दिया और भूतनाथ की स्त्री और उसके लड़के हरनामसिंह की जान लेने के फेर में पड़ा। साथ ही इसके यह भी समझ लेना चाहिए कि नानक यहाँ अकेला नहीं आया था, बल्कि समय पर मदद पहुँचाने के लायक सात-आठ आदमी और भी अपने साथ लाया था, जिसमें से चार-पाँच तो उसके शागिर्द ही थे।

दोनों कुमारों की शादी में जिस तरह दूर-दूर के मेहमान और तमाशबीन लोग आये थे, उसी तरह साधु-महात्मा तथा साधु वेषधारी पाखण्डी लोग भी बहुत से इकट्ठे हो गये थे, जिन्हें सरकार की तरफ से खाने-पीने को भरपूर मिलता था और इस लालच में पड़े हुए उन लोगों ने अभी तक चुनारगढ़ का पीछा नहीं छोड़ा था तथा तिलिस्मी मकान के चारों तरफ तथा आस-पास के जंगलों में डेरा डाले हुए पड़े थे। नानक और उसके साथी लोग भी साधुओं ही के वेष में वहाँ पहुँचे और उसी मंडली में मिल-जुलकर रहने लगे।

नानक को यह बात मालूम थी कि भूतनाथ का डेरा तिलिस्मी इमारत के अन्दर है और वह वहाँ बड़ी कड़ी हिफाजत के साथ रहता है। इसलिए वह कभी-कभी यह सोचता था कि मेरा काम सहज ही में नहीं हो जायेगा, बल्कि उसके लिए बड़ी भारी मेहनत करनी पड़ेगी। मगर वहाँ पहुँचने के कुछ ही दिन बाद (जब शादी-ब्याह से सब कोई निश्चिन्त होकर तिलिस्मी इमारत में आ गए) उसने सुना और देखा कि महाराज की आज्ञानुसार भूतनाथ ने स्त्री और लड़के सहित तिलिस्मी इमारत के बाहर एक बहुत बड़े और खूबसूरत खेमे में डेरा डाला है, अतएव वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसे विश्वास हो गया कि मैं अपना काम शीघ्र और सुभीते के साथ निकाल लूँगा।

नानक ने और भी दो-तीन रोज तक इन्तजार किया और इस बीच में यह भी जान लिया कि भूतनाथ के खेमे की कुछ विशेष हिफाजत नहीं होती और पहरे वगैरह का इन्तजाम भी साधारण-सा ही है तथा उसके शागिर्द लोग भी आजकल मौजूद नहीं हैं।

रात आधी से कुछ ज्यादा जा चुकी थी। यद्यपि चन्द्रदेव के दर्शन नहीं होते थे, मगर आसमान साफ होने के कारण टुटपूँजिया तारागण अपनी नामवरी पैदा करने का उद्योग कर रहे और नानक जैसे बुद्धिमान लोगों से पूछ रहे थे कि यदि हम लोग इकट्ठे हो जायें तो क्या चन्द्रमा से चौगुनी और पाँचगुनी चमक-दमक नहीं दिखा सकते तथा जवाब में यह भी सुनना चाहते थे कि 'निःसन्देह !' ऐसे समय में एक आदमी स्याह लबादा ओढ़े रहने पर भी लोगों की निगाहों से अपने को बचाता हुआ भूतनाथ के खेमे की तरफ जा रहा है। पाठक समझ ही गए होंगे कि यह नानक है, अतः जब वह खेमे के पास पहुँचा तो अपने मतलब का सन्नाटा देखकर खड़ा हो गया और किसी के आने का इन्तजार करने लगा। थोड़ी ही देर में एक दूसरा आदमी भी उसके पास आया और दो-चार सायत तक बातें करके चला गया। उस समय नानक जमीन पर लेट गया और धीरे-धीरे खिसकता हुआ खेमे की कनात के पास जा पहुँचा, तब उसे धीरे से उठाकर अन्दर चला गया। यहाँ उसने अपने को गुलामगर्दिश में पाया, मगर यहाँ बिल्कुल ही अंधकार था, हाँ यह जरूर मालूम होता था कि आगे वाली कनात के अन्दर अर्थात् खेमे में कुछ रोशनी हो रही है। नानक फिर वहाँ लेट गया और पहले की तरह यह दूसरी कनात भी उठाकर खेमे के अन्दर जाने का विचार कर ही रहा था कि दाहिनी तरफ से कुछ खड़खड़ाहट की आवाज मालूम पड़ी। वह चौंका और उसी अँधेरे में तीन-चार कदम बाईं तरफ हटकर पुनः कोई आवाज सुनने और उसे जाँचने की नीयत से ठहर गया। जब थोड़ी देर तक किसी तरह की आहट नहीं मालूम हुई तो पहले की तरह ही जमीन पर लेट गया और कनात उठाकर अन्दर जाना ही चाहता था कि दाहिनी तरफ फिर किसी के पैर पटक-पटक कर चलने की आहट मालूम हुई। वह खड़ा हो गया और पुनः चार-पाँच कदम पीछे की तरफ (बाईं तरफ) हट गया, मगर इसके बाद फिर किसी तरह की आहट मालूम न हुई। कुछ देर तक इन्तजार करने के बाद वह पुनः जमीन पर लेट गया और कनात के अन्दर सिर डाल कर देखने लगा। कोने की तरफ एक मामूली शमादान जल रहा था, जिसकी मद्धिम रोशनी में दो चारपाई बिछी हुई दिखाई पड़ीं। कुछ देर तक गौर करने पर नानक को निश्चय हो गया कि इन दोनों चारपाइयों पर भूतनाथ तथा उसकी स्त्री

शान्ता सोई हुई है । परन्तु उनका लड़का हरनामसिंह खेमे के अन्दर दिखाई न दिया और उसके लिए नानक को कुछ चिन्ता हुई, तथापि वह साहस करके खेमे के अन्दर चला ही गया ।

डरता-काँपता नानक धीरे-धीरे चारपाई के पास पहुँच गया, चाहा कि खंजर से इन दोनों का गला काट डाले, मगर फिर यह सोचने लगा कि पहले किस पर वार करूँ, भूतनाथ पर या शान्ता पर ? वे दोनों सिर से पैर तक चादर ताने पड़े हुए थे, इससे यह मालूम करने की जरूरत थी कि किस चारपाई पर कौन सो रहा है, साथ ही इसके नानक इस बात पर भी गौर कर रहा था कि रोशनी बुझा दी जाये या नहीं । यद्यपि वह वार करने के लिए खंजर हाथ में ले चुका था, मगर उसकी दिली कमजोरी ने उसका पीछा नहीं छोड़ा था और उसका हाथ काँप रहा था ।

7

किशोरी, कामिनी, कमलिनी और लाड़िली ये चारों बड़ी मुहब्बत के साथ अपना दिन बिताने लगीं । इनकी मुहब्बत दिखावा नहीं थी, बल्कि दिली और सचाई के साथ थी । चारों ही जमाने के ऊँच-नीच को अच्छी तरह समझ चुकी थीं और खूब जानती थीं कि दुनिया में हर एक के साथ दुःख और सुख का चरखा लगा ही रहता है, खुशी तो मुश्किल से मिलती है, मगर रंज और दुःख के लिए किसी तरह का उद्योग नहीं करना पड़ता, यह आप से आप पहुँचता है, और एक साथ दस को लपेट लेने पर भी जल्दी नहीं छोड़ता, इसलिए बुद्धिमान का काम यही है कि जहाँ तक हो सके खुशी का पल्ला न छोड़े और न कोई काम ऐसा करे, जिसमें दिल को किसी तरह का रंज पहुँचे । इन चारों औरतों का दिल उन नादान और कमीनी औरतों का सा नहीं था, जो दूसरों को खुश देखते ही जलभुन कर कोयला हो जाती हैं और दिन-रात कुप्पे की तरह मुँह फुलाये आँखों से पाखण्ड के आँसू बहाया करती हैं अथवा घर की औरतों के साथ मिल-जुलकर रहना अपनी बेइज्जती समझती हैं ।

इन चारों का दिल आईने की तरह साफ था । नहीं-नहीं, हम भूल गये, हमें दिल के साथ आईने की उपमा देना पसन्द नहीं । न मालूम लोगों ने इस उपमा को किस लिए पसन्द कर रखा है ! उपमा में उसी वस्तु का व्यवहार करना चाहिए जिसकी प्रकृति में उपमेय से किसी तरह का फर्क न पड़े, मगर आईने (शीशे) में तो यह बात पाई नहीं जाती, हरएक आईना बेऐब, साफ और बिना धब्बे के नहीं होता और वह हर एक की सूरत एक सी भी नहीं दिखाता बल्कि जिसकी जैसी सूरत होती है, उसके मुकाबले में वैसा ही बन जाता है । इसलिए आईना उन लोगों के दिल को कहना उचित है जो नीति-कुशल हैं या जिन्होंने यह बात ठान ली है कि जो जैसा करे उसके साथ वैसा ही करना चाहिए, चाहे वह अपना हो या पराया, छोटा हो या बड़ा । मगर इन चारों में यह बात न थी, ये बड़ों की झिड़की को आशीर्वाद और छोटों की ऐंठ को उनकी नादानी समझती

थीं। जब कोई हमजोली या आपस वाली क्रोध भरी हुई अपना मुँह बिगाड़े इनके सामने आती तो यदि मौका होता तो ये हँसकर कह देतीं कि 'वाह, ईश्वर ने अच्छी सूरत बनाई है !' या 'बहिन, हमने तो तुम्हारा जो कुछ बिगाड़ा सो बिगाड़ा मगर तुम्हारी सूरत ने तुम्हारा क्या कसूर किया है जो तुम उसे बिगाड़ रही हो ?' बस, इतने ही में उसका रंग बदल जाता। इन बातों को विचार कर हम इनके दिल का आईने के साथ मिलान करना पसन्द नहीं करते वल्कि यह कहना मुनासिब समझते हैं कि 'इनका दिल समुद्र की तरह गम्भीर था।'

इन चारों को इस का खयाल ही न था कि हम अमीर हैं, हाथ-पैर हिलाना या घर का कामकाज करना हमारे लिए पाप है। ये खुशी से घर का काम जो इनके लायक होता करतीं औरी खाने-पीने क चीजों पर विशेष ध्यान रखतीं। सबसे बड़ा खयाल इन्हें इस बात का रहता था कि इनके पति इनसे किसी तरह रंज न होने पावें और घर के किसी बड़े बुजुर्ग को इन्हें बेअदब कहने का मौका न मिले। महारानी चन्द्र-कान्ता की तो बात ही दूसरी है, ये चपला और चम्पा को भी सास की तरह समझतीं और इज्जत करती थीं। घर की लौंडियाँ तक इनसे प्रसन्न रहतीं और जब किसी लौंडी से कोई कसूर हो जाता तो झिड़की और गालियों के बदले नसीहत के साथ समझाकर ये उसे कायल और शर्मिन्दा कर देतीं और उसके मुँह से कहला देतीं कि 'बेशक मुझसे भूल हुई, आइन्दा कभी ऐसा न होगा !' सबसे विचित्र बात तो यह थी कि इनके चेहरे पर रंज क्रोध या उदासी कभी दिखाई देती ही न थी और जब कभी ऐसा होता तो किसी भारी घटना का अनुमान किया जाता था। हाँ, उस समय इनके दुःख और चिन्ता कोई ठिकाना नहीं रहता था जब ये अपने पति को किसी कारण दुःखी देखतीं। ऐसी अवस्था में इनकी सच्ची भक्ति के कारण इनके पति को अपनी उदासी छिपानी पड़ती या इन्हें प्रसन्न करने और हंसाने के लिए और किसी तरह का उद्योग करना पड़ता। मतलब यह है कि इन्होंने घ भर का दिल अपने हाथ में कर रक्खा था और ये घर भर की प्रसन्नता का कारण समझी जाती थीं।

भूतनाथ की स्त्री शान्ता का इन्हें बहुत बड़ा खयाल रहता और ये उसकी पिछली घटनाओं को याद करके उसकी पति-भक्ति की सराहना किया करतीं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन्हें अपनी जिन्दगी में दुःखों के बड़े-बड़े समुद्र पार करने पड़े थे परन्तु ईश्वर की कृपा से जब ये किनारे लगीं, तब इन्हें कल्पवृक्ष की छाया मिली और किसी बात की परवाह न रही।

इस समय संध्या होने में घण्टे भर की देर है। सूर्य भगवान् अस्ताचल की तरफ तेजी के साथ झुके चले जा रहे हैं और उनकी लाल-लाल पिछली किरणों से बड़ी-बड़ी अटारियाँ तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के ऊपरी हिस्सों पर ठहरा हुआ सुनहरा रंग बड़ा ही सुहा-वना मालूम पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है मानो प्रकृति ने प्रसन्न होकर अपना गौरव बढ़ाने के लिए अपनी सहचरियों और सहायकों को सुनहरा ताज पहना दिया है।

ऐसे समय में किशोरी, कामिनी, लाड़िली और कमला अटारी पर एक सजे हुए बँगले के अन्दर बैठीं जालीदार खिड़कियों से उस जंगल की शोभा देख रही हैं जो इस

तिलिस्मी मकान से थोड़ी दूर पर है और साथ ही इसके मीठी बातें भी करती जाती हैं।

कमलिनी—(किशोरी से) बहिन एक दिन वह था कि हमें अपनी इच्छा के विरुद्ध ऐसे बल्कि इससे भी बढ़कर भयानक जंगलों में घूमना पड़ता था और उस समय यह सोचकर डर मालूम पड़ता था कि कोई शेर इधर-उधर से निकलकर हम पर हमला न करे, और एक आज का दिन है कि इस जंगल की शोभा भली मालूम पड़ती है और इसमें घूमने को जी चाहता है।

किशोरी—ठीक है, जो काम लाचारी के साथ करना पड़ता है वह चाहे अच्छा ही क्यों न हो परन्तु चित्त को बुरा लगता है, फिर भयानक तथा कठिन कामों का तो कहना ही क्या! मुझे तो जंगल में शेर और भेड़ियों का इतना खयाल न होता था जितना दुश्मनों का, मगर वह समय और ही था ईश्वर न करे किसी दुश्मन को दिखे। उस समय हम लोगों की किस्मत बिगड़ी हुई थी और अपने साथी लोग भी दुश्मन बनकर सताने के लिए तैयार हो जाते थे। (कमला की तरफ देखकर) भला तुम्हीं बताओ कि उस चमेला छोकरी का मैंने क्या बिगाड़ा था जिसने मुझे हर तरह से तबाह कर दिया? अगर वह मेरी मुहब्बत का हाल मेरे पिता से न कह देती तो मुझ पर वैसी भयानक मुसीबत क्यों आ जाती?

कमला—बेशक ऐसा ही है, मगर उसने जैसी नमकहरामी की, वैसी ही सजा पाई। मेरे हाथ के कोड़े[1] वह जन्म भर न भूलेगी!

किशोरी—मगर इतना होने पर भी उसने मेरे पिता के जी का ठीक-ठीक भेद न बताया।

कमला—बेशक वह बहुत ही जिद्दी निकली, मगर तुमने भी यह बड़ी लायकी दिखाई कि अन्त में उसे छोड़ देने का हुक्म दे दिया। अब भी वह जहाँ जायगी, दुःख ही भोगेगी।

किशोरी—इसके अतिरिक्त उस जमाने में धनपत के भाई ने क्या मुझे कम तकलीफ दी थी जब मैं नागर के यहाँ कैद थी! उस कम्बख्त की तो सूरत देखने से मेरा खून खुश्क हो जाता था!

लाड़िली—वही जिसे भूतनाथ ने जहन्नुम में पहुँचा दिया? मगर नागर इस मामले को बिल्कुल ही छिपा गई, मायारानी से उसने कुछ भी न कहा और इसी में उसका भला भी था।

किशोरी—(लाड़िली से) बहिन, तुम तो बड़ी नेक हो और तुम्हारा ध्यान भी धर्म-विषयक कामों में विशेष रहता है, मगर उन दिनों तुम्हें क्या हो गया था कि माया-रानी के साथ बुरे कामों में अपना दिन बिताती थीं और हम लोगों की जान लेने के लिए तैयार रहती थीं?

लाड़िली—(लज्जा और उदासी के साथ) फिर तुमने वही चर्चा छेड़ी! मैं कई दफे हाथ जोड़कर तुमसे कह चुकी हूँ कि अब उन बातों की याद दिलाकर मुझे शर्मिन्दा

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, पहला भाग, ग्यारहवें बयान का अन्त।
2. ,, ,, आठवाँ भाग, नौवाँ बयान।

करो, दुःख न दो, मेरे मुँह में बार-बार स्याही न लगाओ। उन दिनों मैं पराधीन थी, मेरा कोई सहायक न था, मेरे लिए कोई और ठिकाना न था, और उस दुष्टा का साथ छोड़कर मैं अपने को कहीं छिपा भी नहीं सकती थी और डरती थी कि वहाँ से निकल भागने पर कहीं मेरी इज्जत पर न आ बने ! मगर बहिन, तुम जान-बूझकर बार-बार उन बातों की याद दिलाकर मुझे सताती हो, कहो बैठूँ या यहाँ से उठ जाऊँ ?

किशोरी—अच्छा-अच्छा जाने दो, माफ करो, मुझसे भूल गई, मगर मेरा मतलब वह न था जो तुमने समझा है, मैं दो-चार बातें नानक के विषय में पूछना चाहती थी जिसका पता अभी तक नहीं लगा और जो भेद की तरह हम लोगों···

लाड़िली—(बात काटकर) वे बातें भी तो मेरे लिए वैसी ही दुःखदायी हैं।

किशोरी—नहीं-नहीं, मैं यह न पूछूंगी कि तुमने नानक के साथ रामभोली बनकर क्या-क्या किया, बल्कि यह पूछूँगी कि उस टीन के डिब्बे में क्या था जो नानक ने चुरा लाकर तुम्हें बजरे में दिया था ? कुएँ में से हाथ कैसे निकला था ? नहर के किनारे वाले बँगले में पहुँचकर वह क्योंकर फँसा लिया गया ? उस बँगले में वह तस्वीरें कैसी थीं ? असली रामभोली कहाँ गई और क्या हुई ? रोहतासगढ़ तहखाने के अन्दर तुम्हारी तस्वीर किसने लटकाई और तुम्हें वहाँ का भेद कैसे मालूम हुआ था इत्यादि बातें मैं कई दफे कई तरह से सुन चुकी हूँ मगर उनका असल भेद अभी तक कुछ मालूम न हुआ।[1]

लाड़िली—हाँ, इन सब बातों का जवाब देने के लिए मैं तैयार हूँ। तुम जानती हो और अच्छी तरह सुन और समझ भी चुकी हो कि वह तिलिस्मी बाग तरह-तरह के अजायबातों से भरा हुआ है, विशेष नहीं तो भी वहाँ का बहुत-कुछ हाल मायारानी और दारोगा को मालूम था। वहाँ या उसकी सरहद में ले जाकर किसी को डराने, धमकाने या तकलीफ देने के लिए कोई ताज्जुब का तमाशा दिखाना कौन बड़ी बात थी !

किशोरी—हाँ, सो तो ठीक ही है।

लाड़िली—और फिर नानक जान-बूझकर काम निकालने के लिए ही तो गिरफ्तार किया गया था। इसके अतिरिक्त तुम पहले यह भी सुन चुकी हो कि दारोगा के बँगले या अजायबघर से खास बाग तक नीचे-नीचे रास्ता बना हुआ है, ऐसी अवस्था में नानक के साथ वैसा बर्ताव करना कौन-सी बड़ी बात थी !

किशोरी—बेशक ऐसा ही है, अच्छा उस डिब्बे वगैरह का भेद तो बताओ !

लाड़िली—उस गठरी में जो कलमदान था, वह तो हमारे विशेष काम का न था मगर उस डिब्बे में वही इन्दिरा वाला कलमदान था जिसके लिए दारोगा साहब बेताब हो रहे थे और चाहते थे कि वह किसी तरह पुनः उनके कब्जे में आ जाय। असल में उसी कलमदान के लिए मुझे रामभोली बनना पड़ा था। दारोगा ने असली रामभोली को तो गिरफ्तार करवा के इस तरह मरवा डाला कि किसी को कानों-कान खबर भी न हुई और मुझे रामभोली बनकर यह काम निकालने की आज्ञा दी। लाचार मैं रामभोली बनकर नानक से मिली और उसे अपने वश में करने के बाद इन्द्रदेव जी के मकान में से वह कलमदान तथा उसके साथ और भी कई तरह के कागज नानक की मार्फत चुरा

1. देखिये चन्द्रकान्ता सन्तति, चौथा भाग, नानक का बयान।

मँगवाये। मुझे तो उस कलमदान की सूरत देखने से भी डर मालूम होता था क्योंकि मैं जानती थी कि वह कलमदान हम लोगों के खून का प्यासा और दारोगा के बड़े-बड़े भेदों से भरा हुआ है। इसके अतिरिक्त उस पर इन्दिरा की बचपन की तस्वीर भी बनी हुई थी और सुन्दर अक्षरों में इन्दिरा का नाम लिखा हुआ था. जिसके विषय में मैं उन दिनों जानती थी कि वे माँ-बेटी बड़ी बेदर्दी के साथ मारी गईं। यही सबब था कि उस कलमदान की सूरत देखते ही मुझे तरह-तरह की बातें याद आ गईं, मेरा कलेजा दहल गया और मैं डर के मारे काँपने लगी। खैर, जब मैं नानक को लिए हुए जमानिया की सरहद में पहुँची तो उसे धनपत के हवाले करके खास बाग में चली गई, अपना दुपट्टा नहर में फेंकती गई। दूसरी राह से उस तिलिस्मी कुएँ के नीचे पहुँच कर पानी का प्याला और बनावटी हाथ निकालने के बाद मायारानी से जा मिली और फिर बचा हुआ काम धनपत और दारोगा ने पूरा किया। दारोगा वाले बँगले में जो तस्वीर रक्खी हुई थी वह केवल नानक को धोखा देने के लिए थी, उसका और कोई मतलब न था, और रोहतासगढ़ के तहखाने में जो मेरी तस्वीर[1] आप लोगों ने देखी थी, वह वास्तव में दिग्विजयसिंह की बुआ ने मेरे सुभीते के लिए लटकाई थी और तहखाने की बहुत-सी बातें समझाकर बता दिया था कि 'जहाँ तू अपनी तस्वीर देखना समझ लेना कि उसके फलाँ तरफ फलाँ बात है' इत्यादि। बस, वह तस्वीर इतने ही काम के लिए लटकाई गई, थी। वह बुढ़िया बड़ी नेक थी, और उस तहखाने का हाल बनिस्बत दिग्विजयसिंह के बहुत ज्यादा जानती थी, मैं पहले भी महाराज के सामने बयान कर चुकी हूँ कि उसने मेरी मदद की थी। वह कई दफे मेरे डेरे पर आई थी और तरह-तरह की बातें समझा गई थी। मगर न तो दिग्विजयसिंह उसकी कदर करता था और न वही दिग्विजयसिंह को चाहती थी। इसके अतिरिक्त यह भी कह देना आवश्यक है कि मैं तो उस बुढ़िया की मदद से तहखाने के अन्दर चली गई थी मगर कुन्दन अर्थात् धनपत ने वहाँ जो कुछ किया वह मायारानी के दारोगा की बदौलत था। घर लौटने पर मुझे मालूम हुआ कि दारोगा वहाँ कई दफे छिपकर गया और कुन्दन से मिला था मगर उसे मेरे बारे में कुछ खबर न थी. अगर खबर होती तो मेरे और कुन्दन के बीच जुदाई न रहती। मगर मुझे इस बात का ताज्जुब जरूर है कि वापस घर पहुँचने पर भी धनपत ने वहाँ की बहुत-सी बातें मुझसे छिपा रक्खीं।

किशोरी—अच्छा, यह तो बताओ कि रोहतासगढ़ में जो तस्वीर तुमने कुन्दन को दिखाने के लिए मुझे दी थी, वह तुम्हें कहाँ से मिली थी और तुम्हें तथा कुन्दन को उसका असली हाल क्योंकर मालूम हुआ था?

लाड़िली—उन दिनों मैं यह जानने के लिए बेताब हो रही थी कि कुन्दन असल में कौन हैं। मुझे इस बात का भी शक हुआ था कि वह राजा साहब (वीरेन्द्रसिंह) की कोई ऐयारा होगी और यही शक मिटाने के लिए मैंने वह तस्वीर खुद बनाकर उसे दिखाने के लिए तुम्हें दी थी। असल में उस तस्वीर का भेद हम लोगों को मनोरमा की

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, चौथा भाग, दसवाँ बयान।

जुबानी मालूम हुआ था और मनोरमा ने इन्दिरा से उस समय सुना था जब मनोरमा को माँ समझ के वह उसके फेर में पेड़ गई थी ।[1]

किशोरी—ठीक है मगर इसमें भी कोई शक नहीं कि इन सब बखेड़ों की जड़ वही कम्बख्त दारोगा है। यदि जमानिया के राज्य में दारोगा न होता तो इन सब बातों में से एक भी न सुनाई देती और न हम लोगों की दुःखमय कहानी का कोई अंश लोगों के कहने सुनने के लिए पैदा होता। (कमलिनी से) मगर बहिन, यह तो बताओ कि इस हरामी के पिल्ले (दारोगा) का कोई वारिस या रिश्तेदार भी दुनिया में है या नहीं ?

कमलिनी—सिवाय एक के और कोई नहीं ! दुनिया का कायदा है कि जब आदमी भलाई या बुराई कुछ सीखता है तो पहले अपने घर ही से उसे आरम्भ करता है । माँ-बाप के अनुचित लाड़-प्यार और उनकी असावधानी से बुरी राह पर चलने वाले लड़के घर ही में श्रीगणेश करते हैं और तब कुछ दिन के बाद वे दुनिया में मशहूर होने योग्य होते हैं। यही बात इस हरामखोर की भी थी, इसने पहले अपने नाते-रिश्तेदार ही पर सफाई का हाथ फेरा और उन्हें जहन्नुम पहुँचाकर समय के पहले घर का मालिक बन बैठा। साधु का भेष धरना इसने लड़कपन ही से सीखा है और विशेष करके इसके इसी भेष की बदौलत लोग धोखे में भी पड़े । हमारे राजा गोपालसिंह ने भी (मुस्कुराती हुई) इसे वशिष्ठ मुनि ही समझकर अपने यहाँ रक्खा था। हाँ, इसका एक चचेरा भाई जरूर बच गया था जो इसके हत्थे नहीं चढ़ा था, क्योंकि वह खुद भी परले सिरे का बदमाश था और इसकी करतूतों को खूब समझता था जिससे लाचार होकर इसे उसकी खुशामद करनी ही पड़ी और उसे अपना साथी बनाना ही पड़ा ।

किशोरी—क्या वह मर गया ? उसका क्या नाम था ?

कमलिनी—नहीं वह मरा नहीं, मगर मरने के ही बराबर है, क्योंकि वह हमारे यहाँ कैद है । उसने अपना नाम शिखण्डी रख लिया था। तुम जानती ही हो कि जब मैं जमानिया के खास बाग के तहखाने और सुरंग की राह से दोनों कुमारों तथा बाकी कैदियों को लेकर बाहर निकल रही थी तो हाथी वाले दरवाजे पर उसने इनके (इन्द्र-जीतसिंह) के ऊपर वार किया था ।[2]

किशोरी—हाँ-हाँ, तो क्या वह वही कम्बख्त था ?

कमलिनी—हाँ वही था। उसे मैं अपना पक्षपाती समझती थी मगर बेईमान ने मुझे धोखा दिया । ईश्वर की कृपा थी कि पहले ही वार में वह उसी जगह गिरफ्तार हो गया, नहीं तो शायद मुझे धोखे में पड़कर बहुत तकलीफें उठानी पड़तीं और···

कमलिनी ने इतना कहा ही था कि उसका ध्यान सामने के जंगल की तरफ जा पड़ा। उसने देखा कि कुँअर आनन्दसिंह एक सब्ज घोड़े पर सवार सामने की तरफ से आ रहे हैं, साथ में केवल तारासिंह एक छोटे टट्टू पर सवार बातें करते आ रहे हैं, और दूसरा कोई आदमी नहीं है। साथ ही इसके कमलिनी को एक और अद्‌भुत दृश्य दिखाई दिया जिससे वह यकायक चौंक पड़ी और इसलिए उसका तथा और सभी का

1. देखिये चन्द्रकान्ता सन्तति, तीसरा भाग, दसवाँ बयान, और उन्नीसवाँ भाग, छठवाँ बयान ।
2. देखिए ,, ,, आठवाँ भाग, दूसरा बयान ।

ध्यान भी उसी तरफ जा पड़ा।

उसने देखा कि आनन्दसिंह और तारासिंह जंगल में से निकलकर कुछ ही दूर मैदान में आये थे कि यकायक एक बार पुनः पीछे की तरफ घूमे और गौर के साथ कुछ देखने लगे। कुछ ही देर बाद और भी दस-बारह नकाबपोश आदमी हाथ में तीर-कमान लिए दिखाई पड़े जो जंगल से बाहर निकलते ही इन दोनों पर फुर्ती के साथ तीर चलाने लगे। ये दोनों भी म्यान से तलवार निकालकर उन लोगों की तरफ झपटे और देखते ही देखते सब लड़ते-भिड़ते पुनः जंगल में घुसकर देखने वालों की नजरों से गायब हो गए। कमलिनी, किशोरी और कामिनी वगैरह इस घटना को देखकर घबरा गयीं, सभी की इच्छानुसार कमला दौड़ी हुई गई और एक लौंडी को इस मामले की खबर करने के लिए नीचे कुँअर इन्द्रजीतसिंह के पास भेजा।

8

नानक इस बात को सोच रहा था कि मैं पहले किस पर वार करूँ? अगर पहले शान्ता पर वार करूँ तो आहट पाकर भूतनाथ जाग जायगा और मुझे गिरफ्तार कर लेगा क्योंकि मैं अकेला किसी तरह उसका मुकाबला नहीं कर सकता अतएव पहले भूतनाथ ही का काम तमाम करना चाहिए। अगर इसकी आहट पाकर शान्ता जाग भी जायगी तो कोई चिन्ता नहीं, मैं उसे साँस लेने की भी मोहलत न दूंगा, वह औरत की जात मेरे मुकाबले में क्या कर सकती है। मगर ऐसा करने के लिए यह जानने की जरूरत है कि इन दोनों में शान्ता कौन है और भूतनाथ कौन।

थोड़ी ही देर के अन्दर ऐसी बहुत-सी बातें नानक के दिमाग में दौड़ गईं और उन दोनों में भूतनाथ कौन है इसका पता न लगा सकने के कारण लाचार होकर उसने यह निश्चय किया कि इन दोनों ही को बेहोश करके यहाँ से घर ले चलना चाहिए। ऐसा करने से मेरी माँ बहुत ही प्रसन्न होगी।

नानक ने अपने बटुए में से बहुत ही तेज बेहोशी की दवा निकाली और उन दोनों के मुँह पर चादर के ऊपर ही छिड़ककर उनके बेहोश होने का इन्तजार करने लगा।

थोड़ी ही देर में उन दोनों ने हाथ-पैर हिलाये जिससे नानक समझ गया कि अब इन पर बेहोशी का असर हो गया, अतः उसने दोनों के ऊपर से चादर हटा दी और तभी देखा कि इन दोनों में भूतनाथ नहीं है बल्कि ये दोनों औरतें ही हैं जिनमें एक भूत-नाथ की स्त्री शान्ता है। उस दूसरी औरत को नानक पहचानता न था।

नानक ने फिर एक दफे बेहोशी की दवा सुंघा कर शान्ता को अच्छी तरह बेहोश किया और चारपाई पर से उठाकर बहुत हिफाजत और होशियारी के साथ खेमे के बाहर निकाल लाया जहाँ उसने अपने एक साथी को मौजूद पाया। दोनों ने मिलकर उसकी गठरी बाँधी और फुर्ती से लश्कर के बाहर निकाल ले गये।

शान्ता को पा जाने से नानक बहुत ही खुश था और सोचता जाता था कि इसे पाकर माँ बहुत ही प्रसन्न होगी और हद से ज्यादा मेरी तारीफ करेगी, मैं इसे सीधे अपने घर ले जाऊँगा और जब दूसरी दफे लौटूँगा तो भूतनाथ पर कब्जा करूँगा। इसी तरह धीरे-धीरे अपने सब दुश्मनों को जहन्नुम भेज दूँगा।

कोस-भर निकल जाने के बाद जब नानक एक संकेत पर पहुँचा तो उसके और साथियों से भी मुलाकात हुई जो कसे-कसाये कई घोड़ों के साथ उसका इन्तजार कर रहे थे।

एक घोड़े पर सवार होने के बाद नानक ने शान्ता को अपने आगे रख लिया, उसके साथी लोग भी घोड़ों पर सवार हुए, और सभी ने पूरब का रास्ता लिया।

दूसरे दिन संध्या के समय नानक अपने घर पहुँचा। रास्ते में उसने और उसके साथियों ने कई दफे भोजन किया मगर शान्ता की कुछ खबर न ली, बल्कि जब इस बात का खयाल हुआ कि अब उसकी बेहोशी उतारना चाहती है तब पुनः दवा सुँघाकर उसकी बेहोशी मजबूत कर दी गई।

नानक को देखकर उसकी माँ बहुत प्रसन्न हुई और जब उसे यह मालूम हुआ कि उसका सपूत शान्ता को गिरफ्तार कर लाया है तब तो उसकी खुशी का कोई ठिकाना ही न रहा। उसने नानक की बहुत ही आवभगत की और बहुत तारीफ करने के बाद बोली, "इससे बदला लेने में अब क्षण-भर की भी देर न करनी चाहिए, इसे तुरन्त खम्भे के साथ बाँधकर होश में ले आओ और पहले जूतियों से खूब अच्छी तरह खबर लो, फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। मगर इसके मुँह में खूब अच्छी तरह कपड़ा ठूँस दो जिससे कुछ बोल न सके और हम लोगों को गालियाँ न दे।"

नानक को भी यह बात पसन्द आई और उसने ऐसा ही किया। शान्ता के मुँह में कपड़ा ठूँस दिया गया और वह दालान में एक खम्भे के साथ बाँधकर होश में लाई गई। होश में आते ही अपने को ऐसी अवस्था में देखकर वह बहुत ही घबराई और जब उद्योग करने पर भी कुछ बोल न सकी तो आँखों से आँसू की धारा बहाने लगी।

नानक ने उसकी दशा पर कुछ भी ध्यान न दिया। अपनी माँ की आज्ञा पाकर उसने शान्ता को जूते से मारना शुरू किया और यहाँ तक मारा कि अन्त में वह बेहोश होकर झुक गई। उस समय नानक की माँ कागज का एक लपेटा हुआ पुर्जा नानक के आगे फेंककर यह कहती हुई घर के बाहर निकल गई कि "इसे अच्छी तरह पढ़ ले, तब तक मैं लौटकर आती हूँ।"

उसकी कार्रवाई ने नानक को ताज्जुब में डाल दिया। उसने जमीन पर से पुर्जा वह उठा लिया और चिराग के सामने ले जाकर पढ़ा, यह लिखा हुआ था—

"भूतनाथ के साथ ऐयारी करना या उसका मुकाबला करना नानक ऐसे नौसिखे लौंडों का काम नहीं है। तू समझता होगा कि मैंने शान्ता को गिरफ्तार कर लिया, मगर खूब समझ रख कि वह कभी तेरे पंजे में नहीं आ सकती। जिस औरत को तू जूतियों से मार रहा है, वह शान्ता नहीं। पानी से इसका चेहरा धो डाल और भूतनाथ की कारीगरी का तमाशा देख! अब अगर अपनी जान तुझे प्यारी हो तो खबरदार! भूतनाथ का पीछा

कभी न करना।"

पुर्जा पढ़ने ही नानक के होश उड़ गये। झटपट पानी का लोटा उठा लिया और मुँह में ठूँसा हुआ कपड़ा निकालकर शान्ता का चेहरा धोने लगा, तब तक वह भी होश में आ गई। चेहरा साफ होने पर नानक ने देखा कि यह तो उसकी असली माँ 'रामदेई' है। उसने होश में आते ही नानक से कहा, "क्यों बेटा, तुमने मेरे ही साथ ऐसा सलूक किया!"

नानक के ताज्जुब की कोई हद न रही। वह घबराहट के साथ अपनी माँ का मुँह देखने लगा और ऐसा परेशान हुआ कि आधी घड़ी तक उसमें कुछ बोलने की शक्ति न रही। इस बीच में रामदेई ने उसे तरह-तरह की बातें सुनाईं जिन्हें वह सिर नीचा किए हुए चुपचाप सुनता रहा। जब उसकी तबीयत कुछ ठिकाने हुई तब उसने सोचा कि पहले उस रामदेई को पकड़ना चाहिए जो मेरे सामने चिट्ठी फेंककर मकान के बाहर निकल गई है, परन्तु यह उसकी सामर्थ्य के बाहर था, क्योंकि उसे घर से बाहर गए हुए देर हो चुकी थी, अतः उसने सोचा कि अब वह किसी तरह नहीं पकड़ी जा सकती।

नानक ने अपनी माँ के हाथ-पैर खोल डाले और कहा, "मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि यह क्या हुआ, तुम वहाँ कैसे जा पहुँचीं, और तुम्हारी शक्ल में यहाँ रहने वाली कौन थी या क्योंकर आई!"

रामदेई—मैं इसका जवाब कुछ भी नहीं दे सकती और न मुझे कुछ मालूम ही है। मैं तुम्हारे चले जाने के बाद इसी घर में थी, इसी घर में बेहोश हुई और होश आने पर अपने को इसी घर में देखती हूँ, अब तुम्हीं बयान करो कि क्या हुआ और तुमने मेरे साथ ऐसा सलूक क्यों किया?

नानक ने ताज्जुब के साथ अपना किस्सा पूरा-पूरा बयान किया और अन्त में कहा, "अब तुम ही बताओ कि मैंने इसमें क्या भूल की?"

9

दिन का समय है और दोपहर ढल चुकी है। महाराज सुरेन्द्रसिंह अभी-अभी भोजन करके आये हैं और अपने कमरे में पलंग पर लेटे कर पान चबाते हुए अपने दोस्तों तथा लड़कों से हँसी-खुशी की बातें कर रहे हैं जोकि महाराज से घण्टे-भर पहले ही भोजन इत्यादि से छुट्टी पा चुके हैं।

महाराज के अतिरिक्त इस समय इस कमरे में राजा वीरेन्द्रसिंह, कुँअर इन्द्रजीतसिंह, आनन्दसिंह, राजा गोपालसिंह, जीतसिंह, देवीसिंह, पन्नालाल, रामनारायण, पण्डित बद्रीनाथ, चुन्नीलाल, जगन्नाथ ज्योतिषी, भैरोंसिंह, इन्द्रदेव और गोपालसिंह के दोस्त भरतसिंह भी बैठे हुए हैं।

वीरेन्द्रसिंह—इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो तिलिस्म मैंने तोड़ा था, वह इस तिलिस्म के सामने रुपये में एक पैसा भी नहीं है। साथ ही इसके जमानिया राज्य में जैसे-जैसे महापुरुष (दारोगा की तरह) रह चुके हैं तथा वहाँ जैसी-जैसी घटनाएँ हो गई हैं उनकी

नजीर भी कभी सुनने में न आयेगी।

गोपालसिंह—बखेड़ों का सबब भी उसी तिलिस्म को समझना चाहिए, उसी का आनन्द लूटने के लिए लोगों ने ऐसे बखेड़े मचाए और उसी की बदौलत लोगों की ताकत और हैसियत भी बढ़ी।

जीतसिंह—बेशक, यही बात है। जैसे-जैसे तिलिस्म के भेद खुलते गये तैसे-तैसे पाप और लोगों की बदकिस्मती का जमाना भी तरक्की करता गया।

सुरेन्द्रसिंह—हमें तो कम्बखत दारोगा के कामों पर आश्चर्य होता है, न मालूम किस सुख के लिए उस कम्बखत ने ऐसे-ऐसे कुकर्म किए!

भरतसिंह—(हाथ जोड़कर) मैं तो समझता हूँ कि दारोगा के कुकर्मों का हाल महाराज ने अभी बिल्कुल नहीं सुना। उसकी कुछ पूर्ति तब होगी, जब हम लोग अपना किस्सा बयान कर चुकेंगे।

सुरेन्द्रसिंह—ठीक है, हमने भी आज आप ही का किस्सा सुनने की नीयत से आराम नहीं किया।

भरतसिंह—मैं अपनी दुर्दशा बयान करने के लिए तैयार हूँ।

जीतसिंह—अच्छा, तो अब आप शुरू करें।

भरतसिंह—जो आज्ञा।

इतना कहकर भरतसिंह ने इस तरह अपना हाल बयान करना शुरू किया—

भरतसिंह—मैं जमानिया का रहने वाला और एक जमींदार का लड़का हूँ। मुझे इस बात का सौभाग्य प्राप्त था कि राजा गोपालसिंह मुझे अपना मित्र समझते थे, यहाँ तक कि भरी मजलिस में भी मित्र कहकर मुझे सम्बोधन करते थे, और घर में भी किसी तरह का पर्दा नहीं रखते थे। यही सबब था कि वहाँ के कर्मचारी लोग तथा अच्छे-अच्छे रईस मुझसे डरते और मेरी इज्जत करते थे परन्तु दारोगा को यह बात पसन्द न थी।

केवल राजा गोपालसिंह ही नहीं इनके पिता भी मुझे अपने लड़के की तरह ही मानते और प्यार करते थे, विशेष करके इसलिए कि हम दोनों मित्रों की चाल-चलन में किसी तरह की बुराई दिखाई नहीं देती थी।

जमानिया में जो बेईमान और दुष्ट लोगों की एक गुप्त कमेटी थी उसका हाल आप लोग जान ही चुके हैं अतएव उसके विषय में विस्तार के साथ कुछ कहना वृथा ही है, हाँ, जरूरत पड़ने पर उसके विषय में इशारा मात्र कर देने से काम चल जायेगा।

रियासतों में मामूली तौर पर तरह-तरह की घटनाएँ हुआ ही करती हैं, इसलिए राजा गोपालसिंह को गद्दी मिलने के पहले जो कुछ मुझ पर बीत चुकी है, उसे मामूली समझकर मैं छोड़ देता हूँ और उस समय से अपना हाल बयान करता हूँ जब इनकी शादी हो चुकी थी। इस शादी में जो कुछ चालबाजी हुई थी उसका हाल आप सुन ही चुके हैं।

जमानिया की वह गुप्त कमेटी यद्यपि भूतनाथ की बदौलत टूट चुकी थी, मगर उसकी जड़ नहीं कटी थी, क्योंकि कम्बखत दारोगा हर तरह से साफ बच रहा था और कमेटी का कमजोर दफ्तर अभी भी उसके कब्जे में था।

गोपालसिंह की शादी हो जाने के बहुत दिन बाद एक दिन मेरे एक नौकर ने रात

के समय जब वह मेरे पैरों में तेल लगा रहा था मुझसे कहा कि "राजा गोपालसिंह की शादी असली लक्ष्मीदेवी के साथ नहीं बल्कि किसी दूसरी ही औरत के साथ हुई है। यह काम दारोगा ने रिश्वत लेकर किया है और इस काम में सुविधा करने के लिए गोपालसिंहजी के पिता को भी उसी ने मारा है।"

सुनने के साथ ही मैं चौंक पड़ा, मेरे ताज्जुब का कोई ठिकाना न रहा, मैंने उससे तरह-तरह के सवाल किए जिनका जवाब उसने ऐसा तो न दिया जिससे मेरी दिलजमई हो जाती, मगर इस बात पर बहुत जोर दिया कि "जो कुछ मैं कह चुका हूँ, वह बहुत ठीक है।"

मेरे जी में तो यही आया कि इसी समय उठकर राजा गोपालसिंह के पास जाऊँ, और सब हाल कह दूँ, परन्तु यह सोचकर कि किसी काम में जल्दी न करनी चाहिए मैं चुप रह गया और सोचने लगा कि यह कार्रवाई क्योंकर हुई और इसका ठीक-ठीक पता किस तरह लग सकता है?

रात-भर मुझे नींद न आई और इन्हीं बातों को सोचता रह गया। सवेरा होने पर स्नान-संध्या इत्यादि से छुट्टी पाकर मैं राजा साहब से मिलने के लिए गया, मालूम हुआ कि राजा साहब अभी महल से बाहर नहीं निकले हैं। मैं सीधे महल में चला गया। उस समय गोपालसिंहजी संध्या कर रहे थे और इनसे थोड़ी दूर पर सामने बैठी मायारानी फूलों का गजरा तैयार कर रही थी। उसने मुझे देखते ही कहा, "अहा, आज क्या बात है! मालूम होता है मेरे लिए आप कोई अनूठी चीज लाए हैं।"

इसके जवाब में मैं हँसकर चुप हो गया और इशारा पाकर गोपालसिंहजी के पास एक आसन पर बैठ गया। जब वे संध्योपासना से छुट्टी पा चुके तब मुझसे बातचीत होने लगी। मैं चाहता था कि मायारानी वहाँ से उठ जाये तब मैं अपना मतलब बयान करूँ, पर वह वहाँ से उठती न थी और चाहती थी कि मैं जो कुछ बयान करूँ, उसे वह भी सुन ले। यह सम्भव था कि मैं मामूली बातें करके मौका टाल देता और वहाँ से उठ खड़ा होता मगर वह हो न सका, क्योंकि उन दोनों ही को इस बात का विश्वास हो गया था कि मैं जरूर कोई अनूठी बात कहने के लिए आया हूँ। लाचार गोपालसिंहजी से इशारे में कह देना पड़ा कि 'मैं एकान्त में केवल आप ही से कुछ कहना चाहता हूँ।' जब गोपालसिंह ने किसी काम के बहाने से उसे अपने सामने से उठाया तब वह भी मेरा मतलब समझ गई और मुँह बनाकर उठ खड़ी हुई।

हम दोनों यही समझते थे कि मायारानी वहाँ से चली गई, मगर उस कम्बख्त ने हम दोनों की बातें सुन लीं, क्योंकि उसी दिन से मेरी कम्बख्ती का जमाना शुरू हो गया। मैं ठीक नहीं कह सकता कि किस ढंग से उसने हमारी बातें सुनीं। जिस जगह हम दोनों बैठे थे, उसके पास ही दीवार में एक छोटी-सी खिड़की पड़ती थी, शायद उसी जगह पिछवाड़े की तरफ खड़ी होकर उसने मेरी बातें सुन ली हों तो कोई ताज्जुब नहीं।

मैंने जो कुछ अपने नौकर से सुना था, सब तो नहीं कहा, केवल इतना कहा कि "आपके पिता को दारोगा ने ही मारा है और लक्ष्मीदेवी की इस शादी में भी उसने कुछ गड़बड़ किया है, गुप्त रीति पर इसकी जाँच करनी चाहिए।" मगर अपने नौकर का नाम

नहीं बताया, क्योंकि मैं उसे बहुत चाहता था और वैसा ही उसकी हिफाजत का भी खयाल रखता था। इसमें कोई शक नहीं कि मेरा वह नौकर बहुत ही होशियार और बुद्धिमान था, बल्कि इस योग्य था कि राज्य का कोई भारी काम उसके सुपुर्द किया जाता, परन्तु वह जाति का कहार था, इसलिए किसी बड़े मर्तबे पर न पहुँच सका।

गोपालसिंहजी ने मेरी बातें ध्यान देकर सुनीं, मगर इन्हें उन बातों का विश्वास न हुआ, क्योंकि ये मायारानी को पतिव्रताओं की नाक और दारोगा को सच्चाई तथा ईमानदारी का पुतला समझते थे। मैंने इन्हें अपनी तरफ से बहुत-कुछ समझाया और कहा कि "यह बात चाहे झूठ हो, मगर आप दारोगा से हरदम होशियार रहा कीजिए, और उसके कामों की जाँच की निगाह से देखा कीजिए, मगर अफसोस, इन्होंने मेरी बातों पर कुछ ध्यान न दिया और इसी से मेरे साथ ही अपने को भी बर्बाद कर लिया।

उसके बाद भी कई दिनों तक मैं इन्हें समझाता रहा और ये भी हाँ में हाँ मिलाते रहे जिससे यह विश्वास होता था कि कुछ उद्योग करने से ये समझ जायेंगे, मगर ऐसा कुछ न हुआ। एक दिन मेरे उसी नौकर ने जिसका नाम हरदीन था मुझसे फिर एकान्त में कहा कि "अब आप राजा साहब को समझाना-बुझाना छोड़ दीजिए, मुझे निश्चय हो गया कि उनकी बद-किस्मती के दिन आ गये हैं और वे आपकी बातों पर भी कुछ ध्यान न देंगे। उन्होंने बहुत बुरा किया कि आपकी बातें मायारानी और दारोगा पर प्रकट कर दीं। उनको समझाने के बदले अब आप अपनी जान बचाने की फिक्र कीजिए और अपने को हर वक्त आफत से घिरा हुआ समझिए। शुक्र है कि आपने सब बातें नहीं कह दीं, नहीं तो और भी गजब हो जाता···।"

औरों को चाहे कैसा ही कुछ खयाल हो, मगर मैं अपने खिदमतगार हरदीन की बातों पर विश्वास करता था और उसे अपना खैरख्वाह समझता था। उसकी बातें सुनकर मुझे गोपालसिंह पर बे-हिसाब क्रोध चढ़ आया और उसी दिन से मैंने इन्हें समझाना-बुझाना छोड़ दिया, मगर इनकी मुहब्बत ने मेरा साथ न छोड़ा।

मैंने हरदीन से पूछा कि "ये सब बातें तुझे क्योंकर मालूम हुईं ? और होती हैं ?" मगर उसने ठीक-ठीक न बताया, बहुत जिद करने पर कहा कि कुछ दिन और सब्र कीजिए मैं इसका भेद भी आपको बता दूँगा।

दूसरे दिन, जब सूरज अस्त होने में दो घण्टे की देर थी, मैं अकेला अपने नजर-बाग में टहल रहा था और इस सोच में पड़ा हुआ था कि राजा गोपालसिंह का भ्रम मिटाने के लिए अब क्या बन्दोबस्त करना चाहिए। उसी समय रघुबरसिंह मेरे पास आया और साहब-सलामत के बाद इधर-उधर की बातें करने लगा। बात-ही-बात में उसने कहा कि "आज मैंने एक घोड़ा निहायत उम्दा खरीद लिया है, मगर अभी तक उसका दाम नहीं दिया है, आप उस पर सवारी करके देखिए, अगर आप भी पसन्द करें, तो मैं उसका दाम चुका दूँ। इस समय मैं उसे अपने साथ लेता आया हूँ। आप उस पर सवार हो लें और मैं अपने पुराने घोड़े पर सवार होकर आपके साथ चलता हूँ, चलिये दो-चार कोस का चक्कर लगा आयें···।"

मुझे घोड़े का बहुत ही शौक था। रघुबरसिंह की बातें सुनकर मैं खुश हो गया

और यह सोचकर कि अगर जानवर उम्दा होगा तो मैं खुद उसका दाम देकर अपने यहा रख लूँगा मैंने जवाब दिया "चलो देखें, कैसा घोड़ा है, २घुबरसिंह ने कहा, चलिये, अगर आपको पसन्द आ जाये तो आप ही रख लीजियेगा।"

उन दिनों मैं रघुबरसिंह को भला आदमी अशरीफ और अपना दोस्त समझता था, मुझे इस बात की कुछ भी खबर न थी कि यह परले सिरे का वेईमान और शैतान का भाई है, उसी तरह दारोगा को भी मैं इतना बुरा नहीं समझता था और राजा गोपालसिंह की तरह मुझे भी विश्वास था कि जमानिया की उस गुप्त कमेटी से इन दोनों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मगर हरदीन ने मेरी आँखें खोल दीं और साबित कर दिया कि जो कुछ हम लोग सोचे हुए थे वह हमारी भूल थी।

खैर, मैं रघुबरसिंह के साथ ही बाग के बाहर निकला और दरवाजे पर आया, कसे-कसाये दो घोड़े दिखे, जिनमें एक तो खास रघुबरसिंह का घोड़ा था और दूसरा एक नया और बहुत ही शानदार वही घोड़ा था, जिसकी रघुबरसिंह ने तारीफ की थी।

मैं उस घोड़े पर सवार होने वाला ही था कि हरदीन दौड़ा-दौड़ा बद-हवास मेरे पास आया और बोला, "घर में बहूजी (मेरी स्त्री) को न मालूम क्या हो गया कि गिरकर बेहोश हो गई हैं और उनके मुँह से खून निकल रहा है। जरा चलकर देख लीजिए।"

हरदीन की बात सुनकर मैं तरद्दुद में पड़ गया और उसे साथ लेकर घर के अन्दर गया, क्योंकि हरदीन बराबर जनाने में आया-जाया करता था और उसके लिए किसी तरह का पर्दा न था। जब घर की दूसरी ड्योढ़ी मैंने लाँघी तब वहाँ एकान्त में हरदीन ने मुझे रोका और कहा, "जो कुछ मैंने आपको खबर दी वह बिल्कुल झूठ है, बहूजी बहुत अच्छी तरह हैं।"

मैं—तो तुमने ऐसा क्यों किया ?

हरदीन—इसीलिए कि रघुबरसिंह के साथ जाने से आपको रोकूँ।

मैं—सो क्यों ?

हरदीन—इसीलिए कि वह आपको धोखा देकर ले जा रहा है और आपकी जान लेना चाहता है। मैं उसके सामने आपको रोक नहीं सकता था, अगर रोकता तो उसे मेरी तरफदारी मालूम हो जाती और मैं जान से मारा जाता और फिर आपको इन दुष्टों की चालबाजियों से बचाने वाला कोई न रहता। यद्यपि मुझे अपनी जान आपसे बढ़कर प्यारी नहीं है, तथापि आपकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है और यह बात आपके आधीन है, यदि आप मेरा भेद खोल देंगे, तो फिर मेरा इस दुनिया में रहना मुश्किल है।

मैं—(ताज्जुब के साथ) तुम आज यह क्या कह रहे हो ? रघुबरसिंह तो हमारा गहरा दोस्त है !

हरदीन—इस दोस्ती पर आप भरोसा न करें, और इस समय इस मौके को टाल जायें, रात को मैं सब बातें आपको अच्छी तरह समझा दूंगा, या यदि आपको मेरी बातों पर विश्वास न हो तो जाइए, मगर एक तमंचा कमर में छिपाकर लेते जाइए, और पश्चिम की तरफ कदापि न जाकर पूरब की तरफ को जाइए—साथ ही हर तरह

से होशियार रहिए। इतनी होशियारी करने पर आपको मालूम हो जायेगा कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह सच है या झूठ।

हरदीन की बातों ने मुझे चक्कर में डाल दिया। कुछ सोचने के बाद मैंने कहा, "शाबाश हरदीन, तुमने बेशक इस समय मेरी जान बचाई, मगर खैर, तुम चिन्ता न करो और मुझे इस दुष्ट के साथ जाने दो, अब मैं इसके पंजे में न फँसूँगा और जैसा तुमने कहा वैसा ही करूँगा।"

इसके बाद मैं चुपचाप अपने कमरे में चला गया और एक छोटा-सा दोनाली तमंचा भरकर अपनी कमर में छिपा लेने के बाद बाहर निकला। मुझे देखते ही रघुबर-सिंह ने पूछा, "कहिए, क्या हाल है ?" मैंने जवाब दिया, "अब तो होश में आ गई हैं, वैद्यजी को बुला लाने के लिए कह दिया है, तब तक हम लोग भी घूम आयेंगे।"

इतना कहकर मैं उस घोड़े पर सवार हो गया, रघुवरसिंह भी अपने घोड़े पर सवार हुआ और मेरे साथ चला। शहर के बाहर निकलने के बाद मैंने पूरब की तरफ घोड़े को घुमाया, उसी समय रघुबरसिंह ने टोका और कहा, "उधर नहीं पश्चिम की तरफ चलिए, इधर का मैदान बहुत अच्छा और सुहावना है।"

मैं—इधर पूरब की तरफ भी तो कुछ बुरा नहीं है, मैं इधर ही चलूंगा।

रघुबरसिंह—नहीं-नहीं, आप पश्चिम ही की तरफ चलिए, उधर एक काम और निकलेगा। दारोगा साहब भी इस घोड़े की चाल देखना चाहते थे, मैंने कह दिया था कि आप लोग अपने घोड़े पर सवार होकर जाइये और फलाँ जगह ठहरियेगा, हम लोग घूमते हुए उसी तरफ आयेंगे, वे जरूर वहाँ गये होंगे और हम लोगों का इन्तजार कर रहे होंगे।

मैं—ऐसा ही शौक था तो दारोगा साहब भी हमारे यहाँ आ जाते और हम लोगों के साथ चलते !

रघुबरसिंह—खैर, अब तो जो हो गया सो हो गया, अब उनका खयाल जरूर करना चाहिए।

मैं—मुझे भी पूरब की तरफ जाना बहुत जरूरी है, क्योंकि एक आदमी से मिलने का वादा कर चुका हूँ।

इसी तौर पर मेरे और उसके बीच बहुत देर तक हुज्जत होती रही। मैं पूरब की तरफ जाना चाहता था और वह पश्चिम की तरफ जाने के लिए जोर देता रहा, नतीजा यह निकला कि न पूरब ही गये, न पश्चिम ही गये, बल्कि लौटकर सीधे घर चले आये और यह बात रघुबरसिंह को बहुत ही बुरी मालूम हुई, उसने मुझसे मुँह फुला लिया और कुढ़ता हुआ अपने घर चला गया।

मेरा रहा-सहा शक भी जाता रहा और हरदीन की बातों पर मुझे पूरा-पूरा विश्वास हो गया, मगर मेरे दिल में इस बात की उलझन हद से ज्यादा पैदा हुई कि हरदीन को इन सब बातों की खबर क्योंकर लग जाती है। आखिर रात के समय जब एकान्त हुआ तब मुझसे और हरदीन से इस तरह की बातें होने लगी—

मैं—हरदीन, तुम्हारी बात ठीक निकली, उसने पश्चिम तरफ ले जाने के लिए

बहुत जोर मारा, मगर मैंने उसकी एक न सुनी।

हरदीन—आपने यह बहुत अच्छा किया, नहीं तो इस समय बड़ा ही अन्धेर हो गया होता।

मैं—खैर, यह तो बताओ कि यकायक वह मेरी जान का दुश्मन क्यों बन बैठा? वह तो मेरी दोस्ती का दम भरता था!

हरदीन – इसका सबब वही लक्ष्मीदेवी वाला भेद है। मैं अपनी भूल पर अफसोस करता हूँ कि मुझसे चूक हो गई जो मैंने वह भेद आपसे खोल दिया। मैंने तो राजा गोपालसिंहजी का भला करना चाहा था मगर उन्होंने नादानी करके मामला ही बिगाड़ दिया। उन्होंने जो कुछ आपसे सुना था लक्ष्मीदेवी से कहकर दारोगा और रघुबर को आपका दुश्मन बना दिया, क्योंकि इन्हीं दोनों की बदौलत वह इस दर्जे को पहुँची, इन्हीं दोनों की बदौलत हमारे महाराज (गोपालसिंह के पिता) मारे गये और इन्हीं दोनों ने लक्ष्मीदेवी को ही नहीं बल्कि उसके घर भर को बर्बाद कर दिया।

मैं—इस समय तो तुम बड़े ही ताज्जुब की बातें सुना रहे हो!

हरदीन—मगर इन बातों को आप अपने ही दिल में रखकर जमाने की चाल के साथ काम करें नहीं तो आपको पछताना पड़ेगा, यद्यपि मैं यह कदापि न कहूँगा कि आप राजा गोपालसिंह का ध्यान छोड़ दें और उन्हें डूबने दें क्योंकि वह आपके दोस्त हैं।

मैं—जैसा तुम चाहते हो, मैं वैसा ही करूँगा। अच्छा, पहले यह बताओ कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह पर क्या बीती?

हरदीन—उन दोनों को दारोगा ने अपने पंजे में फँसा कर कहीं कैद कर दिया है इतना तो मुझे मालूम है मगर इसके बाद का हाल मैं कुछ भी नहीं जानता, न मालूम वे मार डाले गये या अभी तक कहीं कैद हैं। हाँ, उस गदाधरसिंह को इसका हाल शायद मालूम होगा जो रणधीरसिंहजी का ऐयार है और जिसने नानक की माँ को धोखा देने के लिए कुछ दिन तक अपना नाम रघुबरसिंह रख लिया था तथा जिसकी बदौलत यहाँ की गुप्त कुमेटी का भण्डा फूटा है। उसने इस रघुबीरसिंह और दारोगा को खूब ही छकाया है। लक्ष्मीदेवी की जगह मुन्दर की शादी करा देने की बाबत इनके और हेलासिंह के बीच में जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसकी नकल भी गदाधरसिंह (रणधीरसिंह के ऐयार) के पास मौजूद है जो कि उसने समय पर काम देने के लिए असल चिट्ठियों से अपने हाथ से नकल की थी। अफसोस, उसने रुपये की लालच में पड़ कर रघुबरसिंह और दारोगा को छोड़ दिया और इस बात को छिपा रक्खा कि यही दोनों उस गुप्त कमेटी के मुखिया हैं। इस पाप का फल गदाधरसिंह को जरूर भोगना पड़ेगा, ताज्जु नहीं कि एक दिन उन चिट्ठियों की नकल से उसी को दुःख उठाना पड़े और वे चिट्ठियां उसी के लिए काल बन जायँ।

इस समय मुझे हरदीन की वे बातें अच्छी तरह याद पड़ रही हैं। मैं देखता हूँ कि जो कुछ उसने कहा था सच उतरा। उन चिट्ठियों की नकल ने खुद भूतनाथ का गला दबा दिया जो उन दिनों गदाधरसिंह के नाम से मशहूर हो रहा था! भूतनाथ का हाल मुझे अच्छी तरह मालूम है और इधर जो कुछ हो चुका है वह सब भी मैं सुन चुका

हूँ मगर इतना मैं जरूर कहूँगा कि भूतनाथ के मुकदमे में तेजसिंहजी ने बहुत बड़ी गलती की गलती तो सभी ने की मगर तेजसिंहजी को ऐयारों का सरताज मानकर मैं सबके पहले इन्हीं का नाम लूँगा। इन्होंने जब लक्ष्मीदेवी कमलिनी और लाड़िली इत्यादि के सामने वह कागज का मुट्ठा खोला था और चिट्ठियों को पढ़कर भूतनाथ पर इलजाम लगाया था कि "बेशक ये चिट्ठियाँ भूतनाथ के हाथ की लिखी हुई हैं।" तब इतना क्यों नहीं सोचा कि भूतनाथ की चिट्ठियों के जवाब में हेलासिंह ने जो चिट्ठियाँ भेजी हैं, वे भी तो भूतनाथ ही के हाथों की लिखी हुई मालूम पड़ती हैं, तो क्या अपनी चिट्ठियों का जवाब भी भूतनाथ अपने ही हाथ से लिखा करता था?"

यहाँ तक कहकर भरतसिंह चुप हो रहे और तेजसिंह की तरफ देखने लगे। तेजसिंह ने कहा, "आपका कहना बहुत ही ठीक है, बेशक उस समय मुझसे यह बड़ी भूल हो गई। उनमें की एक ही चिट्ठी पढ़कर क्रोध के मारे हम लोग ऐसे पागल हो गए कि इस बात पर कुछ भी ध्यान न दे सके। बहुत दिनों के बाद जब देवीसिंह ने यह बात सुझाई, तब हम लोगों को बहुत अफसोस ही हुआ और तब से हम लोगों का खयाल भी बदल गया।"

भरतसिंह ने कहा, "तेजसिंहजी, इस दुनिया में बड़े-बड़े चालाकों और होशियारों से यहाँ तक कि स्वयं विधाता ही से भूल हो गई है तो फिर हम लोगों की क्या बात है? मगर मजा तो यह कि बड़ों की भूल कहने-सुनने में नहीं आती, इसीलिए आपकी भूल पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

को कहि सके बड़ेन सों लखे बड़े की भूल।
दीन्हें दई गुलाब के, इन डारन ये फूल।।

अतः अब मैं पुनः अपनी कहानी शुरू करता हूँ।

इसके बाद भरतसिंह ने फिर इस तरह कहना शुरू किया—

भरतसिंह—मैंने हरदीन से कहा कि अगर यह बात है तो गदाधरसिंह से मुलाकात करनी चाहिए, मगर वह मुझसे अपने भेद की बातें क्यों कहने लगा? इसके अतिरिक्त वह यहाँ रहता भी नहीं है कभी-कभी आ जाता है। साथ ही इसके यह जानना भी कठिन है कि वह कब आया और कब चला गया।

हरदीन—ठीक है, मगर मैं आपसे उनकी मुलाकात करा सकता हूँ। आशा है कि वे मेरी बात मान लेंगे और आपको असल हाल भी बता देंगे। कल वह जमानिया में आने वाले हैं।

मैं—मगर मुझसे और उससे तो किसी तरह की मुलाकात नहीं है। वह मुझ पर क्यों भरोसा करेगा?

हरदीन—कोई चिन्ता नहीं, मैं आपसे उनकी मुलाकात करा दूँगा।

हरदीन की इस बात ने मुझे और भी ताज्जुब में डाल दिया। मैं सोचने लगा कि इसमें और गदाधरसिंह (भूतनाथ) में ऐसी गहरी जान-पहचान क्यों कर हो गई और वह इस पर क्यों भरोसा करता है?

भरतसिंह ने अपना किस्सा यहाँ तक बयान किया था कि उनके काम में विघ्न

पड़ गया अर्थात् उसी समय एक चोबदार ने आकर इत्तिला दी कि 'भूतनाथ हाजिर हैं।' इस खबर को सुनते ही सब कोई खुश हो गये और भरतसिंह ने भी कहा, "अब मेरे किस्से में विशेष आनन्द आवेगा।"

महाराज ने भूतनाथ को हाजिर करने की आज्ञा दी और भूतनाथ ने कमरे के अन्दर पहुँचकर सभी को सलाम किया।

तेजसिंह—(भूतनाथ से) कहो भूतनाथ, कुशल तो है ? आज कई तो दिनों पर तुम्हारी सूरत दिखाई दी !

भूतनाथ—जी हाँ ईश्वर की कृपा से सब कुशल है, जितने दिन की छुट्टी लेकर गया था, उसके पहले ही हाजिर हो गया हूँ।

तेजसिंह—सो तो ठीक है मगर अपने सपूत लडके का तो कुछ हाल कहो, कैसी निपटी ?

भूतनाथ—निपटी क्या आपकी आज्ञा पालन की, नानक को मैंने किसी तरह की तकलीफ नहीं दी मगर सजा बहुत ही मजेदार और चटपटी दे दी गई !

देवीसिंह—(हँसते हुए) सो क्या ?

भूतनाथ—मैंने उससे एक ऐसी दिल्लगी की कि वह भी खुश हो गया होगा। अगर बिल्कुल जानवर न होगा तो अब हम लोगों की तरफ कभी मुँह न करेगा बात बिल्कुल मामूली थी, जब वह यहाँ आकर मेरी फिक्र में डूबा तो घर की हिफाजत का बन्दोबस्त करके बाद कुछ शागिर्दों को साथ लेकर मैं उसके मकान पर पहुंच उसकी माँ को उड़ा लाया मगर उसकी जगह अपने एक शागिर्द को रामदेई बनाकर छोड़ आया। यहाँ उसे शान्ता बनाकर अपने खेमे में जो इसी काम के लिए खड़ा किया गया था, एक लौंडी के साथ सुला दिया और खुद तमाशा देखने लगा। आखिर नानक उसी को शान्ता समझ के उठा ले गया और खुशी-खुशी अपनी नकली शान्ता को खम्भे के साथ बाँधकर जूते से पूजा करने लगा। जब खूब दुर्गति कर चुका तब नकली रामदेई उसके सामने एक पुर्जा फेंक करके बाहर निकल गई। उस पुर्जे के पढ़ने से जब उसे मालूम हुआ कि मैंने जो कुछ किया है, अपनी ही माँ के साथ किया तब वह बहुत ही शर्मिन्दा हुआ। उस समय उनके दोनों की जैसी कैफियत हुई मैं क्या बयान करूँ, आप लोग खुद सोच समझ लीजिये।

भूतनाथ की बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। महाराज ने उसे अपने पास बुला कर बैठाया और कहा, "भूतनाथ, जरा एक दफे तुम इस किस्से को फिर बयान कर जाओ मगर जरा खुलासा तौर पर कहो।"

भूतनाथ ने इस हाल को विस्तार के साथ ऐसे ढंग पर दोहराया कि हँसते-हँसते सभी का दम फूलने लगा। इसके बाद जब भूतनाथ को मालूम हुआ कि भरतसिंह अपना किस्सा बयान कर रहे हैं तब उसने भरतसिंह की तरफ देखा और कहा, "मुझसे भी तो आपके किस्से से कुछ सम्बन्ध है !"

भरतसिंह—बेशक, और वही हाल मैं इस समय बयान कर रहा था !

भूतनाथ—(गोपालसिंह) से क्षमा कीजियेगा, मैंने आपसे उस समय, जब आप

कृष्ण जिन्न बने हुए थे, यह झूठ बयान किया था कि 'राजा गोपालसिंह के छूटने के बाद मैंने उन कागजों का पता लगाया है जो इस समय मेरे ही साथ दुश्मनी कर रहे हैं' इत्यादि। असल में वे कागज मेरे पास उसी समय भी मौजूद थे, जब जमनिया में मुझसे और भरतसिंह से मुलाकात हुई थी। आप यह हाल इनकी जुबानी सुन चुके होंगे।

भरतसिंह—हाँ भूतनाथ, इस समय मैं वही हाल बयान कर रहा हूँ, अभी कह नहीं चुका।

भूतनाथ—खैर, तो अभी श्रीगणेश है। अच्छा, आप बयान कीजिए।

भरतसिंह ने फिर इस तरह बयान किया—

भरतसिंह—दूसरे दिन आधी रात के समय जब मैं गहरी नींद में सोया हुआ था हरदीन ने आकर मुझे जगाया और कहा, "लीजिये, मैं गदाधरसिंहजी को ले आया हूँ, उठिये और इनसे मुलाकात कीजिए, ये बड़े ही लायक और बात के धनी आदमी हैं!" मैं खुशी-खुशी उठ बैठा और बड़ी नर्मी के साथ भूतनाथ से मिला। इसके बाद मुझसे और भूतनाथ (गदाधर) से इस तरह बातचीत होने लगी—

भूतनाथ—साहब, आपका यह हरदीन बड़ा ही नेक और दिलावर है, ऐसा जीवट का आदमी दुनिया में कम ही दिखाई देगा। मैं तो इसे अपना परम हितैषी और मित्र समझता हूँ, इसने मेरे साथ जो कुछ भलाइयाँ की हैं उनका बदला मैं किसी तरह चुका ही नहीं सकता। मुझसे कभी की जान, पहचान नहीं, मुलाकात नहीं-ऐसी अवस्था में मैं पहले-पहल बिना मतलब के आपके घर कदापि न आता परन्तु, इनकी इच्छा के विरुद्ध मैं नहीं चल सका, इन्होंने यहाँ आने के लिए कहा और मैं बेधड़क चला आया। इनकी जुबानी मैं सुन भी चुका हूँ कि आज कल आप किस विकट फेर में पड़े हुए हैं और मुझसे मिलने की जरूरत आपको क्यों पड़ी अस्तु हरदीन की आज्ञानुसार मैं वह कागज का मुट्ठा भी दिखाने के लिए लेता आया हूँ जिससे आप को दारोगा और रघुबरसिंह की हरामजदगी और राजा गोपालसिंह की शादी का पूरा-पूरा हाल मालूम हो जायेगा, मगर खूब याद रखिये कि इस कागज को पढ़कर आप बेताब हो जायँगे, आपको बेहिसाब गुस्सा चढ़ आवेगा और आपका दिल बेचैनी के साथ तमाम भण्डा फोड़ देने के लिए तैयार हो जायगा, मगर नहीं, आपको ये सब-कुछ बर्दाश्त करना ही पड़ेगा, दिल को सम्हालना और इन बातों को हर तरह से छिपाना पड़ेगा। मुझे हरदीन ने आपका बहुत ज्यादा विश्वास दिलाया है तभी मैं यहाँ आया हूँ, और यह अनूठी चीज भी दिखाने के लिए तैयार हूँ नहीं तो कदापि न आता।

मैं—आपनी बड़ी मेहरबानी की जो मुझ पर भरोसा किया और यहाँ तक चले आये, मेरी जुबान से आपका रत्ती भर भेद भी किसी को नहीं मालूम हो सकता, इसका आप विश्वास रखिये। यद्यपि मैं इस बात का निश्चय कर चुका हूँ कि गोपालसिंह के मामले में मैं अब कुछ भी दखल न दूँगा मगर इस बात का अफसोस जरूर है कि वह मेरे मित्र हैं और दुष्टों ने उन्हें बेतरह फँसा रक्खा है।

भूतनाथ—केवल आप ही को नहीं, इस बात का अफसोस मुझको भी है और मैं खुद गोपालसिंह को इस आफत से छुड़ाने का इरादा कर रहा हूँ। मगर लाचार हूँ कि

बलभद्रसिंह और लक्ष्मीदेवी का कुछ भी पता नहीं लगता और जब तक उन दोनों का पता न लग जाय तब तक इस मामले को उठाना बड़ी भारी भूल है।

मैं—मगर यह तो आपको निश्चय है कि इन सब बातों का कर्ता-धर्ता यह कम्बख्त दारोगा ही है?

भूतनाथ—भला इसमें भी अब कुछ शक है? लीजिए इस कागज के मुट्ठे का पढ़ जाइये तब आपको भी विश्वास हो जायगा।

इतना कहकर भूतनाथ ने कागज का एक मुट्ठा, निकाला और मेरे आगे रख दिया तथा मैंने भी उसे पढ़ना शुरू किया। मैं आपसे नही कह सकता कि उन कागजों को पढ़कर मेरे दिल की कैसी अवस्था हो गई और दारोगा तथा रघुबरसिंह पर मुझे कितना क्रोध चढ़ आया। आप लोग तो उसे पढ़-सुन चुके हैं अतएव इस बात को खुद समझ सकते हैं। मैंने भूतनाथ से कहा कि "यदि तुम मेरा साथ दो तो मैं आज ही दारोगा और रघुबरसिंह को इस दुनिया से उठा दूं।"

भूतनाथ—इससे फायदा ही क्या होगा? और काम ही कितना बड़ा है? मुझे खुद इस बात का खयाल है और मैं लक्ष्मीदेवी का पता लगाने के लिए दिल से कोशिश कर रहा हूँ, तथा आपका हरदीन भी उसका पता लगा रहा है। इस तरह समय के पहले छेड़छाड़ करने से खुद अपने को झूठा बनना पड़ेगा और लक्ष्मीदेवी भी जहाँ की तहाँ पड़ी सड़ेगी या मर जायगी।

मैं—हाँ ठीक है, अच्छा यह तो बताइये कि आप हरदीन की इतनी इज्जत क्यों करते हैं?

भूतनाथ—इसलिए मेरी कि यह सब जानकारी इन्हीं की बदौलत है। इन्होंने ही मुझे उस कमेटी का पता बताया और उसका भेद समझाया और इन्हीं की मदद से मैंने उस कमेटी का सत्यानाश किया।

मैं—(हरदीन से) और तुम्हें उस कमेटी का भेद क्योंकर मालूम हुआ?

हरदीन—(हाथ जोड़कर) माफ कीजियेगा, मैं उस कमेटी का मेम्बर था और अभी तक उन लोगों के खयाल से उन सभी का पक्षपाती बना हुआ हूँ, मगर मैं ईमानदार मेम्बर था, इसलिए ऐसी बातें मुझे पसन्द न आईं और मैं गुप्त रीति से उन लोगों का दुश्मन बन बैठा, मगर इतना करने पर भी अभी तक मेरी जान इसलिए बची हुई है कि आपके घर में मेरे सिवाय और कोई इन लोगों का साथी नहीं है।

मैं—तो क्या अभी तक तुम उन लोगों के साथी बने हुए हो और वे लोग अपने दिल का हाल तुमसे कहते हैं?

हरदीन—जी हाँ, तभी तो मैंने आपको रघुबरसिंह के पंजे से बचाया था, जब वह आपको घोड़े पर सवार कराके ले चला था!

मैं—अगर ऐसा हो तो तुम्हें यह भी मालूम हो गया होगा कि उस दिन घात न लगने के कारण रघुबरसिंह ने अब कौन-सी कार्रवाई सोची है।

हरदीन—जी हाँ, पहले तो उसने मुझसे पूछा था कि 'भरतसिंह ने ऐसा क्यों किया, क्या उसको मेरी नीयत का कुछ पता लग गया है?' जिसके जवाब में मैंने कहा

कि 'नहीं, किसी दूसरे सबब से ऐसा हुआ होगा।' इसके बाद दारोगा साहब ने मुझ पर हुक्म लगाया कि 'तू भरतसिंह को जिस तरह हो सके, जहर दे दे।' मैंने कहा, "बहुत अच्छा ऐसा ही करूँगा, मगर इस काम में पाँच-सात दिन जरूर लग जायेंगे।"

इतना कहकर हरदीन ने भूतनाथ से पूछा कि 'कहिए अब क्या करना चाहिए?' इसके जवाब में भूतनाथ ने कहा कि 'अब पाँच-सात दिन के बाद भरतसिंह को झूठ-मूठ हल्ला मचा देना चाहिए कि मुझको किसी ने जहर दे दिया, बल्कि कुछ बीमारी की सी नकल भी करके दिखा देनी चाहिए।'

इसके बाद थोड़ी देर तक और भी भूतनाथ से बातचीत होती रही और किसी दिन फिर मिलने का वादा करके भूतनाथ विदा हुआ।

इस घटना के बाद कई दफे भूतनाथ से मुलाकात हुई बल्कि कहना चाहिए कि इनके और मेरे बीच में एक प्रकार की मित्रता सी हो गई और इन्होंने कई कामों में मेरी सहायता भी की।

जैसा कि आपस में सलाह हो चुकी थी, मुझे यह मशहूर करना पड़ा कि 'मुझे किसी ने जहर दे दिया।' साथ ही इसके कुछ बीमारी की नकल भी की गई, जिसमें मेरे नौकर पर कम्बख्त दारोगा को शक न हो जायें, मगर इसका कोई अच्छा नतीजा न निकला अर्थात् दारोगा को मालूम हो गया कि हरदीन उसका सच्चा साथी और भेदिया नहीं है।

एक दिन रात के समय एकान्त में हरदीन ने मुझसे कहा, "लीजिए अब दारोगा साहब को निश्चय हो गया कि मैं उनका सच्चा साथी नहीं हूँ। आज उसने मुझे अपने पास बुलाया था, मगर मैं गया नहीं क्योंकि मुझे यह निश्चय हो गया कि जाने के साथ ही मैं उसके कब्जे में आ जाऊँगा और फिर किसी तरह जान न बचेगी, यों तो छिटके रहने पर लड़ते-झगड़ते जैसा होगा देखा जायेगा। अतः इस समय मुझे आपसे यह कहना है कि आज से मैं आपके यहाँ रहना छोड़ दूँगा और तब तक आपके पास न आऊँगा, जब तक मैं दारोगा की तरफ से बेफिक्र न होऊँगा, देखना चाहिए मेरे उससे क्योंकर निपटती है, वह मुझे मारकर निश्चिन्त होता है या मैं उसे जहन्नुम में पहुँचा कर कलेजा ठंडा करता हूँ। मुझे अपने मरने का रंज कुछ भी नहीं है मगर इस बात का अफसोस जरूर है कि मेरे जाने के बाद आपका मददगार यहाँ कोई भी नहीं है और कम्बख्त दारोगा आपको फँसाने में किसी तरह की कसर न करेगा, खैर लाचारी है क्योंकि मेरे यहाँ रहने से भी आपका कोई कल्याण नहीं हो सकता, यों तो मैं छिपे-छिपे कुछ-न-कुछ मदद जरूर करूँगा परन्तु आप जहाँ तक हो सके, खूब होशियारी के साथ काम कीजियेगा।"

मैं—अगर यही बात है तो तुम्हारे भागने की कोई जरूरत नहीं मालूम होती। हम लोग दारोगा के भेदों को खोलकर खुल्लमखुल्ला उसका मुकाबला कर सकते हैं!

हरनामसिंह—इससे कोई फायदा नहीं हो सकता, क्योंकि हम लोगों के पास दारोगा के खिलाफ कोई सबूत नहीं है और न उसके बराबर ताकत ही है।

मैं—क्या इन भेदों को हम गोपालसिंह से नहीं खोल सकते और ऐसा करने से भी कोई काम नहीं चलेगा?

हरनामसिंह—नहीं, ऐसा करने से जो कुछ बरस दो बरस गोपालसिंह की जिंदगी है वह भी न रहेगी अर्थात् हम लोगों के साथ ही साथ वे भी मार डाले जायेंगे। आप नही समझ सकते और नहीं जानते कि दारोगा की असली सूरत क्या है, उसकी ताकत कैसी है और उसके मजबूत जाल किस कारीगरी के साथ फैले हुए हैं। गोपालसिंह अपने को राजा और शक्तिमान समझते होंगे, मगर मैं सच कहता हूँ कि दारोगा के सामने उनकी कुछ भी हकीकत नहीं है, हाँ यदि राजा गोपालसिंह किसी को किसी तरह की खबर किए बिना एकाएक दारोगा को गिरफ्तार करके मार डालें तो बेशक वे राजा कहला सकते हैं, मगर ऐसी अवस्था में मायारानी उन्हें जीता न छोड़गी और लक्ष्मीदेवी वाला भेद भी ज्यों-का-त्यों बन्द रह जायेगा और वह भी किसी तहखाने में पड़ी-पड़ी भूखी-प्यासी मर जाएगी।

इसी तरह पर हमारे और हरदीन के बीच में देर तक बातें होती रहीं और वह मेरी हर एक बात का जवाब देता रहा। अन्त में वह मुझे समझा-बुझाकर घर से बाहर निकल गया और उसका पता न लगा।

रात भर मुझे नींद न आई और मैं तरह-तरह की बातें सोचता रह गया। सुबह को चारपाई से उठा, हाथ मुँह धोने के बाद दरबारी कपड़े पहने, हर्बे लगाए और राजा साहब की तरफ रवाना हुआ। जब मैं उस तिमुहानी पर पहुँचा, जहाँ से एक रास्ता राजा साहब के दीवानखाने की तरफ और दूसरा खास बाग की तरफ गया है, तब उस जगह पर दारोगा साहब से मुलाकात हुई थी जो दीवानखाने की तरफ से लौटे चले आ रहे थे।

प्रकट में मुझसे और दारोगा साहब से बहुत अच्छी तरह साहब-सलामत हुई और उन्होंने उदासीनता के साथ मुझसे कहा, "आप दीवानखाने की तरफ कहाँ जा रहे हैं, राजा साहब तो खास बाग में चले गये, मेरे साथ चलिए, मैं भी उन्हीं से मिलने के लिए जा रहा हूँ, सुना है कि रात से उनकी तबीयत खराब हो रही है।

मैं—(ताज्जुब के साथ) क्यों-क्यों, कुशल तो है ?

दारोगा—अभी-अभी पता लगा है कि आधी रात के बाद से उन्हें बेहिसाब दस्त और उल्टी आ रहे हैं, आप कृपा करके यदि मोहनजी वैद्य को अपने साथ लेते आवें, तो बड़ा काम हो, मैं खुद उनकी तरफ जाने का इरादा कर रहा था।

दारोगा की बातें सुनकर मैं घबड़ा गया, राजा साहब की बीमारी का हाल सुनते ही मेरी तबीयत उदास हो गई और मैं 'अच्छा' कह उल्टे पैर लौटा और मोहनजी वैद्य की तरफ रवाना हुआ।

यहाँ तक अपना हाल कह कुछ देर के लिए भरतसिंह चुप हो गये और दम लेने लगे। इस समय जीतसिंह ने महाराज की तरफ देखा और कहा, "भरतसिंहजी का किस्सा भी आम-दरबार में कैदियों के सामने ही सुनने लायक है।"

महाराज—बेशक ऐसा ही है। (गोपालसिंह से) तुम्हारी क्या राय है ?

गोपालसिंह—महाराज की इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ बोल न सका नहीं तो मैं भी यही चाहता था कि और नकाबपोशों की तरह इनका किस्सा भी कैदियों के सामने ही

सुना जाये ।

और सभी ने भी यही राय दी, आखिर महाराज ने हुक्म दिया कि 'कल दरबारे आम किया जाये और कैदी लोग दरबार में लाये जायें ।'

दिन पहर भर से कुछ कम बाकी था, जब यह छोटा-सा दरबार बर्खास्त हुआ और सब कोई अपने ठिकाने चले गये, कुँअर आनन्दसिंह शिकारी कपड़े पहनकर तारासिंह को साथ लिए महल के बाहर आए और दोनों दोस्त घोड़ों पर सवार हो जंगल की तरफ रवाना हो गये ।

10

घोड़े पर सवार तारासिंह को साथ लिए हुए कुँअर आनन्दसिंह जंगल ही जंगल घूमते और साधारण ढंग पर शिकार खेलते हुए बहुत दूर निकल गये और जब दिन बहुत कम बाकी रह गया, तब धीरे-धीरे घर की तरफ लौटे ।

हम ऊपर के किसी बयान में लिख आये हैं कि 'अटारी पर एक सजे हुए बँगले में बैठी हुई किशोरी, कामिनी और कमलिनी वगैरह ने जंगल से निकलकर घर की तरफ आते हुए कुँअर आनन्दसिंह और तारासिंह को देखा तथा यह भी देखा कि दस-बारह नकाबपोशों ने जंगल में से निकल इन दोनों पर तीर चलाये और ये दोनों उनका पीछा करते हुए पुनः जंगल के अन्दर घुस गए' —इत्यादि ।

यह वही मौका है जिसका हम जिक्र कर रहे हैं । उस समय कमला ने एक लौंडी की जबानी इन्द्रजीतसिंह को इस बात की खबर दिलवा दी थी, और खबर पाते ही कुँअर इन्द्रजीतसिंह, भैरोंसिंह तथा और भी बहुत से आदमी आनन्दसिंह की मदद के लिए रवाना हो गए थे ।

असल बात यह थी कि भूतनाथ की चालाकी से शर्मिन्दगी उठाकर भी नानक ने सब्र नहीं किया, बल्कि पुनः इन लोगों का पीछा किया और अबकी दफे इस ढंग से जाहिर हुआ था कि मौका मिले तो आनन्दसिंह को तीर का निशाना बनावे और इसी तरह बारी-बारी से अपने दुश्मनों की जान लेकर कलेजा ठंडा करे । मगर उसका यह इरादा भी काम न आया; आनन्दसिंह और तारासिंह की चालाकी और उनके घोड़ों की चपलता के कारण उसका निशाना कारगर न हुआ और उन्होंने तेजी के साथ उसके सिर पर पहुँच कर सभी को हर तरह से मजबूर कर दिया । तब तक मदद लिए हुए कुँअर इन्द्रजीतसिंह भी जा पहुँचे और आठ साथियों के सहित बेईमान नानक को गिरफ्तार कर लिया । यद्यपि उसी समय यह भी मालूम हो गया कि इसके साथियों में से कई आदमी निकल गए, मगर इस बात की कुछ परवाह न की गई और जो कुछ गिरफ्तार हो गए थे, उन्हीं को लेकर सब कोई घर की तरफ रवाना हो गए ।

कम्बख्त नानक पर हर तरह की रिआयत की गई, बहुत कड़ी सजा पाने के योग्य होने पर भी उसे किसी तरह की सजा न दी गई, और वह इस खयाल से बिल्कुल

साफ छोड़ दिया गया कि फिर भी सुधर जाय मगर नहीं—

भूयोपि सिक्तः पयसा घृतेन
न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति

अर्थात् "नीम न मीठो होय जो सींचो गुड़ घीउ से।"

आखिर नानक को वह दुःख भोगना ही पड़ा जो उसकी किस्मत में बदा हुआ था।

जिस समय नानक गिरफ्तार करके लाया गया और लोगों ने उसका हाल सुना उस समय सभी को उसकी नालायकी पर बहुत ही रंज हुआ। महाराज की आज्ञानुसार वह कैदखाने में पहुँचाया गया और सभी को निश्चय हो गया कि अब इसे किसी तरह छुटकारा नहीं मिल सकता।

दूसरे दिन दरबारे-आम का बन्दोबस्त किया गया और कैदियों का मुकदमा सुनने के लिए बड़े शौक से लोग इकट्ठा होने लगे। हथकड़ियों-बेड़ियों से जकड़े हुए कैदी लोग हाजिर किए गए और आपस वालों तथा ऐयारों को साथ लिए हुए महाराज भी दरबार में आकर एक ऊँची गद्दी पर बैठ गये। आज के दरबार में भीड़ मामूली से बहुत ज्यादा थी और कैदियों का मुकदमा सुनने के लिए सभी उतावले हो रहे थे। भरतसिंह, दलीपशाह, अर्जुनसिंह तथा उनके और भी दो साथी, जो तिलिस्म के बाहर होने के बाद अपने घर चले गए थे और अब लौट आये हैं, अपने-अपने चेहरों पर नकाब डाल कर दरबार में राजा गोपालसिंह के पास बैठ गये और महाराज के हुक्म का इन्तजार करने लगे।

महाराज का इशारा पाकर भरतसिंह खड़े हो गए और उन्होंने दारोगा तथा जयपाल की तरफ देखकर कहा—

"दारोगा साहब, जरा मेरी तरफ देखिए और पहचानिए कि मैं कौन हूँ। जयपाल, तू भी इधर निगाह कर!"

इतना कहकर भरतसिंह ने अपने चेहरे पर से नकाब उलट दी और एक दफा चारों तरफ देखकर सभी का ध्यान अपनी तरफ खींच लिया। सूरत देखते ही दारोगा और जयपाल थर-थर काँपने लगे। दारोगा ने लड़खड़ाई हुई आवाज से कहा, "कौन? ओफ, भरतसिंह! नहीं-नहीं, भरतसिंह कहाँ? उसे मरे बहुत दिन हो गए, यह तो कोई ऐयार है!"

भरतसिंह—नहीं-नहीं, दारोगा साहब! मैं ऐयार नहीं हूं, मैं वही भरतसिंह हूँ जिसे आपने हद से ज्यादा सताया था, मैं वही भरतसिंह हूँ जिसके मुंह पर आपने मिर्च का तोबड़ा चढ़ाया था और मैं वही भरतसिंह हूँ जिसे आपने अँधेरे कुएं में लटका दिया था। सुनिये मैं अपना किस्सा बयान करता हूँ और यह भी कहता हूँ कि आखिर में मेरी जान क्योंकर बची। जयपालसिंह, आप भी सुनिए और हुंकारी भरते चलिए।

इतना कहकर भरतसिंह ने अपना किस्सा आदि से कहना आरम्भ किया जैसा कि हम ऊपर बयान कर आये हैं और इसके बाद यों कहने लगे—

भरतसिंह—दारोगा की बातों ने मुझे घबरा दिया और मैं उलटे पैर मोहनजी

वैद्य को बुलाने के लिए रवाना हुआ। मुझे इस बात का रत्ती भर भी शक न था कि मोहनजी और दारोगा साहब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं अथवा इन दोनों में हमारे लिए कुछ बातें तय पा चुकी हैं। मैं बेधड़क उनके मकान पर गया और इत्तिला कराने के बाद उनके एकान्त वाले कमरे में जा पहुँचा जहाँ उन्होंने मुझे बुलवा भेजा था। उस समय वे अकेले बैठे माला जप रहे थे। नौकर मुझे वहाँ तक पहुँचा कर बिदा हो गया और मैंने उनके पास बैठकर राजा साहब का हाल बयान करके खास बाग में चलने के लिए कहा। जवाब में वैद्यजी यह कर कि 'मैं दवाओं का बन्दोबस्त करके अभी आपके साथ चलया हूँ' खड़े हुए और आलमारी में से कई तरह की शीशियाँ निकाल-निकाल कर जमीन पर रखने लगे। उसी बीच में उन्होंने एक छोटी शीशी निकाल कर मेरे हाथ में दी और कहा, "देखिए यह मैंने एक नये ढंग की ताकत की दवा तैयार की है, खाना तो दूर रहा इसके सूँघने ही से तुरन्त मालूम होता है कि बदन में एक तरह की ताकत आ रही है! लीजिए, जरा सूँघ के अन्दाज तो कीजिए।"

मैं वैद्यजी के फेर में पड़ गया और शीशी का मुँह खोलकर सूँघने लगा। इतना तो मालूम हुआ कि इसमें कोई खुशबूदार चीज है मगर फिर तन-बदन की सुध न रही। जब मैं होश में आया तो अपने को हथकड़ी-बेड़ी से मजबूर एक अँधेरी कोठरी में कैद पाया। नहीं कह सकता कि वह दिन का समय था या रात का। कोठरी के एक कोने में चिराग जल रहा था और दारोगा तथा जयपाल हाथ में नंगी तलवार लिए सामने बैठे हुए थे।

मैं—(दारोगा से) अब मालूम हुआ कि आपने इसी काम के लिए मुझे वैद्यजी के पास भेजा था।

दारोगा—बेशक इसीलिए, क्योंकि तुम मेरी जड़ काटने के लिए तैयार हो चुके थे।

मैं—तो फिर मुझे कैद कर रखने से क्या फायदा? मार कर बखेड़ा निपटाइए और बेखटके आनन्द कीजिए।

दारोगा—हाँ, अगर तुम मेरी बात नहीं मानोगे, तो बेशक मुझे ऐसा ही करना पड़ेगा।

मैं—मानने की कौन-सी बात है? मैंने तो अभी तक कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे आपको किसी तरह का नुकसान पहुँचे।

दारोगा—ये सब बातें तो रहने दो, क्योंकि तुम और हरदीन मिलकर जो कुछ कर चुके थे और जो करना चाहते थे, उसे मैं खूब जानता हूँ मगर बात यह है कि अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हें इस कैद से छुट्टी दे सकता हूँ, नहीं तो मौत तुम्हारे लिए तय हुई रक्खी है।

मैं—खैर बताइये तो सही कि वह कौन-सा काम है जिसके करने से छुट्टी मिल सकती है।

दारोगा—यही कि तुम एक चिट्ठी इन रघुबरसिंह अर्थात् जयपाल के नाम की लिख दो जिसमें यह बात हो कि 'लक्ष्मीदेवी के बदले में मुन्दर को मायारानी बना देने

में जो कुछ मेहनत की है वह हम तुम दोनों ने मिल कर की है अतएव उचित है कि इस कामं में जो कुछ तुमने फायदा उठाया है उसमें से आधा मुझे बाँट दो, नहीं तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा ।"

मैं—ठीक है, आपका मतलब मैं समझ गया, खैर आज तो नहीं मगर कल जैसा आप कहते हैं, वैसा ही कर दूँगा ।

दारोगा—आखिर एक दिन की देर करने में तुमने क्या फायदा सोचा है ?

मैं—सो भी कल ही बताऊँगा ।

दारोगा—अच्छा क्या हर्ज है, कल ही सही ।

इतना कहकर दारोगा चला गया और मैं भूखा-प्यासा उसी कोठरी में पड़ा हुआ तरह-तरह की बातें सोचने लगा क्योंकि उस दिन दारोगा ने मेरे खाने-पीने के लिए कुछ भी प्रबन्ध न किया । मुझे निश्चय हो गया कि इस ढंग की चिट्ठी लिखाने के बाद दारोगा मुझे जान से मार डालेगा और मेरे मरने के बाद यही चिट्ठी मेरी बदनामी का सबब बनेगी । मेरे दोस्त गोपालसिंह मुझको बेईमान समझेंगे और तमाम दुनिया मुझे कमीना खयाल करेगी । अतः मैंने दिल में ठान ली कि चाहे जान जाय या रहे, मगर इस तरह की चिट्ठी मैं कदापि न लिखूँगा । आखिर मरना तो जरूरी है फिर कलंक का टीका जान-बूझ कर अपने माथे क्यों लगाऊँ ?

दूसरे दिन रघुबरसिंह को साथ लिए हुए दारोगा पुनः मेरे पास आया ।···

भरतसिंह ने अपना हाल यहाँ ही तक बयान किया था कि राजा गोपालसिंह ने बीच ही में टोका और पूछा, "क्या रघुबरसिंह भी इसी जयपाल का नाम है ?"

भरतसिंह—जी हाँ, इसका नाम रघुबरसिंह था और कुछ दिन के लिए इसने अपना नाम 'भूतनाथ' रख लिया था ।

गोपालसिंह—ठीक है, मुझे इस बारे में धोखा हुआ नहीं, बल्कि मेरे खजांची ही ने मुझे धोखा दिया । खैर तब क्या हुआ ?

भरतसिंह—हाँ, तो दूसरे दिन जयपाल को साथ लिए हुए दारोगा पुनः मेरे पास आया और बोला, "कहो, चिट्ठी लिख देने के लिए तैयार हो या नहीं ?" इसके जवाब में मैंने कहा कि "मर जाना मंजूर है मगर झूठे कलंक का टीका अपने माथे पर लगाना मंजूर नहीं !"

दारोगा ने मुझे कई तरह से समझाया-बुझाया और धोखे में डालना चाहा, मगर मैंने उसकी एक न सुनी । आखिर दोनों ने मिलकर मुझे मारना शुरू किया, यहाँ तक मारा कि मैं बेहोश हो गया । जब होश में आया तो फिर उसी तरह अपने को कैद पाया । भूख और प्यास के मारे मेरा बुरा हाल हो गया था और मार के सबब से तमाम बदन चूर-चूर हो रहा था । तीसरे दिन दोनों शैतान पुनः मेरे पास आये और जब उस दिन भी मैंने दारोगा की बात न मानी तो उसने घोड़ों के दाना खाने वाले तोबड़े में चूरा किया हुआ मिरचा रख कर मेरे मुँह पर चढ़ा दिया । हाय-हाय ! उस तकलीफ को मैं कभी नहीं भूल सकता !

यहाँ तक कहकर भरतसिंह चुप हो गये और दारोगा तथा जयपाल की तरफ

देखने लगे। वे दोनों सिर नीचा किए हुए जमीन की तरफ देख रहे थे और डर के मारे दोनों का बदन काँप रहा था। भरतसिंह ने पुकार कर कहा, "कहिए दारोगा साहब, जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह सच है या झूठ ?" मगर दारोगा ने इसका कुछ भी जवाब न दिया। मगर उस समय दरबार में जितने आदमी बैठे थे, क्रोध के मारे सभी का बुरा हाल था और सब कोई दारोगा की तरफ जलती हुई निगाह से देख रहे थे। भरतसिंह ने फिर इस तरह कहना शुरू किया—

भरतसिंह—दारोगा के सम्बन्ध में मेरा किस्सा वैसा दिलचस्प नहीं है जैसा दलीपशाह और अर्जुनसिंह का आप लोग सुनेंगे, क्योंकि उनके साथ बड़ी-बड़ी विचित्र घटनाएँ हो चुकी हैं, बल्कि यों कहना चाहिए कि मेरा तमाम किस्सा उनकी एक दिन की घटना का मुकाबला भी नहीं कर सकता, परन्तु साथ ही इसके यह बात भी जरूर है कि मैंने न तो कभी किसी के साथ किसी तरह की बुराई की और न किसी से विशेष मेलजोल या हँसी-दिल्लगी ही रखता था, फिर भी उन दिनों जमानिया की वह दशा थी कि सादे ढंग पर जिन्दगी बिताने वाला मैं भी सुख की नींद न सो सका और राजा साहब की दोस्ती की बदौलत मुझे हर तरह का दुःख भोगना पड़ा। इस हरामखोर दारोगा ने ऐसे-ऐसे कुकर्म किए हैं कि जिनका पूरा-पूरा बयान हो ही नहीं सकता और न यही मेरी समझ में आता है कि दुनिया में कौन-सी ऐसी सजा है जो इसके योग्य समझी जाय। अतः अब मैं संक्षेप में अपना हाल समाप्त करता हूँ।

अपने मन के माफिक चिट्ठी लिखाने की नीयत से आठ दिन तक कम्बख्त दारोगा ने मुझे बेहिसाब तकलीफें दीं। मिर्च का तोबड़ा मेरे मुँह पर चढ़ाया, जहरीली राई का लेप मेरे बदन पर किया, कुएँ में लटकाया, गन्दी कोठरी में बन्द किया, जो-जो सूझा सब कुछ किया और इतने दिनों तक बराबर ही मुझे भूखा भी रखा, मगर न मालूम क्या सबब था कि मेरी जान नहीं निकली। मैं बराबर ईश्वर से प्रार्थना करता था कि किसी तरह मुझे मौत दे जिससे इस दुःख से छुट्टी मिले। आखिरी दिन मैं इतना कमजोर हो गया था कि मुझमें बात करने की ताकत न थी।

उस दिन आधी रात के समय मैं उसी कोठरी में पड़ा-पड़ा मौत का इन्तजार कर रहा था कि यकायक कोठरी का दरवाजा खुला और एक नकाबपोश दाहिने हाथ में नंगी तलवार और बाएँ हाथ में एक छोटी-सी गठरी लिए हुए कोठरी के अन्दर आता हुआ दिखाई पड़ा। हाथ में वह जो तलवार लिए था, उसके अतिरिक्त उसकी कमर में एक तलवार और भी थी। कोठरी के अन्दर आते ही उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया और मेरे पास चला आया, हाथ की गठरी और तलवार जमीन पर रख मुझसे चिपट गया और रोने लगा। उसकी ऐसी मुहब्बत देख मैं चौंक पड़ा और मुझे तुरन्त मालूम हो गया कि यह मेरा पुराना खैरख्वाह हरदीन है। उसके चेहरे से नकाब हटाकर मैंने उसकी सूरत देखी और तब रोने में उसका साथ दिया।

थोड़ी ही देर बाद हरदीन मुझसे अलग हुआ और बोला, "मैं किसी न किसी तरह यहाँ तो पहुँच गया मगर यहाँ से निकल भागना जरा कठिन है, तथापि आप घबरायें नहीं, मैं एक दफा तो दुश्मन को सताए बिना नहीं रहता। अब आप शीघ्र उठें और

जो कुछ मैं खाने-पीने के लिए लाया हूँ उसे खा कर चैतन्य हो जायें ।"

जो गठरी हरदीन लाया था उसमें खाने-पीने का सामान था । उसने मुझे भोजन कराया, पानी पिलाया और इसके बाद मेरे हाथ में एक तलवार देकर बोला, "बस, अब आप उठिये और मेरे पीछे-पीछे चले आइए । इतना समय नहीं है कि मैं यहाँ आपसे विशेष बातें करूँ, इसके अतिरिक्त जिस जगह पर आप कैद हैं, यह तिलिस्म का एक हिस्सा है, यहाँ से निकलने के लिए भी बहुत उद्योग करना होगा ।"

भोजन करने से कुछ ताकत तो मुझमें हो ही गई थी, मगर कैद से छुटकारा मिलने की उम्मीद ने उससे भी ताकत पैदा कर दी । मैं उठ खड़ा हुआ और हरदीन के पीछे-पीछे रवाना हुआ । कोठरी का दरवाजा खोलने के बाद जब बाहर निकला तब मुझे मालूम हुआ कि मैं खास बाग के तीसरे दर्जे में हूँ जिसमें कई दफा राजा गोपालसिंह के साथ आ चुका था, मगर इस बात से मुझको बहुत ही ताज्जुब हुआ और मैं सोचने लगा कि देखो राजा साहब के खास बाग ही में यह दारोगा लोगों पर इतना जुल्म करता है और राजा साहब को खबर तक नहीं होती ! क्या यहाँ कई ऐसे स्थान हैं जिनका हाल दारोगा जानता है और राजा साहब नहीं जानते ?

खैर, मैं कोठरी से बाहर निकलकर बरामदे में पहुँचा जहाँ से बायें और दाहिने सिर्फ दो ही तरफ जाने का रास्ता था । दाहिनी तरफ को इशारा करके हरदीन ने मुझसे कहा, "इसी तरफ से मैं आया हूँ, दारोगा, जयपाल तथा बहुत से आदमी इसी तरफ बैठे हैं इसलिए इधर तो अब जा नहीं सकते, हाँ बाईं तरफ चलिए, कहीं-न-कहीं से तो रास्ता मिल ही जायगा ।"

रात चाँदनी थी और ऊपर से खुला रहने के सबब उधर की हर एक चीज साफ-साफ दिखाई देती थी । हम दोनों आदमी बाईं तरफ रवाना हुए । लगभग पच्चीस कदम जाने के बाद नीचे उतरने के लिए दस-बारह सीढ़ियाँ मिलीं जिन्हें तय करने के बाद हम दालान में पहुँचे जो बहुत लम्बा-चौड़ा तो न था मगर निहायत खूबसूरत और स्याह पत्थर का बना हुआ था । उस दालान में पहुँचे ही थे कि पीछे से दारोगा और जयपाल तेजी के साथ आते हुए दिखाई पड़े, मगर हरदीन ने इनकी कुछ भी परवाह न की और कहा, "इन दोनों के लिए तो मैं अकेला ही काफी हूँ ।"

हरदीन मुझे अपने पीछे करने के बाद अकड़कर खड़ा हो गया । उसने दारोगा को सैकड़ों गालियाँ दीं और मुकाबला करने के लिए ललकारा, मगर उन दोनों की हिम्मत न पड़ी कि आगे बढ़ें और हरदीन का मुकाबला करें । कुछ देर तक खड़े-खड़े देखने और सोचने के बाद दारोगा ने अपनी जेब से एक छोटा सा गोला निकाला और हम दोनों की तरफ फेंका । हरदीन समझ गया कि जमीन पर गिरने के साथ ही इसमें से बेहोशी का धुआँ निकलेगा । उसने अपने हाथ से मुझे इशारा किया । गोला जमीन पर गिरकर फटा और उसमें से बहुत-सा धुआँ निकला, मगर हम दोनों वहाँ से हट गये थे । इसलिए उसका कुछ असर न हुआ । उसी समय दारोगा ने हम लोगों की तरफ फेंकने के लिए दूसरा गोला निकाला ।

इस दालान के बीचोंबीच में एक छोटा-सा चबूतरा लाल पत्थर का बना हुआ

था, मगर हम दोनों यह नहीं जानते थे कि इसमें क्या गुण है। दारोगा को दूसरा गोला निकालते देख हम दोनों उस चबूतरे पर चढ़ गये, मगर उस से उतरकर भाग न सके, क्योंकि चढ़ने के साथ ही चबूतरा हिला, तथा हम दोनों को लिए हुए जमीन के अन्दर धँस गया और साथ ही न मालूम किस चीज के असर से हम दोनों बेहोश हो गये। जब होश में आये तो चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दिया, नहीं कह सकते कि हम दोनों कितनी देर तक बेहोश रहे।

कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद सामने की तरफ कुछ उजाला मालूम हुआ और वह उजाला धीरे-धीरे बढ़ने लगा जिससे हमने समझा कि सामने कोई दरवाजा है और उसमें से सुबह की सफेदी दिखाई दे रही है। हम दोनों उठकर खड़े हुए और उसी उजाले की तरफ बढ़े। वास्तव में वैसा ही था जैसा हम लोगों ने सोचा था। कई कदम चलने के बाद एक दरवाजा मिला जिसे लाँघकर हम दोनों उसी बुर्ज वाले बाग में जा पहुँचे जहाँ दोनों कुमारों से मुलाकात हुई थी। इसके बाद बाहर का हाल बहुत दिनों तक कुछ भी मालूम न हुआ कि क्या हो रहा है और क्या हुआ। बहुत दिनों तक वहाँ से बाहर निकलने के लिए उद्योग करते रहे, परन्तु सब कुछ व्यर्थ हुआ और वहाँ से छुट्टी तभी मिली जब दोनों कुमारों के दर्शन हुए।[1] कुछ दिनों बाद दलीपशाह से भी उसी बाग में मुलाकात हुई जिसका हाल उनका किस्सा सुनने से आप लोगों को मालूम होगा। बस, इतना ही तो मेरा किस्सा है। हाँ, जब आप दलीपशाह की कहानी सुनेंगे तब बेशक कुछ आनन्द मिलेगा। (एक नकाबपोश की तरफ बताकर) मेरा पुराना खैरखाह हरदीन यही है जो इतने दिनों तक मेरे दुःख-सुख का साथी बना रहा और अन्त में मेरे साथ ही कैद से छूटा।

भरतसिंह की कथा समाप्त होने के बाद दरबार बर्खास्त किया गया और महाराज ने हुक्म दिया कि "कल के दरबार में दलीपशाह अपना किस्सा बयान करेंगे।"

11

दूसरे दिन पुनः उसी ढंग का दरबार लगा और सब लोग अपने-अपने ठिकाने पर बैठ गये।

इशारा पाकर दलीपशाह उठ खड़ा हुआ और उसने अपने चेहरे पर से नकाब हटाकर दारोगा, जयपाल, बेगम और नागर वगैरह की तरफ देखकर कहा—

दलीपशाह—आप लोगों की खुशकिस्मती का जमाना तो बीत गया, अब वह जमाना आ गया है कि आप लोग अपने किये का फल भोगें और देखें कि आपने जिन लोगों को जहन्नुम में पहुँचाने का बीड़ा उठाया था आज ईश्वर की कृपा से वे ही लोग आपको हँसते-खेलते दिखाई देते हैं। खैर, मुझे इन बातों से कोई मतलब नहीं, इसका निपटारा तो महाराज की आज्ञा से होगा, मुझे अपना किस्सा बयान करने का हुक्म हुआ है सो बयान

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति, बीसवाँ भाग, चौथा बयान।

करता हूँ। (और लोगों की तरफ देखकर) मेरे किस्से से भूतनाथ का भी बहुत ही बड़ा सम्बन्ध है, मगर इस खयाल से कि महाराज ने भूतनाथ का कसूर माफ करके उसे अपना ऐयार बना लिया है, मैं अपने किस्से में उन बातों का जिक्र छोड़ता जाऊँगा जिनसे भूतनाथ की बदनामी होती है, इसके अतिरिक्त भूतनाथ प्रतिज्ञानुसार महाराज के आगे पेश करने लिए स्वयं अपनी जीवनी लिख रहा है जिससे महाराज को पूरा-पूरा हाल मालूम हो जायगा, अतः अब मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

मैं मिर्जापुर के रहने वाले दीनदयालसिंह ऐयार का लड़का हूँ। मेरे पिता महाराज धौलपुर के यहाँ रहते थे और वहाँ उनकी बहुत इज्जत और कदर थी। उन्होंने मुझे ऐयारी सिखाने में किसी तरह की त्रुटि नहीं की। जहाँ तक हो सका, दिल लगाकर मुझे ऐयारी सिखाई और मैं भी इस फन में खूब होशियार हो गया, परन्तु पिता के मरने के बाद मैंने किसी रियासत में नौकरी नहीं की। मुझे अपने पिता की जगह मिलती थी और महाराज मुझे बहुत चाहते थे, मगर मैंने पिता के मरने के साथ ही रियासत छोड़ दी और अपने जन्म-स्थान मिर्जापुर में चला आया क्योंकि मेरे पिता मेरे लिए बहुत दौलत छोड़ गये थे और मुझे खाने-पीने की कुछ परवाह न थी। पिता के देहान्त के साल भर पहले ही मेरी माँ मर चुकी थी, अतएव केवल मैं और मेरी स्त्री दो आदमी अपने घर के मालिक थे।

जमानिया की रियासत से मुझे किसी तरह का सम्बन्ध नहीं था, परन्तु इसलिए कि मैं एक नामी ऐयार का लड़का और खुद भी ऐयार था तथा बहुत से ऐयारों से गहरी जान-पहचान रखता था, मुझे चारों तरफ की खबरें बराबर मिला करती थीं, इसी तरह जमानिया में जो कुछ चालवाजियाँ हुआ करती थीं, वे भी मुझसे छिपी हुई न थीं। भूतनाथ की और मेरी स्त्री आपस में मौसेरी बहिनें होती हैं और भूतनाथ का जमानिया से बहुत घना संबंध हो गया था, इसलिए जमानिया का हाल जानने के लिए मैं उद्योग भी किया करता था, मगर उसमें किसी तरह का दखल नहीं देता था। (दारोगा की तरफ इशारा करके)इस हरामखोर दारोगा ने रियासत पर अपना दबाव डालने की नीयत से विचित्र ढोंग रच लिया था, शादी नहीं की थी और बाबाजी तथा ब्रह्मचारी के नाम से अपने को प्रसिद्ध कर रखा था, बल्कि मौके-मौके पर लोगों को कहा करता था कि मैं तो साधू आदमी हूँ, मुझे रुपये-पैसे की जरूरत ही क्या है, मैं तो रियासत की भलाई और परोपकार में अपना समय बिताना चाहता हूँ, इत्यादि। परन्तु वास्तव में यह परले सिरे का ऐयाश, बदमाश और लालची था जिसके विषय में कुछ विशेष कहना मैं पसन्द नहीं करता।

मेरे पिता और इन्द्रदेव के पिता दोनों दिली दोस्त और ऐयारी में एक ही गुरु के शिष्य थे, अतएव मुझमें और इन्द्रदेव में भी उसी प्रकार की दोस्ती और मुहब्बत थी। इसलिए मैं प्रायः इन्द्रदेव से मिलने के लिए उनके घर जाया करता और कभी-कभी वे भी मेरे घर आया करते थे। जरूरत पड़ने पर इन्द्रदेव की इच्छानुसार मैं उनका कुछ काम कर दिया करता और उन्हीं के यहाँ कभी-कभी इस कम्बख्त दारोगा से भी मुलाकात हो जाया करती थी, बल्कि कहना चाहिए कि इन्द्रदेव ही के सबब से दारोगा, जयपाल राजा गोपालसिंह और भरतसिंह तथा जमानिया के और भी कई नामी आदमियों से मेरी

मुलाकात ओर साहब-सलामत हो गई थी ।

जब भूतनाथ के हाथ से बेचारा दयाराम मारा गया, तब से मुझमें और भूतनाथ में एक प्रकार की खिचाखिंची हो गई थी और वह खिचाखिंची दिनों-दिन बढ़ती ही गई यहाँ तक कि कुछ दिनों बाद हम दोनों की साहब-सलामत भी छूट गई ।

एक दिन मैं इन्द्रदेव के यहाँ बैठा हुआ भूतनाथ के विषय में बातचीत कर रहा था, क्योंकि उन दिनों यह खबर बड़ी तेजी के साथ मशहूर हो रही थी कि 'गदाधरसिंह (भूतनाथ)मर गया ।" परन्तु उस समय इन्द्रदेव इस बात पर जोर दे रहे थे कि भूतनाथ मरा नहीं, कहीं छिपकर बैठ गया है, कभी न कभी यकायक प्रकट हो जायगा । इसी समय दारोगा के आने की इत्तिला मिली जो बड़ी शान-शौकत के साथ इन्द्रदेव से मिलने के लिए आया था । इन्द्रदेव बाहर निकल कर बड़ी खातिर के साथ इसे घर के अन्दर ले गये और अपने आदमियों को हुक्म दे गये कि दारोगा के साथ जो आदमी आये हैं उनके खाने-पीने और रहने का उचित प्रबन्ध किया जाय ।

दारोगा को साथ लिए हुए इन्द्रदेव उसी कमरे में आये जिसमें मैं पहले ही से बैठा हुआ था, क्योंकि इन्द्रदेव की तरह मैं दारोगा को लेने के लिए मकान के बाहर नहीं गया था और न दारोगा के आ पहुँचने पर मैंने उठकर इसकी इज्जत ही बढ़ाई, हाँ, साहब-सलामत जरूर हुई । यह बात दारोगा को बहुत ही बुरी मालूम हुई, मगर इन्द्रदेव को नहीं, क्योंकि इन्द्रदेव गुरुभाई का सिर्फ नाता निबाहते थे, दिल से दारोगा की खातिर नहीं करते थे ।

इन्द्रदेव से और दारोगा से देर तक तरह-तरह की बातें होती रहीं, जिसमें मौके-मौके पर दारोगा अपनी होशियारी और बुद्धिमानी की तस्वीर खींचता रहा । जब ऐयारों की कहानी छिड़ी तो वह यकायक मेरी तरफ पलट पड़ा और बोला, "आप इतने बड़े ऐयार के लड़के होकर घर में बेकार क्यों बैठे हैं ? और नहीं तो मेरी ही रियासत में काम कीजिए, यहाँ आपको बहुत आराम मिलेगा, देखिये बिहारीसिंह और हरनामसिंह कैसी इज्जत और खुशी के साथ रहते हैं, आप तो उनसे ज्यादा इज्जत के लायक हैं ।"

मैं—मैं बेकार तो बैठा रहता हूँ, मगर अभी तक अपने को महाराज धौलपुर का नौकर समझता हूँ, क्योंकि रियासत का काम छोड़ देने पर भी वहाँ से मुझे खाने को बराबर मिल रहा है ।

दारोगा—(मुँह बनाकर)अजी, मिलता भी होगा तो आखिर क्या, एक छोटी-सी रकम से आपका क्या काम चल सकता है ? आखिर अपने पल्ले की जमा तो खर्च करते ही होंगे ।

मैं—यह भी तो महाराज का ही दिया हुआ है !

दारोगा—नहीं, वह आपके पिता का दिया हुआ है । खैर, मेरा मतलब यह है कि वहाँ से अगर कुछ मिलता है तो उसे भी आप रखिये और मेरी रियासत से भी फायदा उठाइए ।

मैं—ऐसा करना बेईमानी और नमकहरामी कहा जायगा और यह मुझसे न हो सकेगा ।

दारोगा—(हँसकर) वाह याह ! ऐयार लोग दिन-रात ईमानदारी की हँडियाँ ही तो चढ़ाए रहते हैं !

मैं—(तेजी के साथ) बेशक ! अगर ऐसा नहीं तो वह ऐयार नहीं, रियासत का कोई ओहदेदार कहा जायगा !

दारोगा—(तनकर) ठीक है ! गदाधरसिंह आप ही का नातेदार तो है, जरा उसकी तस्वीर तो खींचिये !

मैं—गदाधरसिंह किसी रियासत का ऐयार नहीं है और न मैं उसे ऐयार समझता हूँ' इतना होने पर भी आप यह नहीं साबित कर सकते कि उसने अपने मालिक के साथ किसी तरह की बेईमानी की ।

दारोगा—(और भी तुनक के) बस-बस-बस, रहने दीजिये । हमारे यहाँ भी बिहारीसिंह और हरनामसिंह ऐयार ही तो हैं ।

मैं—इसी से तो मैं आपकी रियासत में जाना बेइज्जती समझता हूँ ।

दारोगा—(भौंह सिकोड़कर) तो इसका यह मतलब कि हम लोग बेईमान और नमकहराम हैं !

मैं—(मुस्कराकर) इस बात को तो आप ही सोचिये !

दारोगा—देखिये, जुबान सँभालकर बात कीजिए, नहीं तो समझ लीजिए कि मैं मामूली आदमी नहीं हूँ !

मैं—(क्रोध से) यह तो मैं खुद कहता हूँ कि आप मामूली आदमी नहीं हैं क्योंकि आदमी में शर्म होती है और वह जानता है कि ईश्वर भी कोई चीज है ।

दारोगा—(क्रोध-भरी आँखें दिखाकर) फिर वही बात !

मैं—हाँ वही बात ! गोपालसिंह के पिता वाली बात ! गुप्त कमेटी वाली बात, गदाधरसिंह की दोस्ती वाली बात ! लक्ष्मीदेवी की शादी वाली बात और जो बात कि आपके गुरुभाई साहब को नहीं मालूम है वह बात !

दारोगा—(दाँत पीसकर और कुछ देर मेरी तरफ देखकर) खैर, अब इस बहुत-सी बात का जवाब लात ही से दिया जायगा ।

मैं—बेशक, और साथ ही इसके यह भी समझ रखिए कि जवाब देने वाले भी एक-दो नहीं हैं, लातों की गिनती भी आप न सम्हाल सकेंगे । दारोगा साहब, जरा होश में आइए और सोच-विचार कर बातें कीजिए । अपने को आप ईश्वर न समझिए, बल्कि यह समझकर बातें कीजिए कि आप आदमी हैं और रियासत धौलपुर के किसी ऐयार से बातें कर रहे हैं ।

दारोगा—(इन्द्रदेव की तरफ आँखें तरेरकर) क्या आप चुपचाप बैठे तमाशा देखेंगे और अपने मकान में मुझे बेइज्जत करावेंगे ?

इन्द्रदेव—आप तो खुद ही अपनी अनोखी मिलनसारी से अपने को बेइज्जत करा रहे हैं, इनसे बात बढ़ाने की आपको जरूरत ही क्या थी ? मैं आप दोनों के बीच में नहीं बोल सकता, क्योंकि दलीपशाह को भी अपना भाई समझता और इज्जत की निगाह से देखता हूँ ।

दारोगा—तो फिर जैसे बने, हम इनसे निपट लें !

इन्द्रदेव—हाँ-हाँ !

दारोगा—पीछे उलाहना न देना, क्योंकि आप इन्हें अपना भाई समझते हैं !

इन्द्रदेव—मैं कभी उलाहना न दूंगा ।

दारोगा—अच्छा तो अब मैं जाता हूँ, फिर कभी मिलूंगा तो बातें करूंगा !

इन्द्रदेव ने इस बात का कुछ भी जवाब न दिया । हाँ, जब दारोगा साहब वहाँ से बिदा हुए तो उन्हें दरवाजे तक पहुँचा आये । जब लौटकर कमरे में मेरे पास आये तो मुस्कुराते हुए बोले, "आज तो तुमने इसकी खूब खबर ली । 'जो बात तुम्हारे गुरुभाई साहब को नहीं मालूम है, वही बात' इन शब्दों ने तो उसका कलेजा छेद दिया होगा । मगर तुमसे बेहतर रंज होकर गया है, इस बात का खूब खयाल रखना ।"

मैं—आप इस बात की चिन्ता न कीजिए, देखिए मैं इन्हें कैसे छकाता हूँ । मगर वाह रे आपका कलेजा ! इतना कुछ हो जाने पर भी आपने अपनी जुबान से कुछ न कहा, बल्कि पुराने बर्ताव में बल तक न पड़ने दिया !

इन्द्रदेव—मैंने तो अपना मामला ईश्वर के हवाले कर दिया है ।

मैं—खैर, ईश्वर अवश्य इन्साफ करेगा । अच्छा तो अब मुझे भी बिदा कीजिए, क्योंकि अब इसके मुकाबले का बन्दोबस्त शीघ्र करना पड़ेगा ।

इन्द्रदेव—यह तो मैं फिर कहूँगा कि आप बेफिक्र न रहिए ।

थोड़ी देर तक और बातचीत करने के बाद मैं इन्द्रदेव से बिदा होकर अपने घर आया और उसी समय से दारोगा के मुकाबले का ध्यान मेरे दिमाग में चक्कर लगाने लगा ।

घर पहुँचकर मैंने सब हाल अपनी स्त्री से बयान किया और ताकीद की कि हरदम होशियार रहा करना । उन दिनों मेरे यहाँ कई शागिर्द भी रहा करते थे, जिन्हें मैं ऐयारी सिखाता था । उनसे भी यह सब हाल कहा और होशियार रहने की ताकीद की । उन शागिर्दों में गिरिजाकुमार नाम का एक लड़का बड़ा ही तेज और चंचल था, लोगों को धोखे में डाल देना तो उसके लिए मामूली बात थी । बातचीत के समय वह अपना चेहरा ऐसा बना लेता था कि अच्छे-अच्छे उसकी बातों में फँसकर बेवकूफ बन जाते थे । यह गुण उसे ईश्वर का दिया हुआ था जो बहुत कम ऐयारों में पाया जाता है । अतः गिरिजाकुमार ने मुझसे कहा कि "गुरुजी, यदि दारोगा वाला मामला आप मेरे सुपुर्द कर दीजिए, तो मैं बहुत ही प्रसन्न होऊँगा और उसे ऐसा छकाऊँगा कि वह भी याद करे । जमानिया में मुझे कोई पहचानता भी नहीं है, अतएव मैं अपना काम बड़े मजे में निकाल लूंगा ।"

मैंने उसे समझाया और कहा कि "कुछ दिन सब्र करो, जल्दी क्यों करते हो, फिर जैसा मौका होगा किया जायेगा ।" मगर उसने एक न मानी । हाथ जोड़कर और खुशामद करके, गिड़गिड़ा करके, जिस तरह हो सका, उसने आज्ञा ले ही ली और उसी दिन सब सामान दुरुस्त करके मेरे यहाँ से चला गया ।

अब मैं थोड़ा-सा हाल गिरिजाकुमार का बयान करूंगा कि इसने दारोगा के साथ क्या किया ।

आप लोगों को यह बात सुनकर ताज्जुब होगा कि मनोरमा असल में दारोगा साहब की रण्डी है। इन्हीं की बदौलत मायारानी के दरबार में उसकी इज्जत बढ़ी और इन्हीं की बदौलत उसने मायारानी को अपने फन्दे में फँसाकर बे-हिसाब दौलत पैदा की। पहले-पहल गिरिजाकुमार ने मनोरमा के मकान पर ही दारोगा से मुलाकात की थी।

दारोगा साहब मनोरमा से प्रेम रखते थे सही, मगर इसमें कोई शक नहीं कि इस प्रेम और ऐयाशी को इन्होंने बहुत अच्छे ढंग से छिपाया और बहुत आदमियों को मालूम न होने दिया तथा लोगों की निगाहों में साधु और ब्रह्मचारी ही बने रहे। स्वयं तो जमानिया में रहते थे, मगर मनोरमा के लिए इन्होंने काशी में एक मकान भी बनवा दिया था, दसवें-बारहवें दिन अथवा जब कभी समय मिलता, तेज घोड़े पर या रथ पर सवार होकर काशी चले जाते और दस-बारह घण्टे मनोरमा के मेहमान रहकर लौट जाते।

एक दिन दारोगा साहब आधी रात के समय मनोरमा के खास कमरे में बैठे हुए उसके साथ शराब पी रहे थे और साथ-ही-साथ हँसी-दिल्लगी का आनन्द भी लूट रहे थे। उन समय इन दोनों में इस तरह की बातें हो रही थीं—

दारोगा—जो कुछ मेरे पास है, सब तुम्हारा है। रुपये-पैसे के बारे में तुम्हें कभी तकलीफ न होने दूँगा! तुम बेशक अमीराना ठाठ के साथ रहो और खुशी से जिन्दगी बिताओ, गोपालसिंह अगर तिलिस्म का राजा है तो क्या हुआ, मैं भी तिलिस्म का दारोगा हूँ, उसमें दो-चार स्थान ऐसे हैं कि जिनकी खबर राजा साहब को भी नहीं, मगर मैं वहाँ बखूबी जा सकता हूँ और वहाँ की दौलत को अपनी मिल्कियत समझता हूँ। इसके अतिरिक्त मायारानी से भी मैंने तुम्हारी मुलाकात करा दी है और वह भी हर तरह से तुम्हारी खातिर करती ही है, फिर तुम्हें परवाह किस बात की है?

मनोरमा—बेशक मुझे किसी बात की परवाह नहीं है और आपकी बदौलत मैं बहुत खुश रहती हूँ, मगर मैं यह चाहती हूँ कि मायारानी के पास खुल्लम-खुल्ला मेरी आमद-रफ्त हो जाये। अभी गोपालसिंह के डर से बहुत लुक-छिपकर और नखरे-तिल्ले के साथ जाना पड़ता है।

दारोगा—फिर यह तो जरा मुश्किल बात है।

मनोरमा—मुश्किल क्या है? लक्ष्मीदेवी की जगह दूसरी औरत को राजरानी बना देना क्या साधारण काम था? सो तो आपने सहज ही में कर दिखाया और इस एक सहज काम के लिए कहते हैं कि मुश्किल है!

दारोगा—(मुस्कराकर) सो तो ठीक है, गोपालसिंह को मैं सहज में बैकुण्ठ पहुँचा सकता हूँ, मगर यह काम मेरे करने पर भी न हो सकेगा, उसके ऊपर मेरा हाथ सहज ही न उठेगा।

मनोरमा—(तिनककर)अब इतनी रहम-दिली से तो काम नहीं चलेगा! उनके मौजूद रहने से बहुत बड़ा हर्ज हो रहा है। अगर वह न रहें, तो बेशक आप खुद ही जमानिया और तिलिस्म का राज्य कर सकते हैं, मायारानी तो अपने को आपका तावेदार समझती है।

दारोगा—बेशक ऐसा ही है, मगर...

मनोरमा—और इसमें आपको कुछ करना भी न पड़ेगा, सब काम मायारानी ठीक कर लेंगी।

दारोगा—(चौंककर) क्या मायारानी का भी ऐसा इरादा है ?

मनोरमा—जी हाँ, वह इस काम के लिए तैयार हैं, मगर आपसे डरती हैं, आप आज्ञा दें, तो सब-कुछ ठीक हो जाये।

दारोगा—तो तुम उसी की तरफ से इस बात की कोशिश कर रही हो ?

मनोरमा—बेशक ! साथ ही इसमें आपका और अपना भी फायदा समझती हूँ, तब ऐसा कहती हूँ। (दारोगा के गले में हाथ डालकर) बस, आप आज्ञा दे दीजिए।

दारोगा—(मुस्कराकर) खैर, तुम्हारी खातिर मुझे मंजूर है, मगर एक काम करना कि मायारानी से और मुझसे इस बारे में बातचीत न कराना, जिसमें मौका पड़े तो मैं यह कहने के लायक रह जाऊँ कि मुझे इसकी कुछ भी खबर नहीं। तुम मायारानी की दिलजमई करा दो कि दारोगा साहब इस बारे में कुछ भी न बोलेंगे, तुम जो कुछ चाहो कर गुजरो, मगर साथ ही इसके इस बात का खयाल रखो कि सर्वसाधारण को किसी तरह का शक न होने पाये और लोग ये समझें कि गोपालसिंह अपनी मौत ही मरा है। मैं भी जहाँ तक हो सकेगा, छिपाने की कोशिश करूँगा।

मनोरमा—(खुश होकर) बस, अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि तुम मुझसे सच्चा प्रेम रखते हो।

इसके बाद दोनों में बहुत ही धीरे-धीरे कुछ बातें होने लगीं, जिन्हें गिरिजाकुमार सुन न सका। गिरिजाकुमार चोरों की तरह उस मकान में घुस गया था और छिपकर ये बातें सुन रहा था। जब मनोरमा ने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया, तब वह कमन्द लगाकर मकान के पीछे की तरफ उतर गया और धीरे-धीरे मनोरमा के अस्तबल में जा पहुँचा। अबकी दफे दारोगा यहाँ रथ पर सवार होकर आया था, वह रथ अस्तबल में था, घोड़े बँधे हुए थे और सारथी रथ के अन्दर सो रहा था। इससे कुछ दूर पर मनोरमा के और सब साईस तथा घसियारे वगैरह पड़े खर्राटे ले रहे थे।

बहुत होशियारी से गिरिजाकुमार ने दारोगा के सारथी को बेहोशी की दवा सुंघाकर बेहोश किया और उठाकर बाग के एक कोने में घनी झाड़ी के अन्दर छिपाकर रख आया, उसके कपड़े पहन लिए और चुपचाप रथ के अन्दर घुसकर सो रहा।

जब रात घण्टा-भर के लगभग बाकी रह गई, तब दारोगा साहब जमानिया जाने के लिए बिदा हुए और एक लौंडी ने अस्तबल में आकर रथ जोतने की आज्ञा सुनाई। नये सारथी अर्थात् गिरिजाकुमार ने रथ जोतकर तैयार किया और फाटक पर लाकर दारोगा साहब का इन्तजार करने लगा। शराब के नशे में चूर झूमते हुए एक लौंडी का हाथ थामे हुए दारोगा साहब भी आ पहुँचे। उनके रथ पर सवार होने के साथ ही रथ तेजी के साथ रवाना हुआ। सुबह की ठण्ठी हवा ने दारोगा साहब के दिमाग में खुनकी पैदा कर दी और वे रथ के अन्दर लेटकर बेखबर सो गये। गिरिजाकुमार ने जिधर चाहा, घोड़ों का मुँह फेर दिया और दारोगा साहब को लेकर रवाना हो गया। इस तौर पर उसे सूरत बदलने की भी जरूरत न पड़ी।

नहीं कह सकते कि मनोरमा के बाग में दारोगा का असली सारथी जब होश में आया होगा तो वहाँ कैसी खलबली मची होगी, मगर गिरिजाकुमार को इस बात की कुछ भी परवाह न थी, उसने रथ को रोहतासगढ़ की सड़क पर रवाना किया और चलते-चलते अपने बटुए में से मसाला निकालकर अपनी सूरत साधारण ढंग पर बदल ली, जिसमें होश आने पर दारोगा उसकी सूरत से जानकार न हो सके। इसके बाद उसने तेज दवा सुंघाकर दारोगा को और भी बेहोश कर दिया।

जब रथ एक घने जंगल में पहुँचा और सुबह की सफेदी भी निकल आई, तब गिरिजाकुमार रथ को सड़क पर से हटाकर जंगल में ले आया, जहाँ सड़क पर चलने वाले मुसाफिरों की निगाह न पड़े। घोड़ों को खोल लम्बी बागडोर के सहारे एक पेड़ के साथ बाँध दिया और दारोगा को पीठ पर लाद वहाँ से थोड़ी दूर पर एक घनी झाड़ी के अन्दर ले गया, जिसके पास ही एक पानी का झरना भी बह रहा था। घोड़े की रास से दारोगा साहब को एक पेड़ के साथ बाँध दिया और बेहोशी दूर करने की दवा सुँघाने के बाद थोड़ा पानी भी चेहरे पर डाला, जिसमें शराब का नशा ठण्डा हो जाये और तब हाथ में कोड़ा लेकर सामने खड़ा हो गया।

दारोगा साहब जब होश में आये तो बड़ी परेशानी के साथ चारों तरफ निगाह दौड़ाने लगे। अपने को मजबूर और एक अनजान आदमी को हाथ में कोड़ा लिए सामने खड़ा देख काँप उठे और बोले, "भाई, तुम कौन हो और मुझे इस तरह क्यों सता रखा है? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

गिरिजाकुमार—क्या करूँ, लाचार हूँ। मालिक का हुक्म ही ऐसा है।

दारोगा—तुम्हारा मालिक कौन है और उसने ऐसी आज्ञा तुम्हें क्यों दी?

गिरिजाकुमार—मैं मनोरमाजी का नौकर हूँ, और उन्होंने अपना काम ठीक करने के लिए मुझे ऐसी आज्ञा दी है।

दारोगा—(ताज्जुब से) तुम मनोरमा के नौकर हो! नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मैं उसके सब नौकरों को अच्छी तरह पहचानता हूँ।

गिरिजाकुमार—मगर आप मुझे नहीं पहचानते, क्योंकि मैं गुप्त रीति पर उनका काम किया करता हूँ और उनके मकान पर बराबर नहीं रहता!

दारोगा—शायद ऐसा ही हो, मगर विश्वास नहीं होता। खैर, यह बताओ कि उन्होंने किस काम के लिए ऐसा करने को कहा है?

गिरिजाकुमार—आपको विश्वास हो चाहे न हो, इसके लिए मैं लाचार हूँ, हाँ, उनके हुक्म की तामील किए बिना नहीं रह सकता। उन्होंने मुझे यह कहा है कि "दारोगा साहब मायारानी के लिए इस बात की इजाजत दे गये हैं कि वह जिस तरह हो सके, राजा गोपालसिंह को मार डाले, हम इस मामले में कुछ दखल न देंगे, मगर यह बात वह नशे में कह गये हैं, कहीं ऐसा न हो कि भूल जायें। अतः जिस तरह हो सके, तुम इस बात की एक चिट्ठी उनसे लिखाकर मेरे पास ले आओ, जिसमें उन्हें अपना वादा अच्छी तरह याद रहे।" अब आप कृपाकर इस मजमून की एक चिट्ठी लिख दीजिये कि मैं गोपालसिंह को मार डालने के लिए मायारानी को इजाजत देता हूँ।

दारोगा —(ताज्जुब का चेहरा बनाकर) न मालूम तुम क्या कह रहे हो ! मैंने मनोरमा से ऐसा कोई वादा नहीं किया !

गिरिजाकुमार — तो शायद मनोरमाजी ने मुझसे झूठ कहा होगा । मैं इस बात को तो नहीं जानता, हाँ, उन्होंने जो आज्ञा दी है सो आपसे कह रहा हूँ ।

इतना सुनकर दारोगा कुछ सोच में पड़ गया । मालूम होता था कि उसे गिरिजा-कुमार की बातों पर विश्वास हो रहा है, मगर फिर भी बात को टालना चाहता है ।

दारोगा—मगर ताज्जुब है कि मनोरमा ने मेरे साथ बुरा ऐसा बर्ताव क्यों किय और उसे जो कुछ कहना था वह स्वयं मुझसे क्यों नहीं कहा ?

गिरिजाकुमार—मैं इस बात का जवाब क्योंकर दे सकता हूँ ?

दारोगा—अगर मैं तुम्हारे कहे मुताबिक चिट्ठी लिखकर न दूँ तो ?

गिरिजाकुमार—तब इस कोड़े से आपकी खबर ली जायेगी और जिस तरह हो सकेगा, आपसे चिट्ठी लिखाई जायेगी । आप खुद समझ सकते हैं कि यहाँ आपका कोई मददगार नहीं पहुँच सकता ।

दारोगा — क्या तुमको या मनोरमा को इस बात का कुछ भी खयाल नहीं है कि चिट्ठी लिखकर भी छूट जाने के बाद मैं क्या कर सकता हूँ ?

गिरिजाकुमार—अब ये सब बातें तो आप उन्हीं से पूछियेगा ! मुझे जवाब देने की कोई जरूरत नहीं । मैं सिर्फ उनके हुक्म की तामील करना जानता हूँ । बताइए आप जल्दी चिट्ठी लिख देते हैं या नहीं, मैं ज्यादा देर तक इन्तजार नहीं कर सकता !

दारोगा—(झुंझलाकर और यह समझकर कि यह मुझ पर हाथ नहीं उठायेगा, केवल धमकाता है)अबे, मैं चिट्ठी किस बात की लिख दूँ !तूनेयहव्यर्थ की बकवक लगा रखी है !

इतना सुनते ही गिरिजाकुमार ने कोड़े जमाने शुरू किए । पाँच-सात ही कोड़े खाकर दारोगा बिलबिला उठा और हाथ जोड़कर बोला, "बस-बस, माफ करो, जो कुछ कहो, मैं लिख देने को तैयार हूँ !"

गिरिजाकुमार ने झट कलम-दवात और कागज अपने बटुए में से निकालकर दारोगा के सामने रख दिया और उसके हाथ की रस्सी ढीली कर दी । दारोगा ने उसकी इच्छानुसार चिट्ठी लिख दी । चिट्ठी को अपने कब्जे में कर लेने के बाद उसने दारोगा की तलाशी ली, कमर में खंजर और कुछ अशर्फियाँ निकलीं, वह भी ले लेने के बाद दारोगा के हाथ-पैर खोल दिए और बता दिया कि फलाँ जगह आपके रथ और घोड़े खड़े हैं, जाइए, सीधे कस-कसाकर अपने घर का रास्ता लीजिए ।

इतना कहकर गिरिजाकुमार चला गया और फिर दारोगा को मालूम न हुआ कि वह कहाँ गया और क्या हुआ ।

12

इतना किस्सा कहकर दिलीपशाह ने दम लिया और फिर इस तरह कहना शुरू किया—

"गिरिजाकुमार ने अपना काम करके दारोगा का पीछा नहीं छोड़ा, बल्कि उसे यह जानने का शौक पैदा हुआ कि देखें, अब दारोगा साहब क्या करते हैं। जमानिया की तरफ बिदा होते हैं, या पुनः मनोरमा के घर जाते हैं, या अगर मनोरमा के घर जाते हैं तो देखना चाहिए कि किस ढंग की बातें होती हैं और कैसी रंगत निकलती है।"

यद्यपि दारोगा का चित्त दुविधा में पड़ा हुआ था, परन्तु उसे इस बात का कुछ-कुछ विश्वास जरूर हो गया था कि मेरे साथ ऐसा खोटा बर्ताव मनोरमा ने ही किया है, दूसरे किसी को क्या मालूम है कि मुझमें उसमें किस समय क्या बातें हुईं ! मगर साथ ही इसके वह इस बात को भी जरूर सोचता था कि मनोरमा ने ऐसा क्यों किया ? मैं तो कभी उसकी बात से किसी तरह इनकार नहीं करता था। जो कुछ भी उसने कहा, उस बात की इजाजत तुरन्त दे दी, अगर वह चिट्ठी लिख देने के लिए कहती तो चिट्ठी भी लिख देता, फिर उसने ऐसा क्यों किया···?

खैर, जो कुछ भी हो, दारोगा साहब अपने हाथ से रथ जोतकर सवार हुए और मनोरमा के पास न जाकर सीधे जमानिया की तरफ रवाना हो गये। यह देखकर गिरिजाकुमार ने उस समय उनका पीछा छोड़ दिया और मेरे पास चला आया। जो कुछ मामला हुआ था, खुलासा बयान करने के बाद दारोगा साहब की लिखी हुई चिट्ठी दी और फिर मुझसे बिदा होकर जमानिया की तरफ चला गया।

मुझे यह जानकर हौल-सी पैदा हो गई कि बेचारे गोपालसिंह की जान मुफ्त में ही जाना चाहती है। मैं सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए, जिसमें गोपालसिंह की जान बचे। एक दिन और रात तो इसी सोच में पड़ा रह गया और अन्त में यह निश्चय किया कि इन्द्रदेव से मिलकर यह सब हाल कहना चाहिए। दूसरा दिन मुझे घर का इन्तजाम करने में लग गया, क्योंकि दारोगा की दुश्मनी के खयाल से मुझे घर की हिफाजत का पूरा-पूरा इन्तजाम करके ही तब बाहर जाना जरूरी था, अतः मैंने अपनी स्त्री और बच्चे को गुप्त रीति से अपनी ससुराल अर्थात् स्त्री के माँ-बाप के घर पहुँचा दिया और उन लोगों को जो कुछ समझाना था, सो भी समझा दिया। इसके बाद घर का इन्तजाम करके इन्द्रदेव की तरफ रवाना हुआ।

जब इन्द्रदेव के मकान पर पहुँचा तो देखा कि वे सफर की तैयारी कर रहे हैं। पूछने पर जवाब मिला कि गोपालसिंह बीमार हो गये हैं, उन्हें देखने के लिए ही जाते हैं। सुनने के साथ ही मेरा दिल धड़क उठा और मेरे मुँह से ये शब्द निकल पड़े—"हाय, अफसोस ! कम्बख्त दुश्मन लोग अपना काम कर गये !"

मेरी बात सुनकर इन्द्रदेव चौंक पड़े और उन्होंने पूछा, "आपने यह क्या कहा ?" दो-चार खिदमतगार वहाँ मौजूद थे। उन्हें बिदा करके मैंने गिरिजाकुमार का सब हाल इन्द्रदेव से बयान किया और दारोगा साहब की लिखी हुई वह चिट्ठी उनके हाथ पर रख

दी। उसे देखकर और सब हाल सुनकर इन्द्रदेव बेचैन हो गए, आधे घण्टे तक तो ऐसा मालूम होता था कि उन्हें तन-बदन की सुध नहीं है इसके बाद उन्होंने अपने को सम्हाला और मुझसे कहा—"बेशक, दुश्मन लोग अपना काम कर गए, मगर तुमने भी बहुत बड़ी भूल की, कि दो दिन की देर कर दी और आज मेरे पास खबर करने के लिए आये! अभी दो ही घड़ी बीती हैं कि मुझे उनके बीमार होने की खबर मिली है, ईश्वर ही कुशल करें!"

इसके जवाब में चुप रह जाने के सिवाय मैं कुछ भी न बोल सका और अपनी भूल स्वीकार कर ली। कुछ और बातचीत होने के बाद इन्द्रदेव ने मुझसे कहा, "खैर, जो कुछ होना था सो हो गया, अब तुम भी मेरे साथ जमानिया चलो, वहाँ पहुँचने तक अगर ईश्वर ने कुशल रखी तो जिस तरह बन पड़ेगा, उनकी जान बचायेंगे!"

अतः हम दोनों आदमी तेज घोड़ों पर सवार होकर जमानिया की तरफ रवाना हो गये और साथियों को पीछे से आने की ताकीद कर गए।

जब हम लोग जमानिया के करीब पहुँचे और जमानिया सिर्फ दो कोस की दूरी पर रह गया तो सामने से कई देहाती आदमी रोते और चिल्लाते हुए आते दिखाई पड़े। हम लोगों ने घबराकर रोने का सबब पूछा तो उन्होंने हिचकियाँ लेकर कहा कि हमारे राजा गोपालसिंह हम लोगों को छोड़कर बैकुण्ठ चले गये।

सुनने के बाद हम लोगों का कलेजा धक् हो गया। आगे बढ़ने की हिम्मत न पड़ी और सड़क के किनारे एक घने पेड़ के नीचे जाकर घोड़ों पर से उतर पड़े। दोनों घोड़ों को पेड़ के साथ बाँध दिया और जीनपोश बिछाकर बैठ गये, आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। घण्टे भर तक हम दोनों में किसी तरह की बातचीत न हुई, क्योंकि चित्त बड़ा ही दुःखी हो गया था। उस समय दिन अनुमान तीन घण्टे के करीब बाकी था। हम दोनों आदमी पेड़ के नीचे बैठे आँसू बहा रहे थे कि यकायक जमानिया से लौटता हुआ गिरिजाकुमार भी उसी जगह आ पहुँचा। उस समय उसकी सूरत बदली हुई थी, इसलिए हम लोगों ने तो नहीं पहचाना, परन्तु वह हम लोगों को देखकर स्वयं पास चला आया और अपना गुप्त परिचय देकर बोला, "मैं गिरिजाकुमार हूँ।"

इन्द्रदेव—(आँसू पोंछकर) अच्छे मौके पर तुम आ पहुँचे। यह बताओ कि क्या वास्तव में राजा गोपालसिंह मर गये?

गिरिजाकुमार—जी हाँ, उनकी चिता मेरे सामने लगाई गई और देखते-ही-देखते उनकी लाश पंचतत्व में मिल गई, परन्तु अभी तक मेरे दिल को विश्वास नहीं होता कि राजा साहब मर गये।

इन्द्रदेव—(चौंककर) सो क्यों? यह कैसी बात?

गिरिजाकुमार—जी हाँ, हर तरह का रंग-ढंग देखकर मेरा दिल यह कबूल नहीं करता कि वे मर गये।

मैं—क्या तुम्हारी तरह वहाँ और भी किसी को इस बात का शक है?

गिरिजाकुमार—नहीं, ऐसा तो नहीं मालूम होता, बल्कि मैं तो समझता हूँ कि खास दारोगा साहब को भी उनके मरने का विश्वास है, मगर क्या किया जाये. मुझे

विश्वास नहीं होता और दिल बार-बार यही कहता है कि राजा साहब मरे नहीं।

इन्द्रदेव—आखिर, तुम क्या सोचते हो और इस बात का तुम्हारे पास क्या सबूत है ? तुमने कौन-सी ऐसी बात देखी, जिससे तुम्हारे दिल को अभी तक उनके मरने का विश्वास नहीं होता ?

गिरिजाकुमार—और बातों के अतिरिक्त दो बातें तो बहुत ही ज्यादा शक पैदा करती हैं। एक तो यह है कि कल दो घण्टे रात रहते मैंने हरनामसिंह और बिहारीसिंह को एक कँगले की लाश उठाये हुए चोर दरवाजे की राह से महल के अन्दर जाते हुए देखा, फिर बहुत टोह लेने पर भी लाश का कुछ पता न लगा और न वह लाश लौटाकर महल के बाहर ही निकाली गई, तो क्या वह महल ही में हजम हो गई ? उसके बाद केवल राजा साहब की लाश बाहर निकली।

इन्द्रदेव—जरूर, यह शक करने की जगह है।

गिरिजाकुमार—इसके अतिरिक्त राजा गोपालसिंह की लाश को बाहर निकालने और जलाने में हद दर्जे की फुर्ती और जल्दबाजी की गई, यहाँ तक कि रियासत के उमरा लोगों के भी इकट्ठा होने का इन्तजार नहीं किया गया। एक साधारण आदमी के लिए भी इतनी जल्दी नहीं की जाती, वे तो राजा ही ठहरे ! हाँ, एक बात और भी सोचने लायक है। चिता पर नियम के विरुद्ध लाश का मुँह खोले बिना ही क्रिया कर दी गई और इस बारे में बिहारीसिंह और हरनामसिंह तथा लौंडियों ने यह बहाना किया कि "राजा साहब की सूरत देख मायारानी बहुत बेहाल हो जायेंगी, इसलिए मुर्दे का मुँह खोलने की कोई जरूरत नहीं।" और लोगों ने इन बातों पर खयाल किया हो चाहे न किया हो, मगर मेरे दिल पर तो इन बातों ने बहुत बड़ा असर किया और यही सबब है कि मुझे राजा साहब के मरने का विश्वास नहीं होता।

इन्द्रदेव—(कुछ सोचकर) शक तो तुम्हारा बहुत ठीक है, अच्छा यह बताओ कि तुम इस समय कहाँ जा रहे थे ?

गिरिजाकुमार—(मेरी तरफ इशारा करके) गुरुजी के पास यही सब हाल कहने के लिए जा रहा था।

मैं—इस समय मनोरमा कहाँ है सो बताओ !

गिरिजाकुमार—जमानिया में मायारानी के पास है।

मैं—तुम्हारे हाथ से छूटने के बाद दारोगा और मनोरमा में कैसी निपटी इसका कुछ हाल मालूम हुआ ?

गिरिजाकुरार—जी हाँ, मालूम हुआ। उस बारे में बहुत बड़ी दिल्लगी हुई जो मैं निश्चिन्ती के साथ बयान करूँगा।

इन्द्रदेव—अच्छा, यह तो बताओ कि गोपालसिंह के बारे में तुम्हारी क्या राय है और अब हम लोगों को क्या करना चाहिए ?

गिरिजाकुमार—इस बारे में मैं एक अदना और नादान आदमी आपको क्या राय दे सकता हूँ ! हाँ, मुझे जो कुछ आज्ञा हो सो करने के लिए जरूर तैयार हूँ।

इतनी बातें हो ही रही थीं कि सामने जमानिया की तरफ से दारोगा औ

जयपाल घोड़ों पर सवार आते हुए दिखाई पड़े, जिन्हें देखते ही गिरिजाकुमार ने कहा, "देखिए, ये दोनों शैतान कहीं जा रहे हैं, इसमें भी कोई भेद जरूर है, यदि आज्ञा हो तो मैं इनके पीछे जाऊँ।"

दारोगा और जयपाल को देखकर हम दोनों पेड़ की तरफ घूम गये, जिसमें वे हमें पहचान न सकें। जब वे आगे निकल गए, तब मैंने अपना घोड़ा गिरिजाकुमार को देकर कहा, "तुम जल्द सवार होकर इन दोनों का पीछा करो।" और गिरिजाकुमार ने ऐसा ही किया।

चन्द्रकान्ता सन्तति

चौबीसवाँ भाग

1

दिन घंटे भर से ज्यादा चढ़ चुका है। महाराज सुरेन्द्रसिंह सुनहरी चौकी पर बैठे दातुन कर रहे हैं और जीतसिंह, तेजसिंह, इन्द्रजीतसिंह, आनन्दसिंह, देवीसिंह, भूतनाथ और राजा गोपालसिंह उनके सामने की तरफ बैठे हुए इधर-उधर की बातें कर रहे हैं। रात महाराज की तबीयत कुछ खराब थी, इसलिए आज स्नान-संध्या में देर हो गई है।

सुरेन्द्रसिंह—(गोपालसिंह से) गोपाल, इतना तो हम जरूर कहेंगे कि गद्दी पर बैठने के बाद तुमने कोई बुद्धिमानी का काम नहीं किया, बल्कि हर एक मामले में तुमसे भूल ही होती गई है।

गोपालसिंह—निःसन्देह ऐसा ही है और उस लापरबाही का नतीजा भी मुझे वैसा ही भोगना पड़ा।

वीरेन्द्रसिंह—धोखा खाये बिना कोई होशियार नहीं होता। कैद से छूटने के बाद तुमने बहुत से अनूठे काम भी किये हैं। हाँ, यह तो बताओ कि दारोगा और जयपाल के लिए तुमने क्या सजा तजवीज की है?

गोपालसिंह—इस बारे में दिन-रात सोचा ही करता हूँ मगर कोई सजा ऐसी नहीं सूझती जो उन लोगों के लायक हो और जिससे मेरा गुस्सा शान्त हो।

सुरेन्द्रसिंह—(मुस्कुरा कर) मैं तो समझता हूँ कि यह काम भूतनाथ के हवाले किया जाय, यही उन शैतानों के लिए कोई मजेदार सजा तजवीज करेगा। (भूतनाथ की तरफ देख के) क्यों जी, तुम कुछ बात सकते हो?

भूतनाथ—(हाथ जोड़ के) उनके योग्य क्या सजा है इसका बताना तो बड़ा ही कठिन है, मगर एक छोटी सी सजा मैं जरूर बात सकता हूँ।

गोपालसिंह—वह क्या?

भूतनाथ—पहले तो उन्हें कच्चा पारा खिलाना चाहिए जिसकी गरमी से उन्हें सख्त तकलीफ हो और तमाम बदन फूट जाय, जब जख्म खूब मजेदार हो जायँ तो नित्य लाल मिर्च और नमक का लेप चढ़ाया जाय। जब तक वे दोनों जीते रहें तब तक ऐसा ही होता रहे।

सुरेन्द्रसिंह—सजा हलकी तो नहीं है, मगर किसी की आत्मा···

गोपालसिंह—(बात काटकर) खैर उन कम्बख्तों के लिए आप कुछ न सोचिये, उन्हें मैं जमानिया ले जाऊँगा और उसी जगह उनकी मरम्मत करूँगा।

वीरेन्द्रसिंह—इन सब रञ्ज देने वाली बातों का जिक्र जाने दो, यह बताओ कि अगर हम लोग जमानिया के तिलिस्म की सैर करना चाहें तो कैसे कर सकते हैं?

गोपालसिंह—यह तो मैं आप ही निश्चय कर चुका हूँ कि आप लोगों को वहाँ की सैर जरूर कराऊँगा।

इन्द्रजीतसिंह—(गोपाल से) हाँ, खूब याद आया। वहाँ के बारे में मुझे भी दो-एक बातों का शक बना हुआ है।

गोपालसिंह—वह क्या?

इन्द्रजीतसिंह—एक तो यह बताइए कि तिलिस्म के अन्दर जिस मकान में पहले पहल आनन्दसिंह फँसे थे, उस मकान में सिंहासन पर बैठी हुई लाड़िली की मूरत कहाँ से आई[1] और उस आईने (शीशे) वाले मकान में, जिसमें कमलिनी, लाड़िली तथा हमारे ऐयारों की सी मूरतों ने हमें धोखा दिया, क्या था? जब हम दोनों उसके अन्दर गये तो उन मूरतों को देखा जो नालियों पर चला करती थीं, मगर ताज्जुब कि···

गोपालसिंह—(बात काट कर) वह सब कार्रवाई मेरी थी। एक तौर पर मैं आप लोगों को कुछ-कुछ तमाशा भी दिखाता जाता था। वे सब मूरतें बहुत पुराने जमाने की बनी हुई हैं मगर मैंने उन पर ताजा रंग-रोगन चढ़ाकर कमलिनी, लाड़िली वगैरह की सूरतें बना दी थीं।

इन्द्रजीतसिंह—ठीक है। मेरा भी यही खयाल था। अच्छा, एक बात और बताइये!

गोपालसिंह—पूछिये।

इन्द्रजीतसिंह—जिस तिलिस्मी मकान में हम लोग हँसते-हँसते कूद पड़े थे उसमें कमलिनी के कई सिपाही भी जा फँसे थे और···

गोपलसिंह—जी हाँ, ईश्वर की कृपा से वे लोग कैदखाने में जीते-जागते पाये गये और इस समय जमानिया में मौजूद हैं। उन्हीं में से एक आदमी को दारोगा ने गठरी बाँध कर रोहतासगढ के किले में छोड़ा था जब मैं कृष्ण जिन्न बनकर पहले-पहले वहाँ गया था।[1]

इन्द्रजीतसिंह—यहबहुत अच्छा हुआ। उन बेचारों की तरफ से मुझे बहुत ही खुटका रहता था।

वीरेन्द्रसिंह—(गोपालसिंह से) आज दलीपशाह की जुबानी जो कुछ उसका किस्सा सुनने में आया उससे हमें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। यद्यपि उसका किस्सा अभी तक समाप्त नहीं हुआ और समाप्त होने तक शायद और भी बहुत-सी बातें नई मालूम हों,

---

1. देखिए नौवां भाग, दूसरा बयान।
2. देखिए सोलहवाँ भाग, छठवाँ बयान।
3. देखिए बारहवाँ भाग, सातवाँ बयान।

परन्तु इस बात का ठीक-ठीक जवाब तो तुम्हारे सिवाय दूसरा शायद कोई नहीं दे सकता कि तुम्हें कैद करने में मायारानी ने कौन सी ऐसी कार्रवाई की कि किसी को पता न लगा और सभी लोग धोखे में पड़ गये, यहाँ तक कि तुम्हारी समझ में भी कुछ न आया और तुम चारपाई पर से उठाकर कैदखाने में डाल दिये गये।

गोपालसिंह—इसका ठीक-ठीक जवाब तो मैं नहीं दे सकता। कई बातों का पता मुझे भी नहीं लगा, क्योंकि मैं ज्यादा देर तक बीमारी की अवस्था में पड़ा नहीं रहा, बहुत जल्द बेहोश कर दिया गया। मैं क्योंकर जान सकता था कि कम्बख्त मायारानी दवा के बदले मुझे जहर पिला रही है, मगर मुझको विश्वास है कि दलीपशाह को इसका हाल बहुत ज्यादा मालूम हुआ होगा।

जीतसिंह—खैर आज के दरबार में और हाल भी मालूम हो जायगा।

कुछ देर तक इसी तरह की बातें होती रहीं। जब महाराज उठ गये तब सब लोग अपने ठिकाने चले गये और कारिन्दे लोग दरबार की तैयारी करने लगे।

भोजन आदि से छुट्टी पाने के बाद दोपहर होते-होते महाराज दरबार में पधारे। आज का दरबार कल की तरह रौनकदार था और आदमियों की गिनती बनिस्बत कल के आज बहुत ज्यादा थी।

महाराज की आज्ञानुसार दलीपशाह ने इस तरह अपना किस्सा बयान करना शुरू किया—

"मैं बयान कर चुका हूँ कि मैंने अपना घोड़ा गिरिजाकुमार को देकर दारोगा का पीछा करने के लिए कहा, अतः जब वह दारोगा के पीछे चला गया तब हम दोनों में सलाह होने लगी कि अब क्या करना चाहिए, अन्त में यह निश्चय हुआ कि इस समय जमानिया न जाना चाहिए, बल्कि घर लौट चलना चाहिए।

"उसी समय इन्द्रदेव के साथी लोग भी वहाँ आ पहुँचे। उनमें से एक का घोड़ा मैंने ले लिया और फिर हम लोग इन्द्रदेव के मकान की तरफ रवाना हुए। मकान पर पहुँचकर इन्द्रदेव ने अपने कई जासूसों और ऐयारों को हर एक बातए का पता लगाने के लिए जमानिया की तरफ रवाना किया किया। मैं भी अपने घर जाने को तैयार हुआ, मगर इन्द्रदेव ने मुझे रोक दिया।

"यद्यपि मैं कह चुका हूँ कि अपने किस्से में भूतनाथ का हाल बयान न करूँगा तथापि मौका पड़ने पर कहीं-कहीं लाचारी से उसका जिक्र करना ही पड़ेगा, अतः इस जगह यह कह देना जरूरी जान पड़ता है कि इन्द्रदेव के मकान पर ही मुझे इस बात की खबर लगी कि भूतनाथ की स्त्री बहुत बीमार हैं। मेरे एक शागिर्द ने आकर यह संदेशा दिया और साथ ही इसके यह भी कहा कि आपकी स्त्री उसे देखने के लिए जाने की आज्ञा माँगती है।

"भूतनाथ की स्त्री शान्ता बड़ी नेक और स्वभाव की बहुत अच्छी है। मैं भी उसे बहिन की तरह मानता था इसलिए उसकी बीमारी का हाल सुनकर मुझे तरद्दुद हुआ और मैंने अपनी स्त्री को उसके पास जाने की आज्ञा दे दी तथा खबर लगी कि मेरे स्त्री शान्ता को लेकर अपने घर आ गई।

"आठ-दस दिन बीत जाने पर भी न तो जमानिया से कुछ खबर आई और न गिरिजाकुमार ही लौटा। हाँ रियासत की तरफ से एक चिट्ठी न्यौते की जरूर आई, थी जिसके जवाब में इन्द्रदेव ने लिख दिया कि गोपालसिंह से और मुझसे दोस्ती थी सो वह तो चल बसे, अब उनकी क्रिया मैं अपनी आँखों से देखना पसन्द नहीं करता।

"मेरी इच्छा तो हुई कि गिरिजाकुमार का पता लगाने के लिए मैं खुद जाऊँ, मगर इन्द्रदेव ने कहा कि अभी दो-चार दिन और राह देख लो, कहीं ऐसा न हो कि तुम उसकी खोज में जाओ और वह यहाँ आ जाय। अतः मैंने भी ऐसा ही किया।

"बारहवें दिन गिरिजाकुमार हम लोगों के पास आ पहुँचा। उसके साथ अर्जुनसिंह भी थे जो हम लोगों की मण्डली में एक अच्छे ऐयार गिने जाते थे, मगर भूतनाथ और इनके बीच खूब ही चख-चख चली आती थी। (महाराज और जीतसिंह की तरफ देखकर) आपने सुना ही होगा कि इन्होंने एक दिन भूतनाथ को धोखा देकर कुएँ में धकेल दिया था और उसके बटुए में से कई चीजें निकाल ली थीं।

जीतसिंह—हाँ मालूम है, मगर इस बात का पता नहीं लगा कि अर्जुन ने भूतनाथ के बटुए में से क्या निकाला था।

इतना कहकर जीतसिंह ने भूतनाथ की तरफ देखा।

भूतनाथ—(महाराज की तरफ देखकर) मैंने जिस दिन अपना किस्सा सरकार को सुनाया था उस दिन अर्ज किया था कि जब वह कागज का मुट्ठा मेरे पास से चोरी गया तो मुझे बड़ा ही तरद्दुद हुआ, उसके बहुत दिनों के बाद राजा गोपालसिंह के मरने की खबर उड़ी[1] इत्यादि। यह वही कागज का मुट्ठा था जो अर्जुनसिंह ने मेरे बटुए में से निकाल लिया था, तथा इसके साथ और भी कई कागज थे। असल बात यह है कि उन चिट्ठियों की नकल के मैंने दो मुट्ठे तैयार किये थे, एक तो हिफाजत के लिए अपने मकान में रख छोड़ा था और दूसरा मुट्ठा समय पर काम लेने के लिए हरदम अपने बटुए में रखता था। मुझे गुमान था कि अर्जुनसिंह ने जो मुट्ठा ले लिया था उसी से मुझे नुकसान पहुँचा मगर अब मालूम हुआ कि ऐसा नहीं हुआ, अर्जुनसिंह ने न तो वह किसी को दिया और न उससे मुझे कुछ नुकसान पहुँचा। हाल में जो दूसरा मुट्ठा जयपाल ने मेरे घर से चुरवा लिया था, उसी ने तमाम बखेड़ा मचाया।

जीतसिंह—ठीक है (दलीपशाह की तरफ देख के) अच्छा, तब क्या हुआ?

दलीपशाह ने फिर इस तरह कहना शुरू किया—

दलीपशाह—गिरिजाकुमार और अर्जुनसिंह में एक तरह की नातेदारी भी है परन्तु उसका खयाल न करके ये दोनों आपस में दोस्ती का बर्ताव रखते थे। खैर, उस समय दोनों के आ जाने से हम लोगों को खुशी हुई और इस तरह बातें होने लगीं—

मैं—गिरिजाकुमार, तुमने तो बहुत दिन लगा दिए!

गिरिजाकुमार—जी हाँ, मुझे तो और भी कई दिन लग जाते मगर इत्तिफाक से अर्जुनसिंह से मुलाकात हो गई और इनकी मदद से मेरा काम बहुत जल्द हो गया।

---

1. देखिए इक्कीसवाँ भाग, दूसरा बयान।

मैं—खैर यह बताओ कि तुमने किन-किन बातों का पता लगाया और मुझसे बिदा होकर तुम दारोगा के पीछे कहाँ तक गए ?

गिरिजाकुमार—जयपाल को साथ लिए हुए दारोगा सीधे मनोरमा के मकान पर चला गया। उस समय मनोरमा वहाँ न थी, वह दारोगा के आने के तीन पहर बाद रात के समय अपने मकान पर पहुँची। मैं भी छिपकर किसी-न-किसी तरह उस मकान में दाखिल हो गया। रात को दारोगा और मनोरमा में खूब हुज्जत हुई, मगर अन्त में मनोरमा ने उसे विश्वास दिला दिया कि राजा गोपालसिंह को मारने के विषय में उससे जबर्दस्ती पुर्जा लिखा लेने वाला मेरा आदमी न था बल्कि वह कोई और था जिसे मैं नहीं जानती। दारोगा ने बहुत सोच-विचार कर विश्वास कर लिया कि यह काम भूतनाथ का है। इसके बाद उन दोनों में जो कुछ बातें हुईं उनसे यही मालूम हुआ कि गोपालसिंह जरूर मर गये और दारोगा को भी यही विश्वास है, मगर मेरे दिल में यह बात नहीं बैठती, खैर जो कुछ हो। उसके दूसरे दिन मनोरमा के मकान में से एक कैदी निकाला गया जिसे बेहोश करके जयपाल ने बेगम के मकान में पहुँचा दिया। मैंने उसे पहचानने के लिए बहुत कुछ उद्योग किया मगर पहचान न सका क्योंकि उसे गुप्त रखने में उन्होंने बहुत कोशिश की थी, मगर मुझे गुमान होता है कि यह जरूर बलभद्रसिंह होगा। अगर वह दो-दिन भी बेगम के मकान में रहता तो मैं जरूर निश्चय कर लेता मगर न मालूम किस वक्त और कहाँ बेगम ने उसे पहुँचवा दिया कि मुझे इस बात का कुछ भी पता न लगा, हाँ इतना जरूर मालूम हो गया कि दारोगा भूतनाथ को फँसाने के फेर में पड़ा हुआ है और चाहता है किसी तरह भूतनाथ मार डाला जाय।

"इन कामों से छुट्टी पाकर दारोगा अकेला अर्जुनसिंह के मकान पर गया, इनसे बड़ी नरमी और खुशामद के साथ मुलाकात की, और देर तक मीठी-मीठी बातें करता रहा जिसका तत्व यह था कि तुम दलीपशाह को साथ लेकर मेरी मदद करो और जिस तरह हो सके, भूतनाथ को गिरफ्तार करा दो। अगर तुम दोनों की मदद से भूतनाथ गिरफ्तार हो जायगा तो मैं इसके बदले में दो लाख रुपया तुम दोनों को इनाम दूँगा, इसके अतिरिक्त वह आपके नाम का एक पत्र भी अर्जुनसिंह को दे गया।

"अर्जुनसिंह ने दारोगा का वह पत्र निकाल कर मुझे दिया, मैंने पढ़कर इन्द्रदेव के हाथ में दे दिया और कहा, "इसका मतलब भी वही है जो गिरिजाकुमार ने अभी बयान किया है परन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि मैं भूतनाथ के साथ किसी तरह की बुराई करूँ, हाँ, दारोगा के साथ दिल्लगी अवश्य करूँगा।"

"इसके बाद कुछ देर तक और भी बातचीत होती रही। अन्त में गिरिजा-कुमार ने कहा कि मेरे इस सफर का नतीजा कुछ भी न निकला और न मेरी तबीयत ही भरी, आप कृपा करके मुझे जमानिया जाने की इजाजत दीजिए।

"गिरिजाकुमार की दरखास्त मैंने मंजूर कर ली। उस दिन रात-भर हम लोग इन्द्रदेव के यहाँ रहे, दूसरे दिन गिरिजाकुमार जमानिया की तरफ रवाना हुआ और मैं अर्जुनसिंह को साथ लेकर अपने घर मिर्जापुर चला आया।

"घर पहुँचकर मैंने भूतनाथ की स्त्री शान्ता को देखा जो बीमार तथा बहुत ही

कमजोर और दुबली हो रही थी, मगर उसकी सब बीमारी भूतनाथ की नादानी के सबब से थी और वह चाहती थी कि जिस तरह भूतनाथ ने अपने को मरा हुआ हुआ मशहूर किया था उसी तरह वह भी अपने और अपने छोटे बच्चे के बारे में मशहूर करे। उसकी अवस्था पर मैं बड़ा दुःखी हुआ और जो कुछ वह चाहती थी, उसका प्रबन्ध मैंने कर दिया। यही सबब था कि भूतनाथ ने अपने छोटे बच्चे के विषय में धोखा खाया जिसका हाल महाराज तथा राजकुमारों को मालूम है, मगर सर्वसाधारण के लिए मैं इस समय उसका जिक्र न करूँगा। इसका खुलासा हाल भूतनाथ अपनी जीवनी में बयान करेगा। खैर—

"घर पहुँचकर मैंने दिल्लगी के तौर पर भूतनाथ के विषय में दारोगा से लिखा-पढ़ी शुरू कर दी मगर ऐसा करने में मेरा असल मतलब यह था कि मुलाकात होने पर मैं वह सब पत्र, जो इस समय हरनामसिंह के पास मौजूद हैं भूतनाथ को दिखाऊँ और उसे होशियार कर दूँ, अतः अन्त में मैंने उसे (दारोगा को) साफ-साफ जवाब दे दिया।"

यहाँ तक अपना किस्सा कहकर दलीपशाह ने हरनामसिंह की तरफ देखा और हरनामसिंह ने सब पत्र जो एक छोटी-सी सन्दूकड़ी में बन्द थे महाराज के आगे पेश किये जिसे मामूली तौर पर सभी ने देखा। इन चिट्ठियों से दारोगा की बेईमानी के साथ-ही साथ यह भी साबित होता था कि भूतनाथ ने दलीपशाह पर व्यर्थ ही कलंक लगाया। महाराज की आज्ञानुसार वे चिट्ठियाँ कम्बख्त दारोगा के आगे फेंक दी गईं और इसके बाद दलीपशाह ने फिर इस तरह बयान करना शुरू किया—

"मेरे और दारोगा के बीच में जो कुछ लिखा-पढ़ी हुई थी, उसका हाल किसी तरह भूतनाथ को मालूम हो गया या शायद वह स्वयं दारोगा से जाकर मिला और दारोगा ने मेरी चिट्ठियाँ दिखाकर इसे मेरा दुश्मन बना दिया तथा खुद भी मेरी बर्बादी के लिए तैयार हो गया। इस तरह दारोगा की दुश्मनी का वह पौधा जो कुछ दिनों के लिए मुरझा गया था फिर से लहलहा उठा और हरा-भरा हो गया, और साथ ही इसके मैं भी हर तरह से दारोगा का मुकाबला करने के लिए तैयार हो गया।

"कई दिन के बाद गिरिजाकुमार जमानिया से लौटा तो उसकी जुबानी मालूम हुआ कि मायारानी के दिन बड़ी खुशी और चहल-पहल के साथ गुजर रहे हैं। मनोरमा और नागर के अतिरिक्त धनपत नामकी एक और औरत भी है जिसे मायारानी बहुत प्यार करती है मगर उस पर मर्द होने का शक होता है। इसके अतिरिक्त यह भी मालूम हुआ कि दारोगा ने मेरी गिरफ्तारी के लिए तरह-तरह के बन्दोबस्त कर रक्खे हैं और भूतनाथ भी दो-तीन दफे उसके पास आता-जाता दिखाई दिया है, मगर यह बात निश्चय रूप से मैं नहीं कह सकता कि वह जरूर भूतनाथ ही था।

"एक दिन संध्या के समय जब दारोगा अपने बाग में टहल रहा था तो भेष बदले हुए गिरिजाकुमार पिछली दीवार लाँघ के उसके पास जा पहुँचा और बेखौफ सामने खड़ा होकर बोला, "दारोगा साहब, इस समय आप मुझे गिरफ्तार करने का खयाल भी न कीजिएगा क्योंकि मैं आपके कब्जे में नहीं आ सकता, साथ ही इसके यह भी समझ रखिए कि मैं आपकी जान लेने के लिए नहीं आया हूँ, बल्कि आपसे दो-चार

बातें करने के लिए आया हूँ।"

दारोगा घबरा गया और उसकी बातों का कुछ विशेष जवाब न देकर बोला, "खैर कहो, क्या कहते हो।"

गिरिजाकुमार—मनोरमा और मायारानी के फेर में पड़कर तुमने राजा गोपालसिंह को मरवा डाला, इसका नतीजा एक-न-एक दिन तुम्हें भोगना ही पड़ेगा। मगर अब मैं यह पूछता हूँ कि जिनके डर से तुमने लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को कैद कर रखा था वे तो मर ही गये। अब अगर तुम उन दोनों को छोड़ भी दोगे तो तुम्हारा क्या बिगड़ेगा?

दारोगा—(ताज्जुब में आकर) मेरी समझ में नहीं आता कि तुम कौन हो और क्या कह रहे हो?

गिरिजाकुमार—मैं कौन हूँ यह जानने की तुम्हें कोई जरूरत नहीं, मगर क्या तुम कह सकते हो कि जो कुछ मैंने कहा है वह सब झूठ है?

दारोगा—बेशक झूठ है! तुम्हारे पास इन बातों का क्या सबूत है?

गिरिजाकुमार—जयपाल और हेलासिंह के बीच में जो कुछ लिखा-पढ़ी हुई है उसके अतिरिक्त वह चिट्ठी इस समय भी मेरे पास मौजूद है जो राजा गोपालसिंह को मार डालने के लिए तुमने मनोरमा को लिख दी थी।

दारोगा—मैंने कोई चिट्ठी नहीं लिखी थी, मालूम होता है कि दिलीपशाह और भूतनाथ वगैरह मिल-जुल कर मुझ पर जाल बाँधा चाहते हैं और तुम उन्हीं में से किसी के नौकर हो।

गिरिजाकुमार—भूतनाथ तो मर गया, अब तुम उसे क्यों बदनाम करते हो?

दारोगा—भूतनाथ जैसा मरा है सो मैं खूब जानता हूँ, अगर खुद मुझसे मुलाकात न हुई होती तो शायद मैं धोखे में आ भी जाता।

गिरिजाकुमार—भूतनाथ तुम्हारे पास न आया होगा, किसी दूसरे आदमी ने सूरत बदलकर तुम्हें धोखा दिया होगा, वह बेशक मर गया!

दारोगा—(सिर हिलाकर) हाँ ठीक है, शायद ऐसा ही हो। मगर उन सब बातों से तुम्हें मतलब ही क्या है और तुम मेरे पास किस लिए आये हो सो कहो।

गिरिजासिंह—मैं केवल इसीलिए आया हूँ कि लक्ष्मीदेवी और बलभद्रसिंह को छोड़ देने के लिए तुमसे प्रार्थना करूँ।

दारोगा—पहले तुम अपना ठीक-ठीक परिचय दो, तब मैं तुम्हारी बातों का जवाब दूँगा।

गिरिजासिंह—अपना ठीक परिचय तो नहीं दे सकता।

दारोगा—तब मैं तुम्हारी बातों का जवाब भी नहीं दे सकता।

"इतना कहकर दारोगा पीछे की तरफ हटा और अपने आदमियों को आवाज दी मगर गिरिजाकुमार ने झपटकर एक मुक्का दारोगा की गर्दन पर जमाया और मारने के बाद तेजी के साथ बाग के बाहर निकल गया।

"उसके दूसरे दिन गिरिजाकुमार ने उसी तरह मायारानी से भी मिलने की

कोशिश की मगर उसके खास बाग के अन्दर न जा सका। लाचार उसने मायारानी के ऐयार बिहारीसिंह और हरनामसिंह का पीछा किया और दो ही तीन दिन की मेहनत में धोखा देकर बिहारीसिंह को गिरफ्तार कर लिया और उसे अर्जुनसिंह के यहाँ पहुँचा कर मेरे पास चला आया।

"ऊपर लिखी सब बातें बयान करके गिरिजाकुमार चुप हो गया और तब मैंने उससे कहा, 'बिहारीसिंह को तुमने गिरफ्तार कर लिया, यह बहुत बड़ा काम हुआ और जब तुम बिहारीसिंह बनकर वहाँ जाओगे और चालाकी से उन लोगों में मिल-जुल कर अपने को छिपा सकोगे, तो बेशक बहुत-सी छिपी बातों का पता लग जायगा और हम लोगों के साथ जो कुछ दारोगा करना चाहता है वह भी मालूम हो जायगा।"

गिरिजाकुमार—बेशक ऐसा ही है। मैं आपसे विदा होकर अर्जुनसिंह के यहाँ जाऊँगा और फिर बिहारीसिंह बनकर जमानिया पहुँचूँगा। मेरे जी में तो यही आया था कि मैं कम्बख्त दारोगा को सीधे यमलोक पहुँचा दूँ मगर यह काम आपकी आज्ञा के बिना नहीं कर सकता था।

मैं—नहीं-नहीं, इन्द्रदेव की आज्ञा के बिना यह काम कभी न करना चाहिए, पहले वहाँ का असल हाल तो मालूम करो, फिर इस बारे में इन्द्रदेव से बातचीत करेंगे।

गिरिजाकुमार—जो आज्ञा।

"इसके बाद और भी तरह-तरह की बातचीत होती रही। उस दिन गिरिजाकुमार मेरे ही घर पर रहा दूसरे दिन मुझसे विदा हो अर्जुनसिंह के पास चला गया।"

इसके बाद आठ दिन तक मुझे किसी नई बात का पता नहीं लगा। आखिर जब गिरिजाकुमार का पत्र आया तब मालूम हुआ कि वह बिहारीसिंह बनकर बड़ी खूबी के साथ उन लोगों में मिल गया है। उन लोगों की गुप्त कमेटी में भी बैठकर हर एक बात में राय दिया करता है जिससे बहुत जल्द कुल भेदों का पता लग जाने की आशा होती है। गिरिजाकुमार ने यह भी लिखा कि दारोगा को उस चिट्ठी की बड़ी ही चिन्ता लगी हुई है जो मनोरमा के नाम से राजा गोपालसिंह को मार डालने के लिए मैंने (गिरिजाकुमार ने) जबर्दस्ती उससे लिखवा ली थी। वह चाहता है कि जिस तरह हो वह चिट्ठी उसके हाथ लग जाय और इस काम के लिए लाखों रुपये खर्च करने को तैयार है। वह कहता है और वास्तव में ठीक कहता है कि 'उस चिट्ठी का हाल अगर लोगों को मालूम हो जायगा तो दूसरों की कौन कहे, जमानिया की रिआया ही मुझे बुरी तरह से मारने के लिए तैयार हो जायगी।' एक दिन हरनामसिंह ने उसे राय दी कि दलीपशाह को मार डालना चाहिए। इस पर वह बहुत ही झुंझलाया और बोला कि 'जब तक वह चिट्ठी मेरे हाथ न लग जाय तब तक दलीपशाह और उसके साथियों को मार डालने से मुझे क्या फायदा होगा। बल्कि मैं और भी बहुत जल्द बरबाद हो जाऊँगा क्योंकि दलीपशाह के मारे जाने से उसके दोस्त लोग जरूर उस चिट्ठी को मशहूर कर देंगे, इसलिए जब तक वह चिट्ठी अपने कब्जे में न आ जाय तब तक किसी के मारने का ध्यान भी मन में न लाना चाहिए। हाँ, दलीपशाह को गिरफ्तार करने से बेशक फायदा पहुँच सकता है। अगर वह कब्जे में आ जायगा तो उसे तरह-तरह की तकलीफ पहुँचाकर किसी प्रकार

उस चिट्ठी का पता जरूर लगा लूंगा, इत्यादि ।

"वास्तव में बात भी ऐसी ही थी । इसमें कोई शक नहीं कि उसी चिट्ठी की बदौलत हम लोगों की जान बची रही, यद्यपि तकलीफें हद दर्जे की भोगनी पड़ीं मगर जान से मारने की हिम्मत दारोगा को न हुई, क्योंकि उसके दिल में विश्वास करा दिया गया था कि हम लोगों की मण्डली का एक भी आदमी जिस दिन मारा जायगा, उसी दिन वह चिट्ठी तमाम दुनिया में मशहूर हो जायगी, इसका बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया गया है ।

"इसके बाद कई दिन बीत गये मगर गिरिजाकुमार की फिर और कोई चिट्ठी न आई जिससे एक तरह पर तरद्दुद हुआ और जी में आया कि अब खुद जमानिया चलकर उसका पता लगाना चाहिए ।

दूसरे दिन अपने घर की हिफाजत का इन्तजाम करके मैं बाहर निकला और अर्जुनसिंह के घर पहुँचा । ये उस समय अपने कमरे में अकेले बैठे हुए एक चिट्ठी लिख रहे थे । मुझे देखते ही उठ खड़े हुए और बोले, "वाह-वाह, बहुत ही अच्छा हुआ जो आप आ गये, मैं इस समय आप ही के नाम एक चिट्ठी लिख रहा था और उसे अपने शागिर्द के हाथ आपके पास भेजने वाला था, आइये बैठिये ।"

मैं—(बैठकर) क्या कोई नई बात मालूम हुई है ?

अर्जुनसिंह—नहीं, बल्कि एक नई बात हो गई ।

मैं—वह क्या ?

अर्जुनसिंह—आज रात को बिहारीसिंह हमारी कैद से निकलकर भाग गया है ।

मैं—(घबराकर) यह तो बहुत बुरा हुआ ।

अर्जुनसिंह—बेशक बुरा हुआ । जिस समय वह जमानिया पहुँचेगा उस समय बेचारे गिरिजाकुमार पर जो बिहारीसिंह बनकर बैठा हुआ है, आफत आ जायगी और वह भारी मुसीबत में गिरफ्तार हो जायगा । मैं यही खबर देने के लिए आपके पास आदमी भेजने वाला था ।

मैं—आखिर ऐसा हुआ ही क्यों ? हिफाजत में कुछ कसर पड़ गई थी ?

अर्जुनसिंह—अब तो ऐसा ही समझना पड़ेगा चाहे उसकी कैसी ही हिफाजत क्यों न की गई हो, मगर असल में यह एक सिपाही की बेईमानी का नतीजा है क्योंकि बिहारीसिंह के साथ ही वह भी यहाँ से गायब हो गया है । जरूर बिहारीसिंह ने उसे लालच देकर अपना पक्षपाती बना लिया होगा ।

मैं—खैर, जो कुछ होना था वह तो हो गया । अब किसी तरह गिरिजाकुमार को बचाना चाहिए क्योंकि असली बिहारीसिंह के जमानिया पहुँचते ही नकली बिहारीसिंह (गिरिजाकुमार) का भेद खुल जायगा और वह मजबूर करके कैदखाने में झोंक दिया जायगा ।

अर्जुनसिंह—मैं खुद यही बात कह चुका हूँ, खैर, अब इस विषय में विशेष सोच-विचार न करके जहाँ तक हो जल्द जमानिया पहुँचना चाहिए ।

मैं—मैं तो तैयार ही हूँ, क्योंकि अभी कमर भी नहीं खोली ।

अर्जुनसिंह—खैर, आप कमर खोलिए और कुछ भोजन कीजिए, मैं भी आपके साथ चलने के लिए घंटे भर के अन्दर ही तैयार हो जाऊँगा।

मैं—क्या आप जमानिया चलेंगे ?

अर्जुनसिंह—(आवाज में जोर देकर) जरूर !

"घंटे भर के अन्दर ही हम दोनों आदमी जमानिया जाने के लिए हर तरह से तैयार हो गये और ऐयारी का पूरा-पूरा सामान दुरुस्त कर लिया। दोनों आदमी असली सूरत में पैदल ही घर से बाहर निकले और कई कोस निकल जाने के बाद जंगल में बैठकर अपनी सूरत बदली, इसके बाद कुछ देर आराम करके फिर आगे की तरफ रवाना हुए और इरादा लिया कि आज की रात जंगल में पेड़ के ऊपर बैठकर बिता देंगे।

"आखिर ऐसा ही हुआ। संध्या होने पर हम दोनों दोस्त जंगल में एक रमणीक स्थान देखकर अटक गये जहाँ पानी का सुन्दर चश्मा बह रहा था तथा सलई का एक बहुत बड़ा और घना पेड़ भी था जिस पर बैठने के लिए ऐसी अच्छी जगह थी कि उस पर बैठे-बैठे घंटे-दो घंटे नींद भी ले सकते थे।

यद्यपि हम लोग किसी सवारी पर बहुत जल्द जमानिया पहुँच सकते थे और वहाँ अपने लिए टिकने का भी इन्तजाम कर सकते थे, मगर उन दिनों जमानिया की ऐसी बुरी अवस्था थी कि ऐसा करने की हिम्मत न पड़ी और जंगल में टिके रहना ही उचित जान पड़ा। दोनों आदमी एक-दिल थे, इसलिए कुछ तरद्दुद या किसी तरह के खुटके का भी कुछ खयाल न था।

"अंधकार छा जाने के साथ ही हम दोनों आदमी पेड़ के ऊपर जा बैठे और धीरे धीरे बातें करने लगे, थोड़ी ही देर बाद कई आदमियों के आने की आहट मालूम हुई, हम दोनों चुप हो गये और इन्तजार करने लगे कि देखें कौन आता है। थोड़ी ही देर में दो आदमी उस पेड़ के नीचे आ पहुँचे। रात हो जाने के सबब से हम उनकी शक्ल-सूरत अच्छी तरह नहीं देख सकते थे, घने पेड़ों में से छनी हुई कुछ-कुछ और कहीं-कहीं चन्द्रमा की रोशनी जमीन पर पड़ रही थी, उसी से अन्दाजा कर लिया कि ये दोनों सिपाही हैं, मगर ताज्जुब होता था कि ये लोग रास्ता छोड़ भेदियों और ऐयारों की तरह जंगल में क्यों टिके हैं !"

"दोनों आदमी अपनी छोटी गठरी जमीन पर रखकर पेड़ के नीचे बैठ गये और इस तरह बातें करने लगे—

एक—भाई, हमें तो इस जंगल में रात काटना कठिन मालूम होता है।

दूसरा—सो क्यों ?

पहला—डर मालूम होता है कि किसी जानवर का शिकार न बन जायें।

दूसरा—बात तो ऐसी ही है। मुझे भी यहाँ टिकना बुरा मालूम होता है, मगर क्या किया जाये, बाबाजी का हुक्म ही ऐसा है।

पहला—बाबाजी तो अपने काम के आगे दूसरे की जान का कुछ भी खयाल नहीं करते। जब से हमारे राजा साहब का देहान्त हुआ है, तब से इनका दिमाग और भी बढ़ गया है।

दूसरा—इनकी हुकूमत के मारे तो हमारा जी ऊब गया, अब नौकरी करने की इच्छा नहीं होती।

पहला—मगर इस्तीफा देते भी डर मालूम होता है, झट यही कह बैठेंगे कि 'तू हमारे दुश्मनों से मिल गया है।' अगर इस तरह की बात उनके दिल में बैठ जाये, तो जान बचानी भी मुश्किल होगी।

दूसरा—इनकी नौकरी में यही तो मुश्किल है। रुपया खूब मिलता है, इसमें कोई सन्देह नहीं, मगर जान का डर हरदम बना रहता है। कम्बख्त मनोरमा की हुकूमत के मारे तो और भी नाक में दम रहता है। जब से राजा साहब मरे हैं इसने महल में डेरा ही जमा लिया है, पहले डर के मारे दिखाई भी नहीं देती थी। एक बाजारू औरत का इस तरह रियासत में घुसे रहना कोई अच्छी बात है?

पहला—अजी, जब हमारी रानी साहिबा ही ऐसी हैं तो दूसरे को क्या कहें? मनोरमा तो बाबाजी की जान ही ठहरी।

दूसरा—बीच में यह बेगम कम्बख्त नई निकल पड़ी है जहाँ घड़ी-घड़ी दौड़ के जाना पड़ता है!

पहला—(हँसकर) जानते नहीं हो? यह जयपालसिंह की नानी (रण्डी) है। पहले भूतनाथ के पास रही, अब इनके गले पड़ी है। इसे भी तुम आफत की पुड़िया ही समझो, चार दफे मैं उसके पास जा चुका हूँ, आज पाँचवीं दफे जा रहा हूँ, इस बीच में मैं उसे अच्छी तरह पहचान गया।

दूसरा—मैं समझता हूँ कि बिहारीसिंह का भी उससे कुछ सम्बन्ध है।

पहला—नहीं ऐसा तो नहीं है, अगर बिहारीसिंह से बेगम का कुछ लगाव होता तो जयपालसिंह और बिहारीसिंह में जरूर खटक जाती, जिसमें इधर तो बिहारीसिंह बहुत दिनों तक अर्जुनसिंह के यहाँ कैदी ही रहे, आज किसी तरह छूट कर अपने घर पहुँचे हैं, अब देखो गिरिजाकुमार पर क्या मुसीबत आती है।

दूसरा—गिरिजाकुमार कौन हैं?

पहला—वही जो बिहारीसिंह बना हुआ था।

दूसरा—वह तो अपना नाम शिवशंकर बताता है।

पहला—बताता है, मगर मैं तो उसे खूब पहचानता हूँ।

दूसरा—तो तुमने बाबाजी से कहा क्यों नहीं?

पहला—मुझे क्या गरज पड़ी है जो उसके लिए दलीपशाह से दुश्मनी पैदा करूँ? वह दलीपशाह का बहुत प्यारा शागिर्द है, खबरदार तुम भी इस बात का जिक्र किसी से न करना, मैंने तुम्हें अपना दोस्त समझ कर कह दिया है।

दूसरा—नहीं जी, मैं क्यों किसी को कहने लगा? (चौंककर) देखो, यह किसी भयानक जानवर के बोलने की आवाज है।

पहला—तो डर के मारे तुम्हारा दम क्यों निकला जाता है? ऐसा ही है तो थोड़ी सी लकड़ी बटोर कर आग सुलगा लो या पेड़ के ऊपर चढ़कर बैठो।

दूसरा—इससे तो यही बहतर होगा कि यहाँ से चले चलें, सफर ही में रात काट

देंगे, बाबाजी कुछ देखने थोड़े ही आते हैं !

पहला—जैसा कहो।

दूसरा—हमारी तो यही राय है।

पहला—अच्छा चलो, जिसमें तुम खुश रहो, वही ठीक !

"उन दोनों की बातें सुनकर हम लोगों को बहुत सी बातों का पता लग गया।

गिरिजाकुमार की बात सुनकर मुझे बड़ा ही दुःख हुआ, साथ ही इस बात के जानने की उत्कंठा भी हुई कि वे दोनों बेगम के यहाँ क्यों जा रहे हैं। दिल दो तरफ से खिंचाव में पड़ गया। एक तो इच्छा हुई कि दोनों को कब्जे में करके मालूम कर लें कि बेगम के पास किस मजमून की चिट्ठी ले जा रहे हैं और अगर उचित मालूम हो तो इनकी सूरत बनकर खुद बेगम के पास चलें, सम्भव है कि बहुत से भेदों का पता लग जाये, दूसरे इस बात की भी जल्दी पड़ गई कि किसी तरह शीघ्र जमानिया पहुँचकर गिरिजाकुमार की मदद करनी चाहिए। जब यह मालूम हुआ कि अब वे दोनों यहाँ से जाना चाहते हैं, तब हम लोग भी झट पेड़ से नीचे उतर आए और उन दोनों के सामने खड़े होकर मैंने कहा, "नहीं, जानवरों के डर से मत भागो, हम लोग तुम्हारे साथ हैं।"

हम दोनों को यकायक इस तरह पेड़ से उतरकर सामने खड़े होते देख वे दोनों डर गये, मगर कुछ देर बाद एक ने जी कड़ा करके कहा, "भाई, तुम लोग कौन हो ? भूत हो, प्रेत हो, या जिन्न हो ?"

मैं—डरो मत, हम लोग भूत-प्रेत नहीं हैं, आदमी हैं और ऐयार हैं, तुम लोगों में जो कुछ बातें हुई हैं हम लोग पेड़ पर बैठे-बैठे सुन रहे थे, जब देखा कि अब तुम लोग जाना चाहते हो तो हम दोनों भी उतर आये।

एक सिपाही—(घबरायी आवाज से) आप कहाँ के रहने वाले और कौन है ?

मैं—हम दोनों आदमी दलीपशाह के नौकर हैं।

दूसरा—अगर आप दलीपशाह के नौकर हैं तो हम लोगों को विशेष नहीं डरना चाहिए क्योंकि आप लोग न तो हमारे मालिकों से मिलेंगे और न इस बात का जिक्र करेंगे कि हम लोग क्या बातें करते थे, हाँ, अगर कोई हमारे दरबार का आदमी होता तो जरूर हम लोग बर्बाद हो जाते।

मैं—बेशक ऐसा ही है और तुम लोगों की बातों से यह जानकर हम दोनों बहुत प्रसन्न हुए कि तुम लोग नेक, ईमानदार और इन्साफपसन्द आदमी हो और हमें यह भी उम्मीद है कि जो कुछ हम पूछेंगे, उसका ठीक-ठीक जवाब दोगे।

दूसरा—हमारी बातों से आप जान ही चुके हैं कि हम लोग कैसे खूंखार आदमी के नौकर हैं और आप लोगों से बातें करने का कैसा बुरा नतीजा निकल सकता है।

मैं—ठीक है, मगर तुम्हारे दारोगा साहब को इन बातों की खबर कुछ भी नहीं लगेगी।

पहला—इस समय हम आपके काबू में हैं क्योंकि सिपाही होने पर भी ऐयारों का मुकाबला नहीं कर सकते तिस पर ऐसी अवस्था में कि दोनों तरफ की गिनती बराबर हो इसलिए इस समय आप जो कुछ चाहें हम लोगों पर जबर्दस्ती कर सकते हैं।

मैं—नहीं-नहीं, हम लोग तुम पर जबर्दस्ती नहीं करना चाहते, बल्कि तुम्हारी खुशी और हिफाजत का खयाल रखकर अपना काम निकालना चाहते हैं।

पहला—इसके अतिरिक्त हम लोगों को इस बात का भी निश्चय हो जाना चाहिए कि आप लोग वास्तव में दलीपशाह के ऐयार हैं और हम लोगों की हिफाजत के लिए आपने कोई अच्छी तरकीब सोच ली है, अगर हम लोग आपकी किसी भी बात का जवाब दें।

सिपाही की आखिरी बात से हमें निश्चित हो गया कि वे लोग हमारे कब्जे में आ जायेंगे और हमारी बात मान लेंगे और अगर ऐसा न करते तो वे लोग कर ही क्या सकते थे? आखिर हर तरह का ऊँच-नीच दिखाकर हमने उन्हें राजी कर लिया और अपना सच्चा परिचय देकर उन्हें विश्वास करा दिया कि जो कुछ हमने कहा है, सब सच है। इसके बाद हमने जो कुछ पूछा, उन्होंने साफ-साफ बता दिया और जो कुछ देखना चाहा (बेगम के नाम का पत्र इत्यादि) दिखा दिया। गिरिजाकुमार के बारे में तो जो कुछ पहले मालूम कर चुके थे, उससे ज्यादा हाल कुछ मालूम न हुआ क्योंकि उसके विषय में उन्हें कुछ विशेष खबर ही न थी, केवल इतना ही जानते थे कि असली बिहारीसिंह के पहुँचने पर नकली बिहारीसिंह (गिरिजाकुमार) गिरफ्तार कर लिया गया, हाँ, दूसरी बात यह मालूम हो गई कि वे दोनों आदमी दारोगा और जयपाल की चिट्ठी लेकर बेगम के पास जा रहे हैं, कल संध्या-समय तक बेगम के पास पहुँच जायेंगे और परसों संध्या को बेगम को साथ लिए हुए किश्ती की सवारी से गंगाजी की तरफ से रातोंरात जमानिया लौटेंगे। अतः हम लोगों ने उन दोनों सिपाहियों को जिस तरह बन पड़ा, इस बात पर राजी कर किया कि जब तुम लोग बेगम को लिए हुए रातोंरात गंगाजी की राह लौटो, तो अमुक समय अमुक स्थान पर कुछ देरी के लिए किसी बहाने से किश्ती किनारे लगा कर रोक लेना, उस समय हम लोग डाकुओं की तरह पहुँचकर बेगम को गिरफ्तार कर लेंगे और जो कुछ चीजें हमारे मतलब की उसके पास होंगी उन्हें ले लेंगे, मगर तुम लोगों को छोड़ देंगे, इस तरह से हमारा काम भी निकल जायेगा और तुम लोगों पर कोई किसी तरह का शक भी न कर सकेगा।

"रुपये पाने के साथ ही अपना किसी तरह का हर्ज न देखकर दोनों सिपाहियों ने इस बात को भी मंजूर कर लिया। इसके बाद हम लोगों में मेल-मुहब्बत की बातचीत होने लगी और तमाम रात हम लोगों ने उस पेड़ पर काट दी। सवेरा होने पर दोनों सिपाही हमसे बिदा होकर चले गये, हम सब लोग आपस में विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिए। अंत में यह निश्चय करके कि अर्जुनसिंह तो गिरिजाकुमार को छुड़ाने के लिए जमानिया जायें और मैं बेगम के फँसाने का बन्दोबस्त करूँ, हम दोनों भी एक-दूसरे से बिदा हुए।

"इस जगह मैं किस्से के तौर पर थोड़ा-सा हाल गिरिजाकुमार का बयान करूँगा जो कुछ दिन बाद मुझे उसी की जुबानी मालूम हुआ था।

"अर्जुनसिंह की कैद से छुटकारा पाकर बिहारीसिंह सीधे जमानिया दारोगा के पास चला, मगर ऐसे ढंग से गया कि किसी को कुछ मालूम हुआ, न गिरिजाकुमार ही को

इस बात का पता लगा। रात पहर-भर से कुछ ज्यादा जा चुकी थी जब दारोगा ने नकली बिहारीसिंह अर्थात् गिरिजाकुमार को अपने घर बुलाया। बेचारे गिरिजाकुमार को क्या खबर थी कि आज मैं मुसीबत में डाला जाऊँगा। वह बेधड़क मामूली ढंग पर बाबाजी (दारोगा) के मकान पर चला गया और देखा कि दारोगा अकेले ऊँची गद्दी पर बैठा हुआ है और उसके सामने सात-आठ सिपाही तलवार लगाये खड़े हैं। दारोगा का इशारा पाकर गिरिजाकुमार उसके सामने बैठ गया। बैठने के साथ ही उन सब सिपाहियों ने एक साथ गिरिजाकुमार को धर दबाया और बात की बात में हाथ-पैर बाँध के छोड़ दिया। बेचारा गिरिजाकुमार अकेला कुछ भी न कर सका और जो कुछ हुआ, उसने चुपचाप बर्दाश्त कर लिया। इसके बाद दारोगा ने ताली बजाई, उसी समय असली बिहारीसिंह कोठरी में से निकलकर बाहर चला आया और गिरिजाकुमार की तरफ देख के बोला, "अब तो तुम समझ गये होंगे कि तुम्हारा भण्डा फूट गया और मैं तुम्हारी कैद से छूट के निकल आया, मगर शाबाश, तुमने बड़ी खूबी के साथ मुझे धोखा देकर गिरफ्तार किया था। अब मेरी पारी है, देखो, मैं किस तरह तुमसे बदला लेता हूँ!"

गिरिजाकुमार—यह तो ऐयारों का काम ही है कि एक-दूसरे को धोखा दिया करते हैं, इसमें अनर्थ क्या हो गया? मेरा दाँव लगा मैंने तुम्हें गिरफ्तार करके कैदखाने में डाल दिया, अब तुम्हारा दाँव लगा है तो तुम मुझे कैदखाने में डाल दो। जिस तरह तुम अपनी चालाकी से छूट आये हो, उसी तरह छूटने के लिए मैं भी उद्योग करूँगा।

बिहारीसिंह—सो तो ठीक है, मगर इतना समझ रखो कि हम लोग तुम्हारे साथ मामूली बर्ताव न करेंगे बल्कि हद दर्जे की तकलीफ देंगे।

गिरिजाकुमार—यह तो ऐयारी के कायदे के बाहर है।

बिहारीसिंह—जो भी हो।

गिरिजाकुमार—खैर, कोई हर्ज नहीं, जो कुछ होगा झेलेंगे।

बिहारीसिंह—अगर तुम तकलीफ से बचना चाहो तो मेरी बातों का साफ और सच-सच जवाब दो।

गिरिजाकुमार—वादा तो नहीं करते, मगर जो कुछ पूछना हो पूछो।

बिहारीसिंह—तुम्हारा नाम क्या है?

गिरिजाकुमार—शिवशंकर।

बिहारीसिंह—किसके नौकर हो?

गिरिजाकुमार—किसी के भी नहीं।

बिहारीसिंह—फिर यहाँ किसके काम के लिए आये?

गिरिजाकुमार—गुरुजी के।

बिहारीसिंह—तुम्हारा गुरु कौन है!

गिरिजाकुमार—वही जिसे तुम जान चुके हो और जिसके यहाँ इतने दिनों तक तुम कैद थे।

बिहारीसिंह—अर्जुनसिंह?

गिरिजाकुमार—हाँ।

बिहारीसिंह—उन्हें हम लोगों से क्या दुश्मनी थी ?

गिरिजाकुमार—कुछ भी नहीं।

बिहारीसिंह—फिर यहाँ उत्पात मचाने के लिए तुम्हें भेजा क्यों ?

गिरिजाकुमार—मुझे सिर्फ भूतनाथ का पता लगाने के लिए भेजा था, क्योंकि उन्हें भूतनाथ से बहुत ही रंज है। यद्यपि भूतनाथ ने अपना मरना मशहूर किया है मगर उन्हें विश्वास है कि वह मरा नहीं और दारोगा साहब के साथ मिल-जुलकर काम कर रहा है और उनकी (अर्जुनसिंह की) बर्बादी का बन्दोबस्त करता है। इसी से उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी कि दारोगा साहब के यहाँ घुस-पैठकर और कुछ दिन तक उन लोगों के साथ रहकर ठीक-ठीक पता लगाओ और बन पड़े तो उसे गिरफ्तार भी कर लो, बस !

बिहारीसिंह—भूतनाथ और अर्जुनसिंह से लड़ाई क्यों हो गई ?

गिरिजाकुमार—लड़ाई तो बहुत पुरानी है, मगर इधर जब से गुरुजी ने उसका ऐयारी का बटुआ ले लिया, तब से रंज ज्यादा हो गया है।

बिहारीसिंह—(ताज्जुब से) क्या भूतनाथ का बटुआ अर्जुनसिंह ने ले लिया ?

गिरिजाकुमार—हाँ।

बिहारीसिंह—उसमें से क्या चीज निकाली ?

गिरिजाकुमार—सो तो नहीं मालूम, मगर इतना गुरुजी कहते थे कि उस बटुए के बिना हमारा काम नहीं चला इसलिए उसे गिरफ्तार ही करना पड़ेगा।

बिहारीसिंह—मगर भूतनाथ के खयाल से तुम्हारे गुरुजी ने हमको क्यों तकलीफ दी ?

गिरिजाकुमार—तुम्हें उन्होंने किसी भी तरह की तकलीफ नहीं दी, बल्कि बड़े आराम के साथ कैद में रखा था, क्योंकि तुम लोगों से उन्हें किसी तरह की दुश्मनी नहीं है। उनका खयाल यही था कि बिहारीसिंह को तीन-चार दिन से ज्यादा कैद में रखने की जरूरत न पड़ेगी और इसके बीच में ही भूतनाथ का पता लग जायगा। उन्हें इस बात की भी खबर लगी थी कि भूतनाथ जमानिया में बिहारीसिंह के पास आया करता है। मगर यहाँ आने से मुझे उसका कुछ भी पता न लगा, अब मैं एक-दो दिन में खुद ही लौट जाने वाला था। तुम अपनी बुद्धिमानी से अगर न भी छूटते तो एक-दो दिन में जरूर छोड़ दिये जाते।

"गिरिजाकुमार ने ऐसी सूरत बनाकर ये बातें कहीं कि दारोगा और बिहारीसिंह को उसकी सच्चाई पर विश्वास हो गया। मैं पहले ही यह बयान कर चुका हूँ कि गिरिजाकुमार बातचीत के समय सूरत बनाना बहुत ही अच्छा जानता था। अब गिरिजाकुमार और बिहारीसिंह की बातें सुन दारोगा ने कहा—"शिवशंकर, मालूम तो होता है कि तुम जो कुछ कहते हो वह सच ही है, परन्तु ऐयारों की बातों पर विश्वास करना जरा मुश्किल है, फिर भी तुम अच्छे और साफ दिल के मालूम होते हो।"

गिरिजाकुमार—आप चाहे जो खयाल करें, मगर मैं तो यही समझता हूँ कि आप लोगों से मुझे झूठ बोलने की जरूरत ही क्या है ? न मेरे गुरुजी को आप लोगों से दुश्मनी है न मुझी को; हाँ अगर यह मालूम हो जायगा कि हमारे मुकाबले में आप लोग

भूतनाथ को सहायता करते हैं तो बेशक दुश्मनी हो जायगी, यह मैं खुले दिल से कहे देता हूँ चाहे आप मुझे बेवकूफ समझें या नालायक।

दारोगा—नहीं-नहीं शिवशंकर, हम लोग भूतनाथ की मदद किसी तरह नहीं कर सकते, हम तो उसे खुद ही ढूंढ़ रहे हैं, मगर उस कम्बखत का कहीं पता ही नहीं लगता। ताज्जुब नहीं कि वास्तव में मर ही गया हो।

गिरिजाकुमार—(सिर हिलाकर) कदापि नहीं, अभी महीने भर से ज्यादा न हुआ होगा कि मैंने खुद अपनी आँखों से उसे देखा था, मगर उस समय मैं ऐसी अवस्था में था कि कुछ न कर सका। खैर, कम्बख्त जाता कहाँ है, मुझे उसके दो-चार ठिकाने ऐसे मालूम हैं कि जिसके सबब से एक न एक दिन उसे जरूर गिरफ्तार कर लूंगा।

दारोगा—(ताज्जुब और खुशी से) क्या तुमने उसे खुद अपनी आँखों से देखा था और उसके दो-चार ठिकाने तुम्हें मालूम हैं ?

गिरिजाकुमार—बेशक ?

दारोगा—क्या उन ठिकानों का पता मुझे बता सकते हो ?

गिरिजाकुमार—नहीं।

दारोगा—सो क्यों ?

गिरिजाकुमार—गुरुजी को मुझे जो कुछ ऐयारी सिखानी थी, सिखा चुके। मैं गुरुजी से वादा कर चुका हूँ कि अब आपकी इच्छानुसार गुरुदक्षिणा में भूतनाथ को गिरफ्तार करके आपके हवाले करूँगा और जब तक ऐसा न करूँगा, अपने घर कदापि न जाऊँगा। ऐसी अवस्था में अगर मैं भूतनाथ का कुछ पता आपको बता दूं तो मानो अपने पैर में आप ही कुल्हाड़ी मारूँगा, क्योंकि आप अमीर और शक्तिसम्पन्न हैं, बनिस्बत मुझ गरीब के आप उसे बहुत जल्द गिरफ्तार कर सकते हैं, अब अगर ऐसा हुआ और वह आपके हाथ में गया तो मैं सूखा ही रह जाऊँगा और गुरु-दक्षिणा न दे सकने के कारण अपने घर भी न जा सकूंगा।

दारोगा—(हँसकर) मगर शिवशंकर, तुम बड़े ही सीधे आदमी हो और बहुत ही साफ-साफ कह देते हो, ऐयारों को ऐसा न करना चाहिए।

गिरिजाकुमार—नहीं साहब, आपसे साफ-साफ कह देने में कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि आप हमारे दुश्मन नहीं हैं, दूसरे यह कि अभी तक मुझे ऐयार की पदवी भी नहीं मिली, जब गुरुदक्षिणा देकर ऐयार की पदवी पा जाऊँगा तो ऐयारों की सी चाल चलूंगा, अभी तो मैं एक गरीब छोकरा हूँ।

दारोगा—नहीं, तुम बहुत अच्छे आदमी हो। हम तुमसे खुश हैं। (बिहारीसिंह की तरफ देख के) इस बेचारे के हाथ-पैर खोल दो! (गिरिजाकुमार से) मगर तुम भूतनाथ का जो कुछ पता-ठिकाना जानते हो हमें बता दो, हम तुमसे वादा करते हैं कि भूतनाथ को गिरफ्तार करके अपना काम भी निकाल लेंगे और तुम्हारे सिर से गुरु-दक्षिणा का बोझ भी उतरवा देंगे।

गिरिजाकुमार—(मुँह बिचका कर और सिर हिलाकर) जी नहीं। हाँ, अगर इसके साथ आप और भी दो-तीन बातों का वादा करें, तो मैं बेशक आपकी मदद कर

सकता हूँ।

बिहारीसिंह—(गिरिजाकुमार के हाथ-पैर खोलकर) तुम और जो कुछ चाहोगे, बाबाजी देंगे, मगर इनकी बातों से इनकार न करो।

गिरिजाकुमार—(अच्छी तरह बैठकर) ठीक है, मगर मैं विशेष धन-दौलत नहीं चाहता, और न मुझे इसकी जरूरत ही है, क्योंकि ईश्वर ने मुझे बिल्कुल ही अकेला कर दिया है—न बाप, न माँ, न भाई, न भौजाई, ऐसी अवस्था में मैं धन-दौलत लेकर क्या करूँगा ? मगर दो-तीन बातों का इकरार लिए बिना मैं दारोगा साहब को कुछ भी नहीं बताऊँगा, चाहे मार ही डाला जाऊँ !

दारोगा—(मुस्कराकर) अच्छा-अच्छा बताओ, तुम क्या चाहते हो ?

गिरिजाकुमार—एक तो यह कि उसकी खोज में मैं अगुआ रखा जाऊँ।

दारोगा—मंजूर है, अच्छा और बताओ।

गिरिजाकुमार—बिहारीसिंह मेरी मदद के लिए दिये जायें, क्योंकि मैं भी इन्हें पसन्द करता हूँ।

दारोगा—यह भी कबूल है, और बोलो।

गिरिजाकुमार—जहाँ तक जल्द हो सके मैं गुरुदक्षिणा के बोझ से हलका किया जाऊँ, क्योंकि इसके लिए मैं जोश में आकर बहुत बुरी कसम खा चुका हूँ। यद्यपि गुरुजी मना करते थे कि तुम कसम न खाओ, तुम्हारे जैसे जिद्दी आदमी का कसम खाना अच्छा नहीं है !

दारोगा—बेशक तुम जो चाहते हो वही होगा, और कहो !

गिरिजाकुमार— गुरुदक्षिणा से छुट्टी पाकर मैं ऐयार की पदवी पा जाऊँ तो मुझे यहाँ किसी तरह नौकरी मिल जाय जिसमें मेरा गुजारा चले, और मेरी शादी करा दी जाय। यह मैं इसलिए कहता हूँ कि मुझे शादी करने का शौक है और मैं अपनी बिरादरी में ऐसा गरीब हूँ कि कोई मुझे लड़की देना कबूल न करेगा।

दारोगा—यह सब कुछ हो जायगा, तुम कुछ चिन्ता न करो। और फिर तुम गरीब भी न रहोगे। अच्छा बताओ, और भी कुछ चाहते हो ?

गिरिजाकुमार—एक बात और है।

दारोगा—वह भी कह डालो।

गिरिजाकुमार—(बिहारीसिंह की तरफ इशारा करके)ये हमारे गुरुजी से किसी तरह की दुश्मनी न रखें और मेरे साथ वहाँ चलने में कोई परहेज न करें। देखिये, मैं अपने दिल का हाल बहुत साफ कह रहा हूँ।

बिहारीसिंह—ठीक है, ठीक है। जो कुछ तुम कहते हो, मंजूर है।

गिरिजाकुमार—(दारोगा की तरफ देखकर) तो बस, मैं आपका हुक्म बजा लाने के लिए दिलोजान से तैयार हूँ।

दारोगा—अच्छा तो अब उसके दो-तीन ठिकाने जो तुम्हें मालूम हैं, उनका पता बताओ।

गिरिजाकुमार—पता क्या, अब तो मैं खुद इनको (बिहारीसिंह को) अपने साथ

ले चलकर सब-कुछ दिखाऊँगा और पता लगाऊँगा। मैं उस कम्बख्त को बिना ढूंढ़े छोड़ने वाला नहीं, मुझे आप चाणक्य की तरह जिद्दी समझिये।

दारोगा—अच्छा यह तो बताओ तुमने भूतनाथ को कहाँ देखा था जिसका जिक्र अभी तुमने किया है।

गिरिजाकुमार—बेगम के मकान से बाहर निकलते हुए।

बिहारीसिंह—(ताज्जुब से) कौन बेगम ?

गिरिजाकुमार—वही; जिसे जयपालसिंह अपनी समझते हैं। ताज्जुब क्या करते हैं, उसे आप साधारण औरत न समझिए। मैं साबित कर दूंगा कि उसका मकान भी भूतनाथ का एक अड्डा है, मगर वहाँ इत्तिफाक ही से वह कभी जाता है, हाँ बेगम उससे मिलने के लिए कभी कहीं जाती है, परन्तु उसका ठीक हाल मुझे मालूम नहीं हुआ। मैंने तो अब तक उसका भी पता लगा लिया होता, मगर क्या कहूँ, गुरुजी ने कहा कि तुम जमानिया हो आओ, वहाँ भूतनाथ जल्दी मिल जायगा, नहीं तो मैं बेगम का ही पीछा करने वाला था।

दारोगा—मुझे तुम्हारी इन बातों पर ताज्जुब मालूम पड़ता है।

गिरिजाकुमार—अभी क्या है, आगे चलकर और भी ताज्जुब होगा, जब खुद बिहारीसिंह वहाँ की कैफियत आपसे बयान करेंगे।

दारोगा—खैर, अगर तुम्हारी राय हो तो मैं बेगम को यहाँ बुलाऊँ ?

गिरिजाकुमार—बुलवाइए, मगर मेरी समझ में उसे होशियार कर देना मुनासिब न होगा, बल्कि मैं तो कहता हूँ कि इसका जिक्र अभी आप जयपालसिंह से भी न कीजिए, कुछ सबूत इकट्ठा कर लेने दीजिए।

दारोगा—खैर, जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा। बेगम को यहाँ बुलवाकर भूतनाथ का जिक्र न करूँगा, बल्कि उसकी तबीयत और नीयत का अन्दाज करूँगा।

गिरिजाकुमार—हाँ तो बुलवाइये !

दारोगा—तब तक तुम क्या करोगे ?

गिरिजाकुमार—कुछ भी नहीं, अभी तो दो-तीन दिन मैं यहाँ से न जाऊँगा, बल्कि मैं चाहता हूँ कि दो रोज मुझे आप इन्हीं (बिहारीसिंह) की सूरत में रहने दीजिए और बिहारीसिंह को कहिए कि अपनी सूरत बदल लें। जब बेगम आकर यहाँ से चली जायगी तब हम दोनों आदमी भूतनाथ की खोज में जायेंगे।

दारोगा—इसमें क्या फायदा है ? असली सूरत में अगर तुम यहाँ रहो तो क्या कोई हर्ज है ?

गिरिजाकुमार—हाँ, जरूर हर्ज है, यहाँ मैं कई ऐसे आदमियों से मिलजुल रहा हूँ जिनसे भूतनाथ की बहुत-सी बातें मालूम होने की आशा है। उन्हें अगर मेरा असल भेद मालूम हो जायगा तो बेशक हर्ज होगा। इसके अतिरिक्त जब बेगम यहाँ आ जाय तो मैं बिहारीसिंह बना हुआ आपके सामने ऐसे ढंग पर बातें करूँगा कि ताज्जुब नहीं आपको भी इस बात का पता लग जाय कि भूतनाथ से और उससे कुछ सम्बन्ध है।

दारोगा—अगर ऐसी बात है तो तुम्हारा बिहारीसिंह ही बने रहना ठीक है।

गिरिजाकुमार—इसी से तो मैं कहता हूँ।

दारोगा—खैर, ऐसा ही होगा और मैं आज ही बेगम को लाने के लिए आदमी भेजता हूँ। (बिहारीसिंह की तरफ देखकर) तुम अपनी सूरत बदलने का भी बन्दोबस्त करो !

बिहारीसिंह—बहुत अच्छा।

यहाँ तक बयान करके दलीपशाह चुप हो गया और कुछ दम लेकर फिर इस तरह बयान करने लगा—

"इस समय मेरी बातें सुन-सुनकर दारोगा और जयपाल वगैरह के कलेजे पर साँप लोट रहा होगा और उस समय की बातें याद करके ये बेचैन हो रहे होंगे, क्योंकि वास्तव में गिरिजाकुमार ने उन्हें ऐसा उल्लू बनाया कि उस बात को ये कभी भूल नहीं सकते। खैर, उस समय जब हम दोनों आदमी जंगल में दारोगा के सिपाहियों से जुदा हुए, हमें गिरिजाकुमार के मामले की कुछ खबर न थी, अगर खबर होती तो बेगम को न लूटते और न अर्जुनसिंह ही गिरिजाकुमार की खोज में जमानिया जाते। खैर, फिर भी जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ और अब मैं आगे का हाल बयान करता हूँ।"

2

दलीपशाह ने फिर इस तरह अपना किस्सा शुरू किया—

"गिरिजाकुमार ने अपनी बातचीत में दारोगा और बिहारीसिंह को ऐसा उल्लू बनाया कि उन दोनों को गिरिजाकुमार पर पूरा-पूरा भरोसा हो गया और वह खुशी के साथ जमानिया में रहकर बेगम का इन्तजार करने लगा, बल्कि दारोगा के साथ जाकर उसने खास बाग का रास्ता और मायारानी को भी देख लिया था। इधर अर्जुनसिंह गिरिजाकुमार की खोज में जमानिया गये और मैं बेगम को गिरफ्तार करने की फिक्र में पड़ा।

"पहले तो मैं अपने घर गया और वहाँ से कई आदमियों का इन्तजाम करके लौटा। फिर ठीक समय पर गंगा के किनारे उस ठिकाने पहुँच गया जहाँ बेगम की किश्ती किनारे लगाकर लूट लेने की बातचीत कही-बदी थी।

"मैं इस घटना का हाल बहुत बढ़ाकर न कहूँगा कि बेगम की किश्ती क्योंकर आई और क्या-क्या हुआ तथा मैंने किसको किस तरह गिरफ्तार किया—संक्षेप में केवल इतना ही कहूँगा कि बेगम पर मैंने कब्जा कर लिया और जो चीजें उसके पास थीं, सब ले ली गयीं। उन्हीं चीजों में ये सब कागज और वह हीरे की अँगूठी भी जो भूतनाथ बेगम के यहाँ से ले आया और जो इस समय दरबार में मौजूद हैं। आगे चलकर मैं इन चीजों का हाल बयान करूँगा और यह भी कहूँगा कि ये सब चीजें मेरे कब्जे में आकर फिर क्योंकर निकल गईं। इस समय मैं पुनः गिरिजाकुमार का हाल बयान करूँगा जो उसी की जुबानी मुझे मालूम हुआ था।

"गिरिजाकुमार जमानिया में बैठा हुआ दारोगा के साथ बेगम का इन्तजार कर रहा था। जब बेगम को लुटवाकर दोनों सिपाही जिनके साथ बेगम के भी दो आदमी थे और जिन्हें मैंने जानबूझकर छोड़ दिया था, रोते-कलपते हुए जमानिया पहुँचे तो सीधे दारोगा के पास चले गये। उस समय वहाँ सूरत बदले हुए असली बिहारीसिंह और गिरिजाकुमार भी बिहारीसिंह बना हुआ बैठा था। दारोगा के सिपाहियों और बेगम के आदमियों ने अपनी बर्बादी और बेगम के लुट जाने का हाल बयान किया जिसे सुनते ही दारोगा को ताज्जुब और रंज हुआ। उसने गिरिजाकुमार की तरफ देखकर कहा, "यह कार्रवाई किसने की होगी?"

गिरजाकुमार—खुद बेगम ने या फिर भूतनाथ ने! (बेगम के आदमियों की तरफ देखकर) क्यों जी! मैं समझता हूँ कि शायद महीने-भर के लगभग हुआ होगा जब एक भूतनाथ मेरे साथ बेगम के यहाँ गया था। उस समय तुम भी तो वहाँ थे, क्या तुमने मुझे पहचाना था?

बेगम का आदमी—जी नहीं, मैंने आपको नहीं पहचाना था।

गिरिजाकुमार—(दारोगा की तरफ देख कर) आप ही के कहे मुताबिक मैं दो-तीन दफे भूतनाथ के साथ बेगम के यहाँ गया था, पर वास्तव में भूतनाथ अच्छा आदमी है और ये लोग भी बड़ी मुस्तैदी के साथ वहाँ रहते हैं। (बेगम के आदमियों की तरफ देखकर) क्यों जी, है न यही बात?

बेगम का आदमी—(हाथ जोड़ कर) जी हाँ सरकार!

बेगम के आदमियों की ज़ुबान से गिरिजाकुमार ने बड़ी खूबी के साथ 'जी हाँ सरकार' कहलवा लिया। इसमें कोई शक नहीं कि भूतनाथ बेगम के यहाँ जाया करता था और गिरिजाकुमार को यह हाल मालूम था, मगर ऐसे मौके पर उसके आदमियों की ज़ुबान से 'हाँ' कहला लेना मामूली बात न थी। उन खुशामदी आदमियों ने यह सोच कर कि जब खुद बिहारीसिंह भूतनाथ के साथ अपना जाना कबूल करते हैं तो हाँ कहना ही अच्छा है—'जी हाँ सरकार' कह दिया और गिरिजाकुमार दारोगा तथा बिहारीसिंह की निगाह में सच्चा बन बैठा। साथ ही इसके गिरिजाकुमार दारोगा से पहले ही कह चुका था कि बेगम आवेगी तो मैं बात-ही-बात में किसी तरह साबित करा दूंगा कि भूतनाथ उसके यहाँ आता-जाता है, वह बात भी दारोगा को खूब याद थी, अतः दारोगा को गिरिजाकुमार पर और भी विश्वास हो गया। उसने गिरिजाकुमार का इशारा पाकर बेगम के दोनों आदमियों को बिना कुछ कहे थोड़ी देर के लिए बिदा किया और फिर आपस में इस तरह बातचीत करने लगा—

दारोगा—कुछ समझ में नहीं आता कि क्या मामला है!

गिरिजाकुमार—अजी, यह उसी कम्बख्त भूतनाथ की बदमाशी और दोनों की मिली-जुली साँठ-गाँठ है। बेगम ज़ान-बूझ कर यहाँ नहीं आई। अगर वह आती तो उसके आदमियों की तरह खास उसकी ज़ुबान से भी मैं इस बात को साबित करा देता कि उससे और भूतनाथ से ताल्लुक है और इसीलिए मैं अभी तक बिहारीसिंह बना हुआ था, मगर खैर कोई चिन्ता नहीं, मैं बहुत जल्द इन सब भेदों का पूरा-पूरा पता लगा लूंगा और

भूतनाथ को भी गिरफ्तार कर लूंगा !

दारोगा—तो अब देर क्यों करते हो ?

गिरिजाकुमार—कुछ नहीं, कल मेरे साथ चलने के लिए बिहारीसिंह तैयार हो जायँ।

बिहारीसिंह—अच्छी बात है। यह बताओ कि किस सूरत-शक्ल में सफर किया जायगा ?

गिरिजाकुमार—मैं तो एक ज्योतिषी की सूरत बनूंगा, और आप···

बिहारीसिंह—मैं वैद्य बनूंगा।

गिरिजाकुमार—बस-बस, यही ठीक है, मगर एक बात मैं अभी से कहे देता हूँ कि दो घण्टे के लिए मैं गुरुजी से मिलने जरूर जाऊँगा।

बिहारीसिंह—क्या हर्ज है, अगर कहोगे तो मैं भी तुम्हारे साथ चला चलूंगा या कहीं अटक जाऊँगा।

''मुख्तसिर यह है कि दूसरे दिन दोनों ऐयार ज्योतिषी और वैद्य बने हुए जमानिया के बाहर निकले।

''मजा तो यह है कि गिरिजाकुमार ने चालाकी से उस समय तक किसी को अपनी असली सूरत देखने नहीं दी। जब तक वहाँ रहा बिहारीसिंह ही बना रहा, जब बाहर निकला तो ज्योतिषी बन कर निकला। खैर दारोगा का तो कहना ही क्या है, खुद बिहारीसिंह और हरनामसिंह व्यर्थ ही ऐयार कहलाये, असल में कोई अच्छा काम इन दोनों के हाथ से होते देखा-सुना नहीं गया।

''अब हम थोड़ा-सा हाल अर्जुनसिंह का बयान करते हैं, जो गिरिजाकुमार व पता लगाने के लिए हमसे जुदा होकर जमानिया गये थे। जमानिया में सेठ रामसरन नामक एक महाजन अर्जुनसिंह का दोस्त था, अतः ये सूरत बदले हुए सीधे उसी के मकान पर चले गये और मौका पाकर उससे मुलाकात करने के बाद सब हाल बयान किया और उससे मदद चाही। पहले तो वह दारोगा और मायारानी के खिलाफ कार्रवाई करने के नाम से बहुत डरा, मगर अर्जुनसिंह ने उसे बहुत भरोसा दिलाया और कहा कि जो कुछ हम करेंगे, वह ऐसे ढंग से करेंगे कि तुम पर किसी को किसी तरह का शक न होगा, इसके अतिरिक्त हम तुमसे और किसी तरह की मदद नहीं चाहते केवल एक गुप्त कोठरी ऐसे ढंग की चाहते हैं जिसमें अगर हम किसी को गिरफ्तार करके यहाँ लावें तो दो-चार दिन के लिए कैद करके रख सकें और यह काम भी ऐसी खूबी के साथ किया जायगा कि कैदी को इस बात का गुमान भी न होगा कि वह कहाँ और किसके मकान में कैद किया गया था।

''खैर, रामसरन ने किसी तरह अर्जुनसिंह की बात मंजूर कर ली और तब अर्जुनसिंह उसके मकान से बाहर निकल कर हरनामसिंह को फँसाने की फिक्र करने लगे क्योंकि इन्होंने निश्चय कर लिया था कि बिना किसी को फँसाये हुए गिरिजाकुमार का पता लगाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है।

''मुख्तसिर यह कि दो दिन की कोशिश में अर्जुनसिंह ने भुलावा दे हरनामसिंह

को गिरफ्तार कर लिया, उसे रामसरन के मकान की एक अँधेरी कोठरी में ले जाकर कैद किया तथा खाने-पीने का भी प्रबन्ध कर दिया। हरनामसिंह को यह मालूम न हुआ कि उसे किसने कैद किया है और वह किस स्थान पर रखा गया है, तथा उसे खाने-पीने को कौन देता है। इस काम से छुट्टी पाकर हरनामसिंह की सूरत बन अर्जुनसिंह दारोगा के दरबार में जा घुसे और इस तरकीब से बहुत जल्द गिरिजाकुमार को पहचान लिया और उसका पता लगा लिया। गिरिजाकुमार ने जिस चालाकी से अपने को बचा लिया था, उसे जानकर उसकी बुद्धिमानी पर अर्जुनसिंह को आश्चर्य हुआ, मगर भण्डा फूटने के डर से वे अपने को बहुत ही बचाये हुए थे और दारोगा तथा असली बिहारीसिंह से सिर-दर्द का बहाना करके बातचीत कम करते थे।

"जब बिहारीसिंह को साथ लेकर गिरिजाकुमार शहर के बाहर निकला तो अर्जुनसिंह ने भी सूरत बदल कर उसका पीछा किया। जब दोनों मुसाफिर एक मंजिल रास्ता तय कर चुके तो दूसरे दिन सफर में एक जगह मौका पाकर कुछ देर के लिए गिरिजाकुमार को अकेला देख कर अर्जुनसिंह उसके पास चले गये और उन्होंने अपने को उस पर प्रकट कर दिया। जल्दी-जल्दी बातचीत करके इन्होंने उसे यह बता दिया कि उसके जमानिया चले जाने के बाद क्या हुआ तथा अब उसे क्या और किस-किस ढंग पर कार्रवाई करनी चाहिए और हमसे-तुमसे कहाँ-कहाँ किस-किस मौके पर या कैसी सूरत में मुलाकात होगी।

अर्जुनसिंह ने गिरिजाकुमार को जो कुछ समझाया उसका हाल आगे चल कर मालूम होगा। इस जगह केवल इतना ही कहना काफी है कि गिरिजाकुमार को समझा कर अर्जुनसिंह फिर जमानिया चले गए और रात के समय हरनामसिंह को बेहोश करके कैदखाने से निकाल, शहर के बाहर बहुत दूर मैदान में ले जाकर छोड़ दिया और अपना रास्ता पकड़ा, जिसमें होश में आकर वह अपने घर चला जाय और उसे मालूम न हो कि उसके साथ किसने क्या सलूक किया, बल्कि यह बात उसे स्वप्न की तरह याद रहे।

"इसके बाद अर्जुनसिंह बहुत जल्द मेरे पास पहुँचे और जो कुछ हो चुका था उसे बयान किया। गिरिजाकुमार का हाल सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने बेगम के साथ जो कुछ सलूक किया था, उसका हाल अर्जुनसिंह से बयान किया तथा जो कुछ चीजें उसकी मेरे हाथ लगी थीं दिखाकर यह भी कहा कि बेगम अभी तक मेरे यहाँ कैद है। अतः सोचना चाहिए कि अब उसके साथ क्या कार्रवाई की जाय ?

"उन दिनों असल में मुझे तीन बातों की फिक्र लगी थी। एक तो यह कि यद्यपि भूतनाथ से और मुझसे रंज चला आता था और भूतनाथ ने अपना मरना मशहूर कर दिया था, मगर भूतनाथ की स्त्री मेरे यहाँ आई हुई थी और उसकी अवस्था पर मुझे दुःख होता था, इसलिए मैं चाहता था कि किसी तरह भूतनाथ से मुलाकात हो और मैं उसे समझा-बुझा कर ठीक रास्ते पर लाऊँ, दूसरे यह कि राजा गोपालसिंह के मरने का असली सबब दरियाफ्त करूँ और तीसरे बलभद्रसिंह तथा लक्ष्मीदेवी को दारोगा की कैद से छुड़ाऊँ, जिनका कुछ-कुछ हाल मुझे मालूम हो चुका था। बस, इन्हीं कामों के लिए हम लोगों ने इतनी मेहनत अपने सिर उठाई थी, नहीं तो जमानिया के बारे में हम लोगों के

लिए अब किसी तरह की दिलचस्पी नहीं रह गई थी।

"बेगम की जो चीजें मेरे हाथ लगी थीं, उनमें से कई कागज और एक हीरे की अँगूठी ऐसी थी, जिस पर ध्यान देने से हम लोगों को मालूम हो गया कि बेगम भी कोई साधारण औरत नहीं थी। उन कागजों में से कई चिट्ठियाँ ऐसी थीं जो भूतनाथ के विषय में जयपाल ने बेगम को लिखी थीं और कई चिट्ठियाँ ऐसी थीं जिनके पढ़ने से मालूम होता था कि मायारानी के बाप को इसी जयपाल ने मायारानी और दारोगा की इच्छानुसार मार कर जहन्नुम में पहुँचा दिया है और बलभद्रसिंह अभी तक जीता है, मगर साथ ही इसके उन चिट्ठियों से यह भी जाहिर होता था कि असली लक्ष्मीदेवी निकल कर भाग गई, जिसका पता लगाने के लिए दारोगा बहुत उद्योग कर रहा है, मगर पता नहीं लगता। वह जो हीरे की अँगूठी थी वह वास्तव में हेलासिंह (मायारानी के बाप) की थी जो उसके मरने के बाद जयपाल के हाथ लगी थी। उस अँगूठी के साथ एक कागज का पुर्जा बँधा हुआ था जिस पर बलभद्रसिंह को कैद में रखने और हेलासिंह को मार डालने की आज्ञा थी और उस पर मायारानी तथा दारोगा दोनों के हस्ताक्षर थे।

"वे कागज पुर्जे और अँगूठी इस समय महाराज के दरबार में मौजूद हैं जो भूतनाथ बेगम के यहाँ से उस समय ले आया था, जब वह असली बलभद्रसिंह को छुड़ाने के लिए गया था। आप लोगों को इस बात आश्चर्य होगा कि जब ये सब चीजें बेगम के गिरफ्तार करने पर मेरे कब्जे में आ ही चुकी थीं तो पुनः बेगम के कब्जे में कैसे चली गईं? इसके जवाब में केवल इतना ही कह देना काफी है कि जब बेगम मेरे कब्जे से निकल गई तो वे चीजें भी उसी के साथ जाती रहीं और फिर मैं भी बेगम तथा दारोगा के कब्जे में चला गया और इन सब बातों का कर्ता-धर्ता भूतनाथ ही है जिसने उस समय बहुत धोखा खाया और जिसके सबब से कुछ दिन बाद उसे भी तकलीफ उठानी पड़ी। मैंने यह भी सुना था कि अपनी इस भूल से शर्मिन्दा होकर भूतनाथ ने बेगम और जयपाल को बड़ी तकलीफें दीं, मगर उसका नतीजा उस समय कुछ भी न निकला। खैर अब मैं पुनः अपने किस्से की तरफ झुकता हूँ।"

दलीपशाह की इस बात को सुनकर महाराज ने पुनः उन हीरे की अँगूठी और उन चिट्ठियों के देखने की इच्छा प्रकट की जो भूतनाथ बेगम के यहाँ से उठा लाया था। तेजसिंह ने पहले महाराज को फिर और लोगों को भी वे चीजें दिखाईं और इसके बाद फिर दलीपशाह ने इस तरह अपना हाल बयान करना शुरू किया—

"अर्जुनसिंह ज्यादा देर तक मेरे पास नहीं ठहरे, उस समय जो कुछ हम लोगों को करना चाहिए था, बहुत जल्द निश्चय कर लिया गया और इसके बाद अर्जुनसिंह के साथ मैं घर से बाहर निकला और हम दोनों मित्र गिरिजाकुमार की तरफ रवाना हुए।

"अब गिरिजाकुमार का हाल सुनिये कि अर्जुनसिंह से मिलने के बाद फिर क्या हुआ।

"बिहारीसिंह और गिरिजाकुमार दोनों आदमी सफर करते हुए एक ऐसे स्थान में पहुँचे जहाँ से बेगम का मकान केवल पाँच कोस की दूरी पर था। यहाँ पर एक छोटा गाँव था, जहाँ मुसाफिरों के लिए खाने-पीने की मामूली चीजें मिल सकती थीं और जिसमें

हलवाई की एक छोटी-सी दुकान भी थी । गाँव के बाहरी प्रान्त में जमींदारों के देहाती ढंग के बगीचे थे और पास ही में पलाश का छोटा-सा जंगल भी था। संध्या होने में घण्टे भर की देर थी और बिहारीसिंह चाहता था हम लोग बराबर चले जायँ, दो-तीन घण्टे रात जाते बेगम के मकान तक पहुँच ही जायँगे, मगर गिरिजाकुमार को यह बात मंजूर न थी । उसने कहा कि मैं बहुत थक गया हूँ और अब एक कोस भी आगे नहीं चल सकता, इसलिए यही अच्छा होगा कि आज की रात इसी गाँव के बाहर किसी बगीचे अथवा जंगल में बिता दी जाय ।

"यद्यपि दोनों की राय दो तरह की थी, मगर बिहारीसिंह को लाचार हो गिरिजाकुमार की बात माननी पड़ी और यह निश्चय करना ही पड़ा कि आज की रात अमुक बगीचे में बिताई जायगी । अस्तु संध्या हो जाने पर दोनों आदमी गाँव में हलवाई की दुकान पर गये और वहाँ पूरी-तरकारी बनवाकर पुनः गाँव के बाहर चले आए ।

चाँदनी निकली हुई थी और चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। बिहारीसिंह और गिरिजाकुमार एक पेड़ के नीचे बैठे हुए धीरे-धीरे भोजन और निम्नलिखित बातें करते जाते थे—

गिरिजाकुमार—आज की भूख में ये पूरियाँ बड़ा ही मजा दे रही हैं ।

बिहारीसिंह—यह के भूख ही कारण नहीं, बल्कि बनी भी अच्छी हैं, इसके अतिरिक्त तुमने आज बूटी (भाँग) भी गहरी पिला दी है।

गिरिजाकुमार—अजी, इसी बूटी की बदौलत तो सफर की हरारत मिटेगी ।

बिहारीसिंह—मगर नशा तो तेज हो रहा है और अभी तक बढ़ता ही जाता है ।

गिरिजाकुमार—तो हम लोगों को करना ही क्या है ?

बिहारीसिंह—और नहीं तो अपने कपड़े-लत्ते और बटुए का खयाल तो है ही ।

गिरिजाकुमार—(हँसकर) मजा तो तब हो जो इस समय भूतनाथ से सामना हो जाय ।

बिहारीसिंह—हर्ज ही क्या है ? मैं इस समय भी लड़ने को तैयार हूँ । मगर वह बड़ा ही ताकतवर और काइयाँ ऐयार है ।

गिरिजाकुमार—उसकी कदर तो राजा गोपालसिंह जानते थे ।

बिहारीसिंह—मेरे खयाल से तो यह बात नहीं है ।

गिरिजाकुमार—तुम्हें खबर नहीं है, अगर कभी मौका मिला तो मैं इस बात को साबित कर दूँगा ।

बिहारीसिंह—किस ढंग से साबित करोगे ?

गिरिजाकुमार—खुद राजा गोपालसिंह की जबान से ।

बिहारीसिंह—(हँसकर) क्या भंग के नशे में पागल हो गये हो ? राजा गोपालसिंह अब कहाँ हैं ?

गिरिजाकुमार—असल बात तो यह है कि मुझे राजा गोपालसिंह के मरने का विश्वास ही नहीं है ।

बिहारीसिंह—(चौकन्ना होकर) सो क्यों ? तुम्हारे पास उनके जीते रहने का

क्या सबूत है ?

गिरिजाकुमार—बहुत-कुछ सबूत है मगर इस विषय पर मैं हुज्जत या बहस करना पसन्द नहीं करता । जो कुछ असल बात है तुम स्वयं जानते हो, अपने दिल से पूछ लो ।

बिहारीसिंह—मैं तो यही जानता हूँ कि राजा साहब मर गये ।

गिरिजाकुमार—खैर यह तो मैं कही चुका हूँ कि इस विषय पर बहस न करूँगा ।

बिहारीसिंह—मगर बताओ तो सही कि तुमने क्या समझ के ऐसा कहा ?

गिरिजाकुमार—मैं कुछ भी न बताऊँगा ।

बिहारीसिंह—फिर हमारी-तुम्हारी दोस्ती ही क्या ठहरी जो एक जरा सी बात छिपा रहे हो और पूछने पर भी नहीं बताते ।

गिरिजाकुमार—(हँसकर) तुम्हें ऐसा कहने का हक नहीं है । जब तुम खुद दोस्ती का खयाल न करके ये बातें छिपा रहे हो तो मैं क्यों बताऊँ ?

बिहारीसिंह—(संकोच के साथ) मैं तो कुछ भी नहीं छिपाता ।

गिरिजाकुमार—अच्छा मेरे सिर पर हाथ रखके कह तो दो कि वास्तव में राजा साहब मर गये, मैं अभी साबित कर देता हूँ कि तुम छिपाते हो या नहीं । अगर तुम सच कह दोगे तो मैं भी बता दूंगा कि इसमें कौन सी नई बात पैदा हो गई और क्या रंग खिला चाहता है !

बिहारीसिंह—(कुछ सोचकर) पहले तुम बताओ, फिर मैं बताऊँगा ।

''इस समय बिहारासिंह नशे में मस्त था, एक तो गिरिजाकुमार ने उसे भंग पिला दी थी, दूसरे उसने जो पूरियाँ खाई थीं उसमें भी एक प्रकार का बेढब नशा मिला हुआ था, क्योंकि वास्तव में उस हलवाई के यहाँ अर्जुनसिंह ने पहले ही से प्रबंध कर लिया था और ये बातें गिरिजाकुमार से कही-बदी थीं जैसा कि ऊपर के बयान से आपको मालूम हो चुका है, अतः गिरिजाकुमार ने पहले ही से एक दवा खा ली थी जिससे उन पूरियों का असर उस पर कुछ भी न हुआ, मगर बिहारीसिंह धीरे-धीरे अलमस्त हो गया और थोड़ी ही देर में बेहोश होने वाला था । वह ऐसा मस्त और दिल खुश करने वाला नशा था जिसके वश में होकर बिहारीसिंह ने अपने दिल का भेद खोल दिया, मगर अफसोस भूतनाथ ने हमारी कुल मेहनत पर मिट्टी डाल दी और हम लोगों को बर्बाद कर दिया । उस भेद का पता लग जाने पर भी हम लोग कुछ न कर सके जिसका सबब आगे चल कर आपको मालूम होगा । जब गिरिजाकुमार और बिहारीसिंह से बातें हो रही थीं उस समय हम दोनों मित्र भी वहाँ से थोड़ी ही दूर पर छिपे हुए खड़े थे और इन्तजार कर रहे थे कि बिहारीसिंह बेहोश हो जाय और गिरिजाकुमार बुलाये तो हम दोनों भी वहाँ जा पहुँचें ।

''गिरिजाकुमार ने पुनः जोर देकर कहा, ऐसा नहीं हो सकता, पहले तुम्हा को दिल का परदा खोल के और सच्चा-सच्चा हाल कहके दोस्ती का परिचय देना चाहिए और यह बात मुझसे छिपी नहीं रह सकती कि तुमने सच कहा या झूठ क्योंकि जो कुछ भेद है उसे मैं खूब जानता हूँ ।

बिहारीसिंह—मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है। खैर अब मैं कोई बात तुमसे न छिपाऊँगा, सब भेद साफ कह दूंगा। मगर इस समय मैं केवल इतना ही कहूँगा कि वास्तव में राजा साहब मरे नहीं बल्कि अभी तक जीते हैं।

गिरिजाकुमार—इतना तो मैं खुद कह चुका हूँ, इससे ज्यादा कुछ कहो तो मुझे विश्वास हो।

"गिरिजाकुमार की बात का बिहारीसिंह कुछ जवाब दिया ही चाहता था कि सामने से एक आदमी आता हुआ दिखाई पड़ा जो पास आते ही चाँदनी के सबब से बहुत जल्द पहचान लिया गया कि भूतनाथ है। बिहारीसिंह ने, जो भूतनाथ को देख कर घबड़ा गया था गिरिजाकुमार से कहा, "लो सम्हल जाओ, भूतनाथ आ पहुँचा!" दोनों आदमी सम्हल कर खड़े हो गये और भूतनाथ भी वहाँ पहुँच कर दिलेराना ढंग पर उन दोनों के सामने अकड़ कर खड़ा हो गया और बोला, "तुम दोनों को मैं खूब पहचानता हूँ और मुझे यकीन है कि तुम लोगों ने भी मुझे पहचान लिया होगा कि यह भूतनाथ है।"

बिहारीसिंह—बेशक मैंने तुमको पहचान लिया, मगर तुमको हम लोगों के बारे में धोखा हुआ है।

भूतनाथ—(हँसकर) मैं तो कभी धोखा खाता ही नहीं! मुझे खूब मालूम है कि तुम दोनों बिहारीसिंह और गिरिजाकुमार हो और साथ ही इसके मुझे यह भी मालूम है कि तुम लोग मुझे गिरफ्तार करने के लिए जमानिया से बाहर निकले हो! मुझे तुम अपने ऐसा बेवकूफ न समझो। (गिरिजाकुमार की तरफ बताकर) जिसे तुम लोगों ने आज तक नहीं पहचाना और जिसे तुम अभी तक शिवशंकर समझे हुए हो उसे मैं खूब जानता हूँ कि यह दलीपशाह का शागिर्द गिरिजाकुमार है। जरा सोचो तो सही कि तुम्हारे ऐसा बेवकूफ आदमी मुझे क्या गिरफ्तार करेगा जिसे एक लौंडे (गिरिजाकुमार) ने धोखे में डालकर उल्लू बना दिया और जो इतने दिनों तक साथ रहने पर भी गिरिजा कुमार को पहचान न सका। खैर, इसे जाने दो, पहले अपनी हिम्मत और बहादुरी का अन्दाज कर लो, देखो, मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूँ, मुझे गिरफ्तार करो तो सही!

"भूतनाथ की बातें सुनकर बिहारीसिंह हैरान बल्कि बदहवास हो गया क्योंकि वह भूतनाथ की जीवट और उसकी ताकत को खूब जानता था और उसे विश्वास था कि इस तरह खुले मैदान भूतनाथ को गिरफ्तार करना दो-चार आदमियों का काम नहीं है। साथ ही वह यह सुनकर और भी घबड़ा गया कि हमारा साथी वास्तव में शिवशंकर या हमारा मददगार नहीं है बल्कि हमें धोखे में डालकर उल्लू बनाने और भेद ले लेने वाला एक चालाक ऐयार है। इससे मैंने जो गोपालसिंह के जीते रहने का भेद बता दिया सो अच्छा नहीं किया।

इसी घबराहट में बिहारीसिंह का नशा पूरे दर्जे पर पहुँच गया और सिर नीचा करके सोचता-ही-सोचता वह बेहोश होकर जमीन पर लम्बा हो गया। उस समय गिरिजाकुमार की तरफ देख के भूतनाथ ने कहा, "तुम इस बात का खयाल छोड़ दो कि मेरे सामने से भाग जाओगे या चिल्लाकर लोगों को इकट्ठा कर लोगे।"

गिरिजाकुमार—मगर मुझसे आपको किसी तरह की दुश्मनी न होनी चाहिए, क्योंकि मैंने आपका कुछ नुकसान नहीं किया है।

भूतनाथ— सिवाय इसके कि मुझे गिरफ्तार करने की फिक्र में थे।

गिरिजाकुमार—कदापि नहीं, यह तो एक तरकीब थी जिससे कि मैंने अपने को कैद होने से बचा लिया, यही सबब था कि इस समय मैंने इसे (बिहारीसिंह को) धोखा देकर बेहोशी का दवा दी और इसे बाँधकर अपने घर ले जाने वाला था।

भूतनाथ—तुम्हारी बातें मान लेने के योग्य हैं मगर मैं इस बात को भी खूब जानता हूँ कि तुम बड़े बातूनी हो और बातों के जाल में बड़े-बड़े चालाकों को फँसाकर उल्लू बना सकते हो।

"इतना कहकर भूतनाथ ने अपनी जेब में से कपड़े का एक टुकड़ा निकालकर गिरिजाकुमार के मुँह पर रख दिया और फिर गिरिजाकुमार को दीन-दुनिया की कुछ भी खबर न रही। इसके बाद क्या हुआ सो उसे मालूम नहीं और न मैं ही जानता हूँ, क्योंकि इस विषय में मैं वही बयान करूँगा जो गिरिजाकुमार ने मुझसे कहा था।

"हम दोनों मित्र जो उस समय छिपे हुए थे बैठे-बैठे घबड़ा गये और जब लाचार होकर उस बाग में गये तो न गिरिजाकुमार को देखा न बिहारीसिंह को पाया। कुछ पता न लगा कि दोनों कहाँ गये क्या हुए या उन पर कैसी बीती। बहुत खोजा, पता लगाया, कई दिन तक उस इलाके में घूमते रहे, मगर नतीजा कुछ न निकला। लाचार अफसोस करते हुए अपने घर की तरफ लौट आए।

"अब बहुत विलम्ब हो गया, महाराज भी घबड़ा गये होंगे। (जीतसिंह की तरफ देखकर) यदि आज्ञा हो तो मैं अपनी राम-कहानी यहीं पर रोक दूँ और जो कुछ बाकी है उसे कल के दरबार में बयान करूँ।"

इतना कहकर दलीपशाह चुप हो गया और महाराज का इशारा पाकर जीतसिंह ने उसकी बात मंजूर कर ली। दरबार बर्खास्त हुआ और लोग अपने-अपने डेरे की तरफ रवाना हुए।

3

दूसरे दिन मामूली ढंग पर दरबार लगा और दलीपशाह ने इस तरह अपना हाल बयान करना शुरू किया—

"कई दिन बीत गये मगर मुझे गिरिजाकुमार का कुछ पता न लगा और न इस बात का ही खयाल हुआ कि वह भूतनाथ के कब्जे में चला गया होगा। हाँ, जब मैं गिरिजाकुमार की खोज में सूरत बदल कर घूम रहा था, तब इस बात का पता जरूर लग गया कि भूतनाथ मेरे पीछे पड़ा हुआ है और दारोगा से मिलकर मुझे गिरफ्तार करा देने का बन्दोबस्त कर रहा है।

"उस मामले के कई सप्ताह बाद एक दिन आधी रात के समय भूतनाथ पागलों

की सी हालत में मेरे घर आया और उसने मेरा लड़का समझ कर अपने हाथ से खुद अपने लड़के का खून कर दिया जिसका रंज इस जिन्दगी में उसके दिल से नहीं निकल सकता और जिसका खुलासा हाल वह स्वयं अपनी जीवनी में बयान करेगा। इसी के थोड़े दिन बाद भूतनाथ की बदौलत मैं दारोगा के कब्जे में जा फँसा।

"जब तक मैं स्वतन्त्र रहा मुझे गिरिजाकुमार का हाल कुछ भी मालूम न हुआ, जब मैं पराधीन होकर कैदखाने में गया और वहाँ गिरिजाकुमार से जिसे; भूतनाथ ने दारोगा के सुपुर्द कर दिया था, मुलाकात हुई तब गिरिजाकुमार की जुबानी सब हाल मालूम हुआ।

"भूतनाथ के कब्जे में पड़ जाने के बाद जब गिरिजाकुमार होश में आया तो उसने अपने को एक पत्थर के खंभे के साथ बँधा हुआ पाया जो किसी सुन्दर सजे हुए कमरे के बाहरी दालान में था। वह चौकन्ना होकर चारों तरफ देखने और गौर करने लगा मगर इस बात का निश्चय न कर सका कि यह मकान किसका है, हाँ शक होता था कि यह दारोगा का मकान होगा, क्योंकि अपने सामने भूतनाथ के साथ-ही-साथ बिहारीसिंह और दारोगा साहब को भी बैठे हुए देखा।

गिरिजाकुमार दारोगा, बिहारीसिंह और भूतनाथ में देर तक तरह-तरह की बातें होती रहीं और गिरिजाकुमार ने भी बातों की उलझन में उन्हें ऐसा फँसाया कि किसी तरह असल भेद का वे लोग पता न लगा सके, मगर फिर भी गिरिजाकुमार को उनके हाथों छुट्टी न मिली और वह तिलिस्म के अन्दर वाले कैदखाने में ठूँस दिया गया, हाँ, उसे इस बात का विश्वास हो गया कि वास्तव में राजा गोपालसिंह मरे नहीं, बल्कि कैद कर लिए गए हैं।

"राजा गोपालसिंह के जीते रहने का हाल यद्यपि गिरिजाकुमार को मालूम हो गया मगर इसका नतीजा कुछ भी न निकला क्योंकि इस बात का पता लगाने के साथ ही वह गिरफ्तार हो गया और यह हाल किसी से भी बयान न कर सका। अगर हम लोगों में से किसी को भी मालूम हो जाता कि वास्तव में राजा गोपालसिंह जीते हैं और कैद में हैं तो हम लोग उन्हें किसी-न-किसी तरह जरूर छुड़ा ही लेते, मगर अफसोस!

"बहुत दिनों तक खोजने और पता लगाने पर भी जब गिरिजाकुमार का कुछ हाल मालूम न हुआ तब लाचार होकर मैं इन्द्रदेव के पास गया और सब हाल बयान करने के बाद मैंने इनसे सलाह पूछी कि अब क्या करना चाहिए। बहुत गौर करने के बाद इन्द्रदेव ने कहा कि मेरा दिल यही कहता है कि गिरिजाकुमार गिरफ्तार हो गया और इस समय दारोगा के कब्जे में है। इसका पता इस तरह लग सकता है कि तुम किसी तरह दारोगा को गिरफ्तार करके ले आओ और उसकी सूरत बनकर पाँच-दस दिन उसके मकान में रहो। इसी बीच में उसके नौकरों की जुबानी कुछ-न-कुछ हाल गिरिजाकुमार का जरूर मालूम हो जायगा, मगर इसमें कुछ शक नहीं कि दारोगा को गिरफ्तार करना जरा मुश्किल है।

"इन्द्रदेव की राय मुझे बहुत पसन्द आई और मैं दारोगा को गिरफ्तार करने की फिक्र में पड़ा। इन्द्रदेव से बिदा होकर मैं अर्जुनसिंह के घर गया और जो कुछ सलाह

हुई थी बयान किया। इन्होंने भी यह राय पसन्द की और इस काम के लिए मेरे सा जमानिया चलने को तैयार हो गये, अतः हम दोनों आदमी भेष बदलकर घर से निक और जमानिया की तरफ रवाना हुए।

"संध्या हुआ ही चाहती थी जब हम दोनों आदमी जमानिया शहर के पास पहुँचे, उस समय सामने से दारोगा का एक सिपाही आता हुआ दिखाई पड़ा। हम लोग बहुत खुश हुए और अर्जुनसिंह ने कहा—'लो भाई सगुन तो बहुत अच्छा मिला कि शिकार सामने आ पहुँचा और चारों तरफ सन्नाटा भी छाया हुआ है। इस समय इसे जरूर गिरफ्तार करना चाहिए, इसके बाद इसी की सूरत बनकर दारोगा के पास पहुँचना और उसे धोखा देना चाहिए।'

"हम दो आदमी थे और सिपाही अकेला था, ऐसी अवस्था में किसी तरह की चालबाजी की जरूरत न थी, केवल तकरार कर लेना ही काफी था। हुज्जत और तकरार करने के लिए किसी मसाले की जरूरत नहीं पड़ती, जरा छेड़ देना ही काफी होता है। पास आने पर अर्जुनसिंह ने जान-बूझकर उसे धक्का दे दिया और वह भी दारोगा के घमंड पर फूला हम लोगों से उलझ पड़ा। आखिर हम लोगों ने उसे गिरफ्तार कर लिया और बेहोश करके वहाँ से दूर एक सन्नाटे के जंगल में ले जाकर उसकी तलाशी लेने लगे। उसके पास से भूतनाथ के नाम की एक चिट्ठी निकली जो खास दारोगा के हाथ की लिखी हुई थी और जिसमें यह लिखा हुआ था—

'प्यारे भूतनाथ,

कई दिनों से हम तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं। अब ठीक-ठीक बताओ कि कब मुलाकात होगी और कब तक काम हो जाने की उम्मीद है।'

"इस चिट्ठी को पढ़कर हम दोनों ने सलाह की कि इस आदमी को छोड़ देना चाहिए और इसके पीछे चलकर देखना चाहिए कि भूतनाथ कहाँ रहता है। उसका पता लग जाने से बहुत काम निकलेगा।

"हम दोनों ने वह चिट्ठी फिर उस आदमी की जेब में रख दी और उसे उठाकर पुनः सड़क पर लाकर डाल दिया जहाँ उसे गिरफ्तार किया था। इसके बाद लखलखा सुँघाकर हम दोनों दूर हटकर आड़ में खड़े हो गये और देखने लगे कि वह होश में आकर क्या करता है। उस समय रात आधी से ज्यादा जा चुकी थी।

"होश में आने के बाद आदमी ताज्जुब और तरद्दुद में थोड़ी देर तक इधर-उधर घूमता रहा और इसके बाद आगे की तरफ चल पड़ा। हम लोग भी आड़ देते हुए उसके पीछे-पीछे चल पड़े।

"आसमान पर सुबह की सुफेदी फैलना ही चाहती थी जब हम लोग एक घने और सुहावने जंगल में पहुँचे। थोड़ी देर तक चलकर वह आदमी एक पत्थर की चट्टान पर बैठ गया। मालूम होता था कि थक गया है और कुछ देर तक सुस्ताना चाहता है, मगर ऐसा न था। लाचार हम दोनों भी उसके पास ही आड़ देकर बैठ गये और उसी समय पेड़ों की आड़ में से कई आदमियों ने निकलकर हम दोनों को घेर लिया। उन सभी के हाथों में नंगी तलवारें और चेहरे पर नकाबें पड़ी हुई थीं।

''बिना लड़े-भिड़े यों ही गिरफ्तार होकर दुःख भोगना हम लोगों को मंजूर न था, अस्तु फुर्ती से तलवार खींचकर उन लोगों के मुकाबले में खड़े हो गये। उस समय एक ने अपने चेहरे पर से नकाब उलट दी और मेरे पास आकर खड़ा हो गया। असल में वह भूतनाथ था जिसका चेहरा सुबह की सुफेदी में बहुत साफ दिखाई दे रहा था और मालूम होता था कि वह हम दोनों को देखकर मुस्कुरा रहा है।

''भूतनाथ को सूरत देखते ही हम दोनों चौंक पड़े और मुँह से निकल पड़ा 'भूतनाथ'। उसी समय मेरी निगाह उस आदमी पर जा पड़ी जिसके पीछे-पीछे हम लोग वहाँ तक पहुँचे थे, देखा कि दो आदमी खड़े-खड़े उससे बातें कर रहे और हाथ के इशारे से मेरी तरफ कुछ बता रहे हैं।

''मेरे मुँह से निकली हुई आवाज सुनकर भूतनाथ हँसा और बोला, ''हाँ, मैं वास्तव में भूतनाथ हूँ, और आप लोग ?''

मैं—हम दोनों गरीब मुसाफिर हैं।

भूतनाथ—(हँसकर) यद्यपि आप लोगों की तरह भूतनाथ अपनी सूरत नहीं बदला करता मगर आप लोगों को पहचानने में किसी तरह की भूल भी नहीं कर सकता।

मैं—अगर ऐसा है तो आप ही बताइए कि हम लोग कौन हैं ?

भूतनाथ—आप लोग दलीपशाह और अर्जुनसिंह हैं, जिन्हें मैं कई दिनों से खोज रहा हूँ।

मैं— (ताज्जुब के साथ) ठीक है, जब आपने पहचान ही लिया तो मैं अपने को क्यों छिपाऊँ, मगर यह तो बताइये कि आप मुझे क्यों खोज रहे थे ?

भूतनाथ—इसलिए कि मैं आपसे अपने कसूरों की माफी माँगूं, आरजू-मिन्नत और खुशामद के साथ अपने को आपके पैरों पर डाल दूँ और कहूँ कि अगर जी में आवे तो अपने हाथ से मेरा सिर काट लीजिए मगर एक दफे कह दीजिए कि मैंने तेरा कसूर माफ किया।

मैं—बड़े ताज्जुब की बात है कि तुम्हारे दिल में यह बात कैसे पैदा हुई ? क्या तुम्हारी आँखें खुल गईं और मालूम हो गया कि तुम बहुत बुरे रास्ते पर चल रहे हो ?

भूतनाथ—जी हाँ, मुझे मालूम हो गया है और मैं समझ गया हूँ कि मैं अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मार रहा हूँ।

मैं—बड़ी खुशी की बात है अगर तुम सच्चे दिल से कह रहे हो।

भूतनाथ—बेशक मैं सच्चे दिल से कह रहा हूँ और अपने किये पर मुझे बड़ा अफसोस है।

मैं—भला कह तो जाओ कि तुम्हें किन-किन बातों का अफसोस है ?

भूतनाथ—सो न पूछिये, सिर से पैर तक मैं कसूरवार हो रहा हूँ। एक-दो हों तो कही जाय, कहाँ तक गिनाऊँ ?

मैं—खैर न सही, अच्छा अब यह बताओ कि मुझसे किस कसूर की माफी चाहते हो ? मेरा तो तुमने कुछ भी नहीं बिगाड़ा।

भूतनाथ—यह आपका बड़प्पन है जो आप ऐसा कहते हैं। मगर वास्तव में मैंने

आपका बहुत बड़ा कसूर किया है। और बातों के अतिरिक्त मैंने आपके सामने आपके लड़के को मार डाला है यह कहाँ का···

मैं—(बात काटकर) नहीं-नहीं भूतनाथ! तुम भूलते हो, अथवा तुम्हें मालूम नहीं है कि तुमने मेरे लड़के का खून नहीं किया, बल्कि अपने लड़के का खून किया है।

भूतनाथ—(चौंककर बेचैनी के साथ) यह आप क्या कह रहे हैं?

मैं—बेशक मैं सच ही कह रहा हूँ। इस काम में तुमने धोखा खाया और अपने लड़के को अपने हाथ से मार डाला। उन दिनों तुम्हारी स्त्री बीमार होकर मेरे यहाँ आई हुई थी और अपनी आँखों से तुम्हारी इस कार्रवाई को देख रही थी।

भूतनाथ—(घबराहट के साथ) तो क्या अब भी मेरी स्त्री आप ही के मकान में हैं?

मैं—नहीं वह मर गई क्योंकि बीमारी में वह इस दुःख को बर्दाश्त न कर सकी।

भूतनाथ—(कुछ देर चुप रहने और सोचने के बाद) नहीं-नहीं, वह बात नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि तुमने खुद मेरे लड़के को मारकर अपने लड़के का बदला चुकाया!

अर्जुनसिंह—नहीं-नहीं भूतनाथ, वास्तव में तुमने खुद अपने लड़के को मारा है और मैं इस बात को खूब जानता हूँ।

भूतनाथ—(भारी आवाज में) खैर अगर मैंने अपने लड़के का खून किया है तब भी दलीपशाह का कसूरवार हूँ। इसके अतिरिक्त और भी कई कसूर मुझसे हुए हैं, अच्छा हुआ कि मेरी स्त्री मर गई नहीं तो उसके सामने···

मैं—मगर हरनामसिंह और कमला को ईश्वर कुशलपूर्वक रखें।

भूतनाथ—(लम्बी साँस लेकर) बेशक भूतनाथ बड़ा ही बदनसीब है।

मैं—अब भी सम्हल जाओ तो कोई चिन्ता नहीं।

भूतनाथ—बेशक मैं अपने को सम्हालूंगा और जो कुछ आप कहेंगे वही करूँगा। अच्छा मुझे थोड़ी देर के लिए आज्ञा दीजिए तो मैं उस आदमी से दो बातें कर आऊँ जिसके पीछे आप यहाँ तक आए हैं।

"इतना कहकर भूतनाथ उस आदमी के पास चला गया मगर उसके साथी लोग हमें घेरे खड़े ही रहे। इस समय मेरे दिल का विचित्र ही हाल था। मैं निश्चय नहीं कर सकता था कि भूतनाथ की बातें किस ढंग पर जा रही हैं और इसका नतीजा क्या होगा, तथापि मैं इस बात के लिए तैयार था कि जिस तरह भीहो सके मेहनत करके भूतनाथ को अच्छे ढर्रे पर ले जाऊँगा। मगर मैं वास्तव मैं ठगा गया और जो कुछ सोचता था वह मेरी नादानी थी।

"उस आदमी से बातचीत करने में भूतनाथ ने बहुत देर की और उसे झटपट बिदा करके वह पुनः मेरे पास आकर बोला, कम्बख्त दारोगा मुझसे चालबाजी करता है और मेरे ही हाथों से मेरे दोस्तों को गिरफ्तार कराना चाहता है।"

मैं—दारोगा बड़ा ही शैतान है और उसके फेर में पड़कर तुम बर्बाद हो जाओगे। अच्छा अब हम लोग भी बिदा होना चाहते हैं। यह बताओ कि तुमसे किस तरह की

उम्मीद अपने साथ लेते जायँ ?

भूतनाथ—मुझसे आप हर तरह की उम्मीद कर सकते हैं। जो आप कहेंगे मैं वही करूँगा बल्कि आपके घर चलूँगा।

मैं—अगर ऐसा करो तो मेरी खुशी का कोई ठिकाना न रहे।

भूतनाथ—बेशक मैं ऐसा ही करूँगा मगर पहले आप यह बता दें कि आपने मेरा कसूर माफ किया या नहीं ?

मैं—हाँ, मैंने माफ किया।

भूतनाथ—अच्छा तो अब मेरे डेरे पर चलिये।

मैं—तुम्हारा डेरा कहाँ पर है ?

भूतनाथ—यहाँ से थोड़ी ही दूर पर।

मैं—खैर, चलो मैं तैयार हूँ, मगर पहले इस बात का वायदा कर दो कि लौटते समय मेरे साथ चलोगे।

भूतनाथ—जरूर चलूँगा।

"कहकर भूतनाथ चल पड़ा हम दोनों भी उसके पीछे-पीछे रवाना हुए।

"आप लोग खयाल करते होंगे कि भूतनाथ ने हम दोनों को उसी जगह क्यों नहीं गिरफ्तार कर लिया मगर यह बात भूतनाथ के किए नहीं हो सकती थी। यद्यपि उसके साथ कई सिपाही या नौकर भी मौजूद थे मगर फिर भी वह इस बात को खूब समझता था कि इस खुले मैदान में दलीपशाह और अर्जुनसिंह को एक साथ गिरफ्तार कर लेना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। साथ ही इसके यह भी कह देना जरूरी है कि उस समय तक भूतनाथ को इस बात की खबर न थी उसके बटुए को चुरा लेने वाला यही अर्जुन-सिंह है। उस समय तक क्या बल्कि अब तक भूतनाथ को इस बात की खबर न थी। उस दिन जब स्वयं अर्जुनसिंह ने अपनी जुबान से कहा तब मालूम हुआ।

"कोस-भर से ज्यादा हम लोग भूतनाथ के पीछे-पीछे चले गये और इसके बाद एक भयानक सुनसान और उजाड़ घाटी में पहुँचे जो दो पहाड़ियों के बीच में थी। वहाँ से कुछ दूर तक घूम-घुमौवे रास्ते पर चलकर भूतनाथ के डेरे पर पहुँचे। वह एक ऐसा स्थान था जहाँ किसी मुसाफिर का पहुँचना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव था। जिस खोह में भूतनाथ का डेरा था वह बहुत बड़ी और बीस-पचीस आदमियों के रहने लायक थी और वास्तव में इतने ही आदमियों साथ वह वहाँ रहता था।

"वहाँ भूतनाथ ने हम दोनों की बड़ी खातिर की और बार-बार आजिजी करता और माफी माँगता रहा। खाने-पीने का सब सामान वहाँ मौजूद था, अतः इशारा पाकर भूतनाथ के आदमियों ने तरह-तरह का खाना बनाना आरम्भ कर दिया और कई आदमी नहाने-धोने का सामान दुरुस्त करने लगे।"

"हम दोनों बहुत प्रसन्न थे और समझते थे कि अब भूतनाथ ठीक रास्ते पर आ जायेगा, अतः हम लोग जब तक संध्या-पूजन से निश्चिन्त हुए, तब तक भोजन भी तैयार हुआ और बेफिक्री के साथ हम तीनों आदमियों ने एक साथ भोजन किया। इसके बाद निश्चिन्ती से बैठकर बातचीत करने लगे।

भूतनाथ—दिलीपशाह, मुझे इस बात का दुःख है कि मेरी स्त्री का देहान्त हो गया और मेरे हाथ से एक बहुत ही बुरा काम हो गया।

मैं—बेशक, अफसोस की जगह है, मगर खैर, जो कुछ होना था हो गया, अब तुम घर पर चलो और नेकनीयती के साथ दुनिया में काम करो।

भूतनाथ—ठीक है, मगर मैं यह सोचता हूँ कि अब घर पर जाने से फायदा ही क्या है? मेरी स्त्री मर गई और अब दूसरी शादी मैं कर ही नहीं सकता, फिर किस सुख के लिए शहर में चलकर बसूँ?

मैं—हरनामसिंह और कमला का भी तो कुछ खयाल करना चाहिये। इसके अतिरिक्त क्या विधुर लोग शहर में रहकर नेकनीयती के साथ रोजगार नहीं करते?

भूतनाथ—कमला और हरनामसिंह होशियार हैं और एक अच्छे रईस के यहाँ परवरिश पा रहे हैं, इसके अतिरिक्त किशोरी उन दोनों की ही सहायक है, अतएव उनके लिए मुझे किसी तरह की चिन्ता नहीं है। बाकी रही आपकी दूसरी बात, उसका जवाब यह हो सकता है कि शहर में नेकनीयती के साथ अब मैं कर ही क्या सकता हूँ, क्योंकि मैं तो किसी को मुँह दिखलाने लायक ही नहीं रहा। एक दयाराम वाली वारदात ने मुझे बेकाम कर ही दिया था, दूसरे इस लड़के के खून ने मुझे और भी बर्बाद और बेकाम कर दिया। अब मैं कौन-सा मुँह लेकर भले आदमियों में बैठूंगा?

मैं—ठीक है, मगर इन दोनों मामलों की खबर हम लोग या दो-तीन खास-खास आदमियों के सिवाय और किसी को नहीं है और हम लोग तुम्हारे साथ कदापि बुराई नहीं कर सकते।

भूतनाथ—तुम्हारी इन बातों पर मुझे विश्वास नहीं हो सकता, क्योंकि मैं इस बात को खूब जानता हूँ कि आजकल तुम मेरे साथ दुश्मनी का बर्ताव कर रहे हो और मुझे दारोगा के हाथ में फँसाना चाहते हो, ऐसी अवस्था में तुमने मेरा भेद जरूर कई आदमियों से कह दिया होगा।

मैं—नहीं भूतनाथ, यह तुम्हारी भूल है कि तुम ऐसा सोच रहे हो! मैंने तुम्हारा भेद किसी को नहीं कहा और न मैं तुम्हें दारोगा के हवाले करना चाहता हूँ। बेशक, दारोगा ने मुझे इस काम के लिए लिखा था, मगर मैंने इस बारे में उसे धोखा दिया। दारोगा के हाथ की लिखी चिट्ठियाँ मेरे पास मौजूद हैं, घर चलकर मैं तुम्हें दिखाऊँगा, और उनसे तुम्हें मेरी बातों का पूरा सबूत मिल जायेगा।

"इसी समय बात करते-करते मुझे कुछ नशा मालूम हुआ और मेरे दिल में एक प्रकार का खुटका हो गया। मैंने घूमकर अर्जुनसिंह की तरफ देखा तो उनकी भी आँखें लाल अंगारे की तरह दिखाई पड़ीं। उसी समय भूतनाथ मेरे पास से उठकर दूर जा बैठा और बोला—

भूतनाथ—जब मैं तुम्हारे घर जाऊँगा, तब मुझे इस बात का सबूत मिलेगा, मगर मैं इसी समय तुम्हें इस बात का सबूत दे सकता हूँ कि तुम मेरे साथ दुश्मनी कर रहे हो।

"इतना कहकर भूतनाथ ने अपनी जेब से निकालकर मेरे हाथ की लिखी वे

चिट्ठियाँ मेरे सामने फेंक दीं, जो मैंने दारोगा को लिखी थीं और जिनमें भूतनाथ के गिरफ्तार करा देने का वादा किया था।"

"मैं सरकार में बयान कर चुका हूँ, कि उस समय दारोगा से इस ढंग का पत्र-व्यवहार करने से मेरा मतलब क्या था और मैंने भूतनाथ को दिखाने के लिए दारोगा के हाथ की चिट्ठियाँ बटोरकर किस तरह दारोगा से साफ इनकार कर दिया था, मगर उस मौके पर मेरे पास वे चिट्ठियाँ मौजूद न थीं कि मैं उन्हें भूतनाथ को दिखाता और भूतनाथ के पास वे चिट्ठियाँ मौजूद थीं जो दारोगा ने उसे दी थीं और जिनके सबब से दारोगा का मन्त्र चला था।" अतः उन चिट्ठियों को देखकर मैंने भूतनाथ से कहा—

मैं—हाँ-हाँ, इन चिट्ठियों को मैं जानता हूँ और बेशक ये मेरे हाथ की लिखी हुई हैं, मगर मेरे इस लिखने का मतलब क्या था और इन चिट्ठियों से मैंने क्या काम निकाला सो तुम्हें मालूम नहीं हो सकता, जब तक कि बस, दारोगा के हाथ की लिखी हुई चिट्ठियाँ तुम न पढ़ लो, जो मेरे पास मौजूद हैं।

भूतनाथ—(मुस्कराकर) बस-बस-बस, ये सब धोखेबाजी के ढर्रे रहने दीजिए। भूतनाथ से यह चालाकी न चलेगी, सच तो यह है कि मैं खुद कई दिनों से तुम्हारी खोज में हूँ। इत्तिफाक से तुम स्वयं मेरे पंजे में आकर फँस गये और अब किसी तरह नहीं निकल सकते। उस जंगल में मैं तुम दोनों को काबू में नहीं कर सकता था, इसलिए सब्जबाग दिखाता हुआ यहाँ तक ले आया और भोजन में बेहोशी की दवा खिलाकर बेकाम कर दिया। अब तुम लोग मेरा कुछ भी नहीं कर सकते। समझ लो कि तुम दोनों जहन्नुम में भेजे जाओगे, जहाँ से लौटकर आना मुश्किल है।

"भूतनाथ की ऐसी बातें सुनकर हम दोनों को क्रोध चढ़ आया, मगर उठने की कोशिश करने पर कुछ भी न कर सके, क्योंकि नशे का पूरा-पूरा असर हो गया था और तमाम बदन में कमजोरी आ गई थी।"

"थोड़ी ही देर बाद हम लोग बेहोश हो गये और तन-बदन की सुध न रही। जब आँखें खुलीं, तो अपने को दारोगा के मकान में कैद पाया और सामने दारोगा जयपाल हरनामसिंह और बिहारीसिंह को बैठे हुए देखा। रात का समय था और मेरे हाथ-पैर एक खम्भे के साथ बँधे हुए थे। अर्जुनसिंह न मालूम कहाँ थे और उन पर न जाने क्या बीत रही थी।"

"दारोगा ने मुझसे कहा—कहो, दिलीपशाह, तुमने तो मुझ पर बड़ा भारी जाल फैलाया था, मगर नतीजा कुछ नहीं निकला।"

मैं—मैंने क्या जाल फैलाया था?

दारोगा—क्या इसके कहने की भी जरूरत है? नहीं, बस, इस समय हम इतना ही कहेंगे कि तुम्हारा शागिर्द हमारी कैद में है और तुमने मेरे लिए जो कुछ किया है, उसका हाल हम उसकी जुबानी सुन चुके हैं। अब अगर वह चिट्ठी मुझे दे दो जो गोपालसिंह के बारे में मनोरमा का नाम लेकर जबरदस्ती मुझसे लिखवाई गई थी तो मैं तुम्हारा सब कसूर माफ कर दूँ।

मैं—मेरी समझ में नहीं आता आप किस चिट्ठी के बारे में मुझसे कह रहे हैं।

दारोगा—(चिढ़कर) ठीक है, मैं पहले ही समझे हुए था कि तुम बिना लात खाये नाक पर मक्खी नहीं बैठने दोगे। खैर, देखो, मैं तुम्हारी क्या दुर्दशा करता हूँ।

"इतना कहकर दारोगा ने मुझे सताना शुरू किया। मैं नहीं कह सकता कि इसने मुझे किस-किस तरह की तकलीफें दीं और सो भी एक-दो दि तक नहीं, बल्कि महीने भर तक, इसके बाद बेहोश करके मुझे तिलिस्म के अन्दर पहुँचा दिया। जब मैं होश में आया तो अपने सामने अर्जुनसिंह और गिरिजाकुमार को बैठे हुए पाया। बस, यही तो मेरा किस्सा है और यही मेरा बयान !"

दिलीपशाह का हाल सुनकर सबको बड़ा ही दुःख हुआ और सभी कोई लाल-लाल आँखें करके दारोगा तथा जयपाल वगैरह की तरफ देखने लगे। दरबार बर्खास्त करने का इशारा करके महाराज उठ खड़े हुए, कैदी जेलखाने में भेज दिए गए और बाकी सब अपने डेरों की तरफ रवाना हुए।

4

रात आधी से ज्यादा जा चुकी है। महाराज सुरेन्द्रसिंह के कमरे में राजा वीरेन्द्रसिंह, राजा गोपालसिंह, कुँअर इन्द्रजीतसिंह, आनन्दसिंह, तेजसिंह, देवीसिंह, तारासिंह, भैरोंसिंह, भूतनाथ और इन्द्रदेव बैठे आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। वृद्ध महाराज, सुरेन्द्रसिंह मसहरी पर लेटे हुए हैं।

सुरेन्द्रसिंह—दिलीपशाह की जीवनी ने दारोगा की शैतानी और भी अच्छी तरह से झलका दी है।

जीतसिंह—बेशक ऐसा ही है। सच तो यह है कि ईश्वर ही ने पाँचों कैदियों की रक्षा की, नहीं तो दारोगा ने कोई बात उठा नहीं रखी थी।

भूतनाथ—साथ ही इसके यह भी है कि सबसे ज्यादा दिलीपशाह के किस्से ने दरबार में मुझे शर्मिन्दा किया, मगर क्या करूँ लाचार था कि चालबाज दारोगा ने दिलीपशाह की चिट्ठियों का मुझे ऐसा मतलब समझाया कि मैं अपने आपे से बाहर हो गया, बल्कि यह कहना चाहिए कि अन्धा हो गया !

तेजसिंह—वह जमाना ही चालबाजियों का था और चारों तरफ ऐसी ही बातें हो रही थीं। भूतनाथ, तुम अब उन बातों को एकदम से भूल जाओ और जिस नेक रास्ते पर चल रहे हो, उसी का ध्यान रखो।

जीतसिंह—अच्छा, तो अब कैदियों के बारे में जो कुछ हो फैसला कर ही देना चाहिये, जिसमें अगले दरबार में उन्हें हुक्म सुना दिया जाये।

सुरेन्द्रसिंह—(गोपालसिंह से)कहो साहब, तुम्हारी क्या राय है, किस-किस कैदी को क्या-क्या सजा देनी चाहिए ?

गोपालसिंह—जो दादाजी(महाराज)की इच्छा हो, हुक्म दें ! मेरी प्रार्थना केवल इतनी ही है कि कम्बख्त दारोगा मेरे हवाले किया जाये और मुझे हुक्म हो जाये कि जो

मैं चाहूँ, उसे सजा दूँ ।

सुरेन्द्रसिंह—केवल दारोगा ही नहीं, बल्कि तुम्हारे और कैदी भी तुम्हारे हवाले किये जायेंगे ।

गोपालसिंह—और दिलीपशाह, अर्जुनसिंह, भरतसिंह, हरदीन और गिरिजाकुमार भी मुझे दे दिए जायें, क्योंकि ये सबलोग मेरे सहायक हैं और इनके साथ रहकर मेरा दिन बड़ी खुशी के साथ बीतेगा !

सुरेन्द्रसिंह—(जीतसिंह से) ऐसा ही किया जाये ।

जीतसिंह—बहुत अच्छा, मैं नम्बरवार कैदियों के बारे में जो कुछ हुक्म होता है, लिखता जाता हूँ ।

इतना कहकर जीतसिंह ने कलम-दवात और कागज ले लिया और महाराज की आज्ञानुसार इस तरह लिखने लगे—

(1) कम्बख्त दारोगा को सजा पाने के लिए राजा गोपालसिंह के हवाले किया जाये । राजा साहब जो मुनासिब समझें उसे सजा दें ।

(2) शिखण्डी (दारोगा का चचेरा भाई) मायाप्रसाद, जयपाल, हरनामसिंह, बिहारीसिंह, हरनामसिंह की लड़की, लीला, मनोरमा, नागर, बेगम, नौरतन और जमालो वगैरह भी जिन्हें जमानिया से घना सम्बन्ध है, राजा गोपालसिंह के हवाले कर दिए जायें ।

(3) बेगम के घर से निकली हुई दौलत, जो काशिराज ने यहाँ भिजवा दी है, बलभद्रसिंह को दे दी जाये ।

(4) गौहर और गिल्सन शेरअलीखाँ के पास भेज दी जायें ।

(5) किशोरी से पूछकर भीमसेन को छोड़ दिया जाये और उसे पुनः शिवदत्त की गद्दी पर बिठाया जाये ।

(6) कुबेरसिंह, बाकरअली, अजायबसिंह, खुदाबख्श, यारअली, धरमसिंह, गोविन्दसिंह, भवगनिया, ललिता और धन्नूसिंह, तथा वे कैदी जो कमलिनी के तालाब वाले मकान से आये थे, सब जन्म-भर के लिए कैदखाने में भेज दिए जायें, इसके अतिरिक्त और जो भी कोई कैदी हों, (नानक इत्यादि) कैदखाने भेज दिए जायें ।

(7) दिलीपशाह, अर्जुनसिंह, हरदीन, भरतसिंह और गिरिजाकुमार को राजा गोपालसिंह ले जायें और इन सबको बड़ी खातिर और आराम के साथ रखें ।

कैदियों के विषय में इस तरह का हुक्म देकर महाराज चुप हो गये और फिर आपस में दूसरे ढंग की बातें होने लगीं । थोड़ी देर के बाद दरबार बर्खास्त हुआ और सब लोग अपने-अपने ठिकाने चले गये ।

5

कुँअर इन्द्रजीतसिंह इस छोटे-से दरबार से उठकर महल में गये और किशोरी के

कमरे में पहुँचे। इस समय कमलिनी भी उसी कमरे में मौजूद किशोरी से हँसी-खुशी की बातें कर रही थीं। कुमार को देखकर दोनों उठ खड़ी हुईं और जब हँसते हुए कुमार बैठ गये तो किशोरी भी उनके साथ बैठ गई, मगर कमलिनी कमरे के बाहर की तरफ चल पड़ी। उस समय कुमार ने उसे रोका और कहा, "तुम कहाँ चलीं ? बैठो-बैठो इतनी जल्दी क्या है ?"

कमलिनी—(बैठती हुई)बहुत अच्छा. बैठती हूँ, मगर क्या आज रात को सोना नहीं है ?

कुमार—क्या यह बात मेरे आने के पहले नहीं सूझी थी ?

किशोरी—आपको देखकर सोना याद आ गया।

किशोरी की बात ने दोनों को हँसा दिया और फिर कमलिनी ने कहा—

कमलिनी—दिलीपशाह के किस्से ने मेरे दिल पर ऐसा असर किया है कि कह नहीं सकती। देखना चाहिये, दुष्टों को महाराज क्या सजा देते हैं। सच तो यह है कि उनके लिए कोई सजा है ही नहीं।

कुमार—तुम ठीक कहती हो, इस समय मैं महाराज के पास से ही चला आता हूँ, वहाँ एक छोटा-सा निजी दरबार लगा हुआ था और कैदियों के ही विषय में बात-चीत हो रही थी, बल्कि यह कहना चाहिये कि आज उन बदमाशों का फैसला लिखा जा रहा था।

कमलिनी—(उत्कण्ठा से)हाँ ! अच्छा, बताइए तो सही दारोगा और जयपाल के लिए क्या सजा तजवीज की गई ?

कुमार—उन्हें क्या सजा दी जायेगी, इसका निश्चय गोपाल भाई करेंगे, क्योंकि महाराज ने इस समय यही हुक्म लिखाया है कि दारोगा, जयपाल, शिखण्डी, हरनाम, बिहारी, मनोरमा और नागर वगैरह जितने जमानिया और गोपाल भाई से सम्बन्ध रखने वाले कैदी हैं, सब उनके हवाले किये जायें और वे जो कुछ मुनासिब समझें उन्हें सजा दें।

कमलिनी—चलिए, यह भी अच्छा ही हुआ, क्योंकि मुझे इस बात का बहुत बड़ा खयाल बना हुआ था कि हमारे रहम-दिल महाराज इन कैदियों के लिए कोई अच्छी सजा नहीं, तजबीज कर सकेंगे, अगर वे लोग जीजाजी के सुपुर्द किए गए हैं तो उन्हें सजा भी वाजिब ही मिल जायेगी।

कुमार—(हँसकर)अच्छा, तुम ही बताओ कि अगर सजा देने के लिये सब कैदी तुम्हारे सुपुर्द किये जाते तो तुम उन्हें क्या सजा देतीं ?

कमलिनी—मैं ?(कुछ सोचकर)मैं पहले तो इन सबके हाथ-पैर कटवा डालती, फिर इनके जख्म आराम करवाकर बड़े-बड़े लोहे के पिंजड़ों में इन्हें बन्द करके और सदर चौमुहानी पर लटकाकर हुक्म देती कि जितने आदमी इस राह से जायें वे सब इनके मुँह पर थूककर तब आगे बढ़ें।

कुमार—(मुस्कराकर) सजा तो बहुत अच्छी सोची है। तो बस, अपने जीजा साहब को समझा देना कि उन्हें ऐसी ही सजा दें।

कमलिनी—जरूर कहूँगी, बल्कि इस बात पर जोर भी दूंगी । अब यह बताइए कि नानक के लिए क्या हुक्म हुआ है ?

कुमार—केवल इतना ही, जन्म-भर के लिए कैदखाने भेज दिया जाये । बाकी के और कैदियों के लिए भी यही हुक्म हुआ !

किशोरी—भीमसेन के लिए भी यही हुक्म हुआ होगा ?

कुमार—नहीं, उसके लिए दूसरा ही हुक्म हुआ ।

किशोरी—वह क्या ?

कुमार—वह तुम्हारा भाई है, इसलिए हुक्म हुआ कि तुमसे पूछकर वह एकदम छोड़ दिया जाये, बल्कि शिवदत्तगढ़ की गद्दी पर बैठा दिया जाये ।

किशोरी—जब उसे छोड़ देने का ही हुक्म हुआ तो मुझसे पूछना कैसा !

कुमार—यही कि शायद तुम उसे छोड़ना न चाहो, तो कैद में ही रखा जाये।

किशोरी—भला मैं इस बात को कब पसन्द करूँगी कि मेरा भाई जन्म-भर के लिये कैद रहे ? मगर हाँ, इतना खयाल जरूर है कि कहीं वह छूटने के बाद पुनः आपसे दुश्मनी न करे ।

कुमार—खैर, अगर पुनः बदमाशी करेगा तो देखा जायेगा ।

कमलिनी—(मुस्कराती हुई) उसके विषय में चपला चाची से पूछना चाहिये, क्योंकि वह असल में उन्हीं का कैदी है । जब सूअर के शिकार में उन्होंने उसे गिरफ्तार किया था[1], तो तरह-तरह की कसमें खिलाकर छोड़ा था कि भविष्य में पुनः दुश्मनी पर कमर न बाँधेगा ।

कुमार—बात तो ऐसी ही थी, मगर नहीं अब वह दुश्मनी का बर्ताव न करेगा । (किशोरी से) अगर कहो, तो तुम्हारे पास उसे बुलवाऊँ ? जो कुछ तुम्हें कहना-सुनना हो, कह सुन लो ।

किशोरी—नहीं-नहीं, मैं बाज आई, मैं स्वप्न में भी उससे नहीं मिलना चाहती, जो कुछ उसकी किस्मत में लिखा होगा, सो भोगेगा ।

कुमार—आखिर, उसे छोड़ने के विषय में तुमसे पूछा जायेगा, तो क्या जबाब दोगी ?

किशोरी—(कमलिनी की तरफ देखकर और मुस्कराकर) बस, कह दूंगी कि मेरे बदले चपला चाची से पूछ लिया जाये, क्योंकि वह उन्हीं का कैदी है ।

कुमार—खैर, इन बातों को जाने दो । (कमलिनी से) जमानिया तिलिस्म के अन्दर मायारानी और माधवी के मरने का सबब मुझे अभी तक मालूम न हुआ । इसका पता न लगा कि वे दोनों खुद मर गईं, या गोपाल भाई ने उन्हें मार डाला ! और अगर भाई साहब ने ही उन्हें मार डाला तो ऐसा क्यों किया ?

कमलिनी—इसका असल हाल तो मुझे भी मालूम नहीं है, मैंने दो दफे जीजाजी से इस विषय में पूछा था, मगर वह बात टालकर बतोला दे गये ।

---

1. देखिए चन्द्रकान्ता सन्तति पहला भाग, आठवां बयान ।

कुमार—मैंने भी एक दफे उनसे पूछा था, तो यह कहकर रह गए कि फिर कभी बता देंगे।

किशोरी—बहिन लक्ष्मीदेवी को इसका हाल जरूर मालूम होगा।

कमलिनी—उन्हें बेशक मालूम होगा। उन्होंने भुलावा देकर जरूर पूछ लिया होगा। इस समय तो वे अपने रंगमहल में होंगी, नहीं तो मैं जरूर बुला लाती।

कुमार—नहीं, आज तो अकेली ही अपने कमरे में बैठी होंगी, क्योंकि इस समय गोपाल भाई इन्द्रदेव को साथ लेकर कहीं बाहर गये हैं। मुझसे कह गये हैं कि कल पहर-दिन तक आयेंगे।

कमलिनी—तब तो कहिये मैं जाकर बुला लाऊँ!

कुमार—अच्छा जाओ।

कमलिनी उठकर चली गई और थोड़ी ही देर में लक्ष्मीदेवी को साथ लिए हुए आ पहुँची।

लक्ष्मी—(मुस्कराती हुई)कहिये क्या है, जो इतनी रात गये मेरी याद आई है?

कुमार—मैंने सोचा कि आज आप अकेली उदास बैठी होंगी, अतएव मैं ही बुलाकर आपका दिल खुश करूँ।

लक्ष्मी—(हँसकर)क्या बात है! बेशक आपकी मेहरबानी मुझ पर बहुत ज्यादा रहती है। (बैठकर) यह बताइये कि आप लोगों में किसी तरह की हुज्जत-तकरार तो नहीं हुई है जो मुझे फैसला करने के लिए बुलाया है?

कुमार—ईश्वर न करे ऐसा हो, हाँ, इतना जरूर है कि माधवी और मायारानी की मौत के विषय में तरह-तरह की बातें हो रही हैं, क्योंकि उन दोनों के मरने का असल हाल तो किसी को मालूम नहीं है और न भाई साहब ने पूछने पर किसी को बताया ही, इसलिए आपको तकलीफ दी है, क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि आपने किसी-न-किसी तरह यह हाल जरूर पूछ लिया होगा।

लक्ष्मी—(मुस्कराकर)बेशक, बात तो ऐसी ही है, मैंने जिद करके किसी-न-किसी तरह उनसे पूछ तो लिया, मगर सुनने से घृणा हो गई। इसीलिए वे भी यह हाल किसी से खुलकर नहीं कहते और समझते हैं कि जो कोई सुनेगा, उसी को घृणा होगी। इसी खयाल से आपको भी उन्होंने टाल दिया होगा।

कुमार—आखिर, उसमें क्या बात है, कुछ भी तो बताओ!

लक्ष्मी—माधवी को तो उन्होंने नहीं मारा, मगर मायारानी को जरूर मारा, और इस बेइज्जती और तकलीफ से मारा कि सुनने से रोंगटे खड़े होते हैं। यद्यपि माधवी को उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, मगर मायारानी की मौत की कार्रवाई वह देख न सकी, जो उसके सामने की जाती थी और उसी डर से वह बेहोश होकर मर गई। इसमें कोई ऐसी अनूठी बात नहीं है, जो सुनने लायक हो। मुझे वह हाल बयान करते, भी लज्जा और घृणा होती है, अतः—

कुमार—बस-बस, मैं समझ गया, इससे ज्यादा सुनने की मुझे कोई जरूरत नहीं है, केवल इतना ही जानना था कि उनकी मौत के विषय में कोई अनूठी बात तो नहीं हुई।

लक्ष्मी—जी नहीं। अच्छा, यह तो बताइए कि कल कैदी लोगों के विषय में क्या किया जायेगा ? दिलीपशाह का किस्सा तो समाप्त हो गया और अब कोई ऐसी बात मालूम करने के लायक भी नहीं रह गई है।

कुमार—कैदियों का मामला तो कब का साफ हो गया, इस समय तो महाराज ने उनके विषय में हुक्म भी लिखा दिया है, जो कल या परसों तक दरबार में सबको सुना दिया जायेगा।

लक्ष्मी—किस-किसके लिए क्या हुक्म हुआ है ?

इसके जवाब में कुमार ने फैसले का सब हाल बयान किया, जो थोड़ी देर पहले किशोरी और कमलिनी को सुना चुके थे।

लक्ष्मी—बहुत अच्छा फैसला हुआ है।

किशोरी—(हँसकर)क्यों न कहोगी। तुम्हारे दुश्मन तुम्हारे कब्जे में दे दिए गए, अब तो दिल खोलकर बदला लोगी।

लक्ष्मी—बेशक ! (कुमार से) हाँ, यह तो बताइए कि भूतनाथ ने अपनी जीवनी लिखकर दे दी या नहीं ?

कुमार—नहीं, आज देने वाला है।

लक्ष्मी—और हम लोगों को उस तिलिस्मी मकान का तमाशा कब दिखाया जायेगा जिसमें लोग हँसते-हँसते कूद पड़ते हैं ?

कुमार—परसों या कल उसका भेद भी सब पर खुल जायेगा।

लक्ष्मी—अच्छा, यह बताइए कि आपके भाई साहब कहाँ गये हैं ?

किशोरी—(हँसकर, ताने के ढंग पर) आखिर रहा न गया ! पूछे बिना जी नहीं माना।

इतने में ही बाहर की तरफ से आवाज आई, "इसमें भी क्या किसी का इजारा है? ये अपनी चीज की खबरदारी करती हैं किसी दूसरे की जमा नहीं छीनतीं ! बहुत दिनों के बाद जो खोई चीज मिलती है, उसके लिए अकारण पुनः खो जाने का खटका बना ही रहता है, इसलिए अगर उन्होंने पूछा तो बुरा ही क्या किया !"

इस आवाज के साथ-ही-साथ कमला पर सबकी निगाह पड़ी, जो मुस्कराती हुई कमरे के अन्दर आ रही थी।

किशोरी—(हँसती हुई)यह आई लक्ष्मीबहिन की तरफदार बीबी नक्को, तुमको यहाँ किसने बुलाया था ?

कमला—(मुस्कराती हुई) बुलायेगा कौन ? क्या मेरा रास्ता देखा हुआ नहीं है ? यह बताओ कि तुम लोग इस आधी रात के समय इतना शोर-गुल क्यों मचा रहे हो ?

किशोरी—(मसखरेपन के साथ हाथ जोड़कर) जी, हम लोगों को इस बात की खबर न थी कि इस शोर-गुल से आपकी नींद उचट जायेगी और फिर सादी चारपाई पर पड़े रहना मुश्किल हो जायेगा।

कुमार—यह कहो कि अकेले जी नहीं लगता, लोगों को खोजती-फिरती हो।

कमला—जी हाँ, आप ही को खोज रही थी।

कुमार—अच्छा, तो फिर आओ, बैठ जाओ, और समझ लो कि मैं मिल गया।

कमला—(बैठकर किशोरी से) आज तुम्हें कोई आराम न करने देगा। (कुमार से) कहिए, दिलीपशाह का किस्सा तो खत्म हो गया। अब कैदियों को कब सजा दी जायेगी ?

कुमार—कैदियों का फैसला हो गया, उसमें किसी को ऐसी सजा नहीं दी गई जो तुम्हारी पसन्द हो।

इतना कहकर कुमार ने पुनः सब हाल बयान किया।

कमला –तो मैं बहिन लक्ष्मीदेवी के साथ जरूर जमानिया जाऊँगी और दारोगा वगैरह की दुर्दशा अपनी आँखों से देखूँगी।

थोड़ी देर तक इसी तरह की हँसी-दिल्लगी होती रही, इसके बाद लक्ष्मीदेवी और कमला अपने-अपने ठिकाने चली गईं।

6

सुबह की सफेदी आसमान पर फैलना ही चाहती है और इस समय की दक्षिणी हवा जंगली पेड़ों, पौधों लताओं और पत्तों से हाथापाई करती हुई मैदान की तरफ दौड़ी जाती है ! ऐसे समय में भूतनाथ और देवीसिंह हाथ-में-हाथ दिए जंगल के किनारे-किनारे मैदान में टहलते धीरे-धीरे हँसी-दिल्लगी की बातें करते जाते हैं।

देवीसिंह—भूतनाथ, लो, इस समय एक नई और मजेदार बात तुम्हें सुनाते हैं।

भूतनाथ—वह क्या ?

देवीसिंह—फायदे की बात है, अगर तुम कोशिश करोगे तो लाख-दो-लाख रुपया मिल जाएगा।

भूतनाथ—ऐसा कौन-सा उद्योग है, जिसके करने से सहज ही इतनी बड़ी रकम हाथ लग जायेगी ? और अगर इस बात को तुम जानते ही हो, तो खुद क्यों नहीं उद्योग करते ?

देवीसिंह—मैं भी उद्योग करूंगा, मगर कोई जरूरी बात नहीं है कि जिसका जी चाहे उद्योग करके लाख-दो-लाख पा जाये, हाँ, जिसका भाग्य लड़ जायेगा और जिसकी अक्ल काम कर जायेगी, वह बेशक अमीर हो जायेगा। मैं जानता हूँ कि हम लोगों में तुम्हारी तबीयत बड़ी तेज है और तुम्हें बहुत दूर की सूझा करती है, इसलिए कहता हूँ कि अगर तुम उद्योग करोगे तो लाख-दो-लाख रुपया पा जाओगे। यद्यपि हम लोग सदा ही अमीर बने रहते हैं और रुपये-पैसे की कुछ परवाह नहीं करते, मगर फिर भी यह रकम थोड़ी नहीं है, और तिस पर बाजी के ढंग पर जीतना ठहरा, इसलिए ऐसी रकम पाने की खुशी होती है।

भूतनाथ—आखिर बात क्या है, पर कुछ कहो भी तो सही।

देवीसिंह—बात यही है कि उधर जो तिलिस्मी मकान बनाया गया है, जिसके

अन्दर लोग हँसते-हंसते कूद पड़ते हैं, उसके विषय में महाराज ने रात को हुक्म दिया है कि तिलिस्मी मकान के ऊपर सर्वसाधारण लोग तो चढ़ चुके और किसी को कामयाबी नहीं हुई, अब कल हमारे ऐयार लोग उस पर चढ़कर अपनी अक्ल का नमूना दिखायें और उनके लिए इनाम भी दूना कर दिया जाये, मगर इस काम में चार आदमी शरीक न किये जाएँ—एक जीतसिंहजी, दूसरे तेजसिंह, तीसरे भैरोंसिंह, चौथे तारासिंह !

भूतनाथ—बात तो बहुत अच्छी हुई, कई दिनों से मेरे दिल में गुदगुदी हो रही थी किसी तरह इस मकान के ऊपर चढ़ना चाहिए, मगर महाराज की आज्ञा बिना ऐसा कब कर सकता था। मगर यह तो कहो कि उन चारों के लिए मनाही क्यों कर दी गई ?

देवीसिंह—इसलिए कि उन्हें इसका भेद मालूम है।

भूतनाथ—यों तो तुमको भी कुछ-न-कुछ भेद मालूम ही होगा, क्योंकि एक दफे तुम भी ऐसे ही मकान के अन्दर जा चुके हो, जब शेरसिंह भी तुम्हारे साथ थे।

देवीसिंह—ठीक है; मगर इससे क्या असल भेद का पता लग सकता है ? अगर ऐसा ही हो, तो इस जलसे में हजारों आदमी उस मकान के अन्दर गये होंगे, किसी को दोहराकर जाने की मनाही तो नहीं थी, कोई पुनः जाकर जरूर बाजी जीत ही लेता।

भूतनाथ—आखिर उसमें क्या है ?

देवीसिंह—सो मुझे नहीं मालूम, हाँ, दो दिन के बाद वह भी मालूम हो जायेगा।

भूतनाथ—पहली दफे जब तुम ऐसे ही मकान के अन्दर कूदे थे, तो उसमें क्या देखा था और उसमें हँसने की क्या जरूरत पड़ी थी ?

देवीसिंह—अच्छा, उस समय जा कुछ हुआ था, सो मैं तुमसे बयान करता हूँ, क्योंकि अब उसका हाल कहने में कोई हर्ज नहीं है। जब मैं कमन्द लगाकर दीवार के ऊपर चढ़ गया तो ऊपर से दीवार बहुत चौड़ी मालूम हुई और इस सबब से बिना दीवार पर गये, भीतर की कोई चीज दिखाई नहीं देती थी, अतः मैं लाचार होकर दीवार पर चढ़ गया और अन्दर झाँकने लगा। अन्दर की जमीन पाँच या चार हाथ नीची थी, जो किसी मकान की छत मालूम होती थी, मगर इस समय मैं अन्दाज से कह सकता हूँ कि वह वास्तव में छत न थी बल्कि कपड़े का चँदोवा तना हुआ या किसी शामियाने की छत थी, मगर उसमें से एक प्रकार की ऐसी भाप (वाष्प) निकल रही थी कि जिससे दिमाग में नशे की-सी हालत पैदा होती थी और खूब हँसने को जी चाहता था, मगर पैरों में कमजोरी मालूम होती थी और वह बढ़ती जाती थी...

भूतनाथ—(बात काटकर) अच्छा, यह तो बताओ कि अन्दर झाँकने से पहले ही कुछ नशा-सा चढ़ आया था या नहीं ?

देवीसिंह—कब ? दीवार पर चढ़ने के बाद ?

भूतनाथ—हाँ, दीवार पर चढ़ने के बाद और अन्दर झाँकने के पहले।

देवीसिंह—(कुछ सोचकर) नशा तो नहीं, मगर कुछ शिथिलता जरूर मालूम हुई थी।

भूतनाथ—खैर, अच्छा तब ?

देवीसिंह—अन्दर की तरफ जो छत थी, उस पर मैंने देखा कि किशोरी हाथ में

एक चाबुक लिए खड़ी है और उसके सामने की तरफ कुछ दूर हटकर कई मोटे-ताजे आदमी खड़े हैं जो किशोरी को पकड़ कर बाँधना चाहते हैं, मगर वह किसी के काबू में नहीं आती। ताल ठोंक-ठोंककर लोग उसकी तरफ बढ़ते हैं मगर वह कोड़ा मार-मारकर हटा देती है। ऐसी अवस्था में उन आदमियों की मुद्रा (जो किशोरी को पकड़ना चाहते थे ऐसी खराब होती थी कि हँसी रोके नहीं रुकती, तथा उस भाप की बदौलत आया हुआ नशा हँसी को और भी बढ़ा देता था। पैरों में पीछे हटने की ताकत न थी, मगर भीतर की तरफ कूद पड़ने में किसी तरह का हर्ज भी नहीं मालूम पड़ता था क्योंकि जमीन ज्यादा नीची न थी, और इसके अतिरिक्त किशोरी को बचाना भी बहुत ही जरूरी था, अतः मैं अन्दर की तरफ कूद पड़ा, बल्कि यों कहो कि ढुलक पड़ा और उसके बाद तन-बदन की सुध न रही। मैं नहीं जानता कि उसके बाद क्या हुआ और क्योंकर हुआ। हां जब मैं होश में आया तो अपने को कैदखाने में पाया।

भूतनाथ—अच्छा तो इससे तुमने क्या नतीजा निकाला?

देवीसिंह—कुछ भी नहीं, मैंने केवल इतना ही खयाल किया कि किसी दवा के नशे से दिमाग खराब हो जाता है।

भूतनाथ—केवल इतना ही नहीं है, मैंने इससे कुछ ज्यादा खयाल किया है, खैर कोई चिन्ता नहीं कल देखा जायेगा, सौ में नव्वे दर्जे तो मैं जरूर बाहरी रास्ते ही से लौट आऊँगा। यहाँ उस तिलिस्मी मकान के अन्दर लोगों ने जो कुछ देखा है वह भी करीब-करीब वैसा ही है जैसा तुमने देखा था। तुमने किशोरी को देखा और इन लोगों ने किसी दूसरी औरत को देखा, बात एक ही है।

इसी तरह की बातें करते हुए दोनों ऐयार कुछ देर तक सुबह की हवा खाते रहे, और इसके बाद मकान की तरफ लौटे। जब महाराज के पास गये तो पुनः सुनने में आया कि ऐयारों को तिलिस्मी मकान पर चढ़ने की आज्ञा हुई है।

7

दिन अनुमान दो घंटे के चढ़ चुका है। महाराज सुरेन्द्रसिंह, राजा बीरेन्द्रसिंह, गोपालसिंह, इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह वगैरह खिड़कियों में बैठे उस तिलिस्मी मकान की तरफ देख रहे हैं, जिसके अन्दर लोग हँसते-हँसते कूद पड़ते हैं। उस मकान के नीचे बहुत-सी कुर्सियाँ रखी हुई हैं जिन पर हमारे ऐयार तथा और भी कई प्रतिष्ठित आदमी बैठे हुए हैं और सब लोग इस बात का इन्तजार कर रहे हैं कि इस मकान पर बारी-बारी से ऐयार लोग चढ़ें और अपनी अक्ल का नमूना दिखावें।

और ऐयारों की पोशाक तो मामूली ढंग की है, मगर भूतनाथ इस समय कुछ अजब ढंग की पोशाक पहने हुए है। सिवाय चेहरे के उसका कोई अंग खुला हुआ नहीं है। ढीला-ढीला मोटा पायजामा और गँवारू रूईदार चपकन के अतिरिक्त बहुत बड़ा काला मुंड़ासा बाँधे हुए है, जिसका पिछला सिरा पीठ पर से होता हुआ जमीन तक लटक

रहा है। दोनों हाथ बल्कि नाखून तक चपकन की आस्तीन में घुसा हुआ है और पैर के जूते की भी विचित्र सूरत हो रही है। भूतनाथ का मतलब चाहे कुछ भी क्यों न हो, मगर लोग इसे केवल मसखरापन ही समझ रहे हैं।

सबके पहले पन्नालाल उस मकान की दीवार पर चढ़ गये और अन्दर की तरफ झाँककर देखने लगे, मगर पाँच-सात पल से ज्यादा अपने को न बचा सके और हँसते हुए अन्दर की तरफ कूद पड़े।

इसके बाद पंडित बद्रीनाथ, रामनारायण और चुन्नीलाल ने कोशिश की, मगर ये तीनों भी लौटकर न आ सके और पन्नालाल की तरह हँसते हुए अन्दर कूद पड़े।

इसके बाद और ऐयारों ने भी उद्योग किया, मगर कोई सफल-मनोरथ न हुआ। यहाँ तक कि जीतसिंह, तेजसिंह, भैरोंसिंह और तारासिंह को छोड़कर सभी ऐयार बारी-बारी से जाकर मकान के अन्दर कूद पड़े, केवल भूतनाथ रह गया जिसने सबके आखीर में चढ़ने का इरादा कर लिया था।

भूतनाथ मस्तानी चाल से चलता हुआ सीढ़ी के पास गया और धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगा। देखते ही देखते वह दीवार के ऊपर जा पहुँचा। उस पर खड़े होकर एक दफे चारों ओर मैदान की तरफ देखा और इसके बाद मकान के अन्दर की तरफ झांका। यहाँ जो कुछ था उसे देखने के बाद उसने अपना चेहरा उस तरफ किया, जिधर खिड़कियों में बैठे हुए महाराज और राजा वीरेन्द्रसिंह वगैरह बड़े शौक से उसकी कैफियत देख रहे थे। भूतनाथ ने हाथ उठाकर तीन दफे महाराज को सलाम किया और जोर से पुकार कर कहा, "मैं इसके अन्दर झांक कर देख चुका और बड़ी देर तक दीवार पर खड़ा भी रहा, अब हुक्म हो तो नीचे उतर जाऊँ!"

महाराज ने नीचे उतर आने का इशारा किया और भूतनाथ मुस्कुराता हुआ, मकान के नीचे उतर आया, इस बीच में और ऐयार लोग भी जो भूतनाथ के पहले मकान के अन्दर कूद चुके थे, घूमते हुए बड़े तिलिस्सी मकान के अन्दर से आ पहुँचे और भूतनाथ की कैफियत देख-सुनकर ताज्जुब करने लगे।

भूतनाथ के उतर आने के बाद सब ऐयार मिल-जुलकर महाराज के पास गये और महाराज ने प्रसन्न होकर भूतनाथ को दो लाख रुपए इनाम देने का हुक्म दिया। सभी ऐयारों को इस बात का ताज्जुब था कि उस तिलिस्म का असर भूतनाथ पर क्यों नहीं हुआ और वह कैसे सभी को बेवकूफ बनाकर आप बुद्धिमान बन बैठा और दो लाख का इनाम भी पा गया।

जीतसिंह—भूतनाथ, यह तुमने क्या किया कौन-सी तरकीब निकाली जिससे इस तिलिस्मी हवा का तुम पर कुछ भी असर न हुआ?

भूतनाथ—बात मामूली है, जब तक मैं नहीं कहता तभी तक आश्चर्य मालूम पड़ता है।

तेजसिंह—आखिर कुछ कहो भी तो सही।

भूतनाथ—मेरे दिल को इस बात का निश्चय हो गया था कि इस मकान के अन्दर से किसी तरह की हवा, भाफ या धुआं ऊपर की तरफ जरूर उठता है जो झांक दर देखने

वाले के दिमाग में साँस के रास्ते से चढ़कर उसे बदहोश या पागल बना देता है, और दीवार के ऊपरी हिस्से पर भी कुछ-कुछ बिजली का असर है, जो उस पर पैर रखने वाले के शरीर को शिथिल कर देता है या और भी किसी तरह का असर कर जाता है। मैं इस बात को खूब जानता हूँ कि लकड़ी पर बिजली का असर कुछ भी नहीं होता, अर्थात् जिस तरह धातु, मिट्टी, जल, चमड़ा और शरीर में बिजली घुसकर पार निकल जाती है उस तरह लकड़ी को छेद कर बिजली पार नहीं हो सकती अतएव मैंने अपने पैर में लकड़ी के बुरादे का थैला चढ़ा लिया, बल्कि जूते के अन्दर भी लकड़ी की तख्ती रख दी, जिसमें दीवार से पैदा होने वाली बिजली का मुझ पर असर न हो, इसके बाद बेहोशी का असर न होने के लिए दवा भी खा ली, इतना करने पर भी जब तक मैं मकान के अन्दर झाँकता रहा तब तक अपनी साँस को रोके रहा। मैंने अन्दर की तरफ चलती-फिरती और नाट्य करके हँसाने वाली पुतलियों को देखा और उस पीतल की चादर पर भी ध्यान दिया जो दीवार के ऊपर जड़ी थी और जिसके साथ कई तारें भी लगी हुई थीं। यद्यपि उसका असल भेद मुझे मालूम न हुआ मगर मैंने अपने बचाव की सूरत निकाल ली।

इतना कहकर भूतनाथ ने खंजर की नोक से अपने पायजामे में एक छेद कर दिया और उसमें से लकड़ी का बुरादा निकाल कर सभी को दिखाया। भूतनाथ की बातें सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भूतनाथ तथा और ऐयारों की तरफ देखकर कहा, "वास्तव में भूतनाथ ने बहुत ने बहुत ठीक तर्कीब सोची। उस तिलिस्म के अन्दर जो कुछ भेद है हम बता देते हैं, इसके बाद तुम लोग उसके अन्दर जाकर देख लेना। जमानिया तिलिस्म के अन्दर से इन्द्रजीतसिंह एक कुत्ता लाए हैं जो देखने में बहुत छोटा और संगमर्मर का बना हुआ मालूम होता है और बहुत-सी पीतल की बारीक तारें उस पर लिपटी हुई हैं। असल में वह कुत्ता कई तरह के मसालों और दवाइयों से बना हुआ है। वह कुत्ता जब पानी में छोड़ दिया जाता है तो उसमें से मस्त और बदहोश कर देने वाली भाफ निकलती है और उसके साथ जो तारें लिपटी हुई हैं, उनमें बिजली पैदा हो जाती है। दीवार के ऊपर जो पीतल की चादर बिछाई गई है उसी के साथ वे तारें लगा दी गई हैं और उससे कुछ नीचे हटकर एक अच्छे तनाव का शामियाना तान दिया गया है, जिसमें कूदने वाले को चोट न लगे। इसके अतिरिक्त (भूतनाथ से) जिन्हें तुम पुतलियाँ कहते हो वे वास्तव में पुतलियाँ नहीं हैं बल्कि जीते जागते आदमी हैं जो भेष बदलकर काम करते हैं और एक खास किस्म की पोशाक पहनने और दवा सूँघने के सबब उन सब पर उस बिजली और बेहोशी का असर नहीं होता। इस खेल के दिखाने की तरकीब भी एक ताम्रपत्र पर लिखी हुई है जो उसी कुत्ते के साथ पाया गया था। इन्द्रजीत का बयान है कि जमानिया तिलिस्म में इस तरह के और भी कुत्ते मौजूद हैं।

महाराज की बातें सुनकर सभी को बड़ा ताज्जुब हुआ, इसी तरह हमारे पाठक महाशय भी ताज्जुब करते और सोचते होंगे कि यह तमाशा सम्भव है या असम्भव? मगर उन्हें समझ रखना चाहिए कि दुनिया में कोई बात असम्भव नहीं है। जो अब असम्भव है वह पहले जमाने में सम्भव थी और जो पहले जमाने में असम्भव थी वह आज सम्भव हो रही है। 'दीवार कहकहा' वाली बात आप लोगों ने जरूर सुनी होगी।

उसके विषय में भी यही कहा जाता है कि उस दीवार पर चढ़ कर दूसरी तरफ झांकने वाला हँसता-हँसता दूसरी तरफ कूद पड़ता था और फिर उस आदमी का पता ही नहीं लगता कि क्या हुआ और कहाँ गया। इस मशहूर और ऐतिहासिक बात को कई आदमी झूठ समझते हैं मगर वास्तव में ऐसा नहीं है। इसके विषय में हम नीचे एक लेख की नकल करते हैं जो तारीख 14 मार्च सन् 1905 ई० के अवध अखबार में छपा था—

"अगले जमाने में फिलासफर (वैज्ञानिक) लोग अपनी बुद्धि से जो चीजें बना गये हैं अब तक यादगार हैं। उनकी छोटी-सी तारीफ यह है कि इस समय के लोग उनके कामों को समझ भी नहीं सकते। उनके ऊँचे हौसले और ऊँचे खयाल की निशानी चीन के हाते की दीवार है और हिन्दुस्तान में भी ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनका किस्सा आगे चल कर मैं लिखूंगा। इस समय 'दीवार कहकहा' पर लिखना चाहता हूँ।"

"मैंने सन् 1899 ई० में 'अखबार आलम' मेरठ में कुछ लिखा जिसकी मालिक अखबार ने बड़ी प्रशंसा की थी, अब उसके कुछ और विशेष सबब खयाल में आये हैं जो बयान करना चाहता हूँ।

"मुसलमानों के प्रथम राज्य में उस समय के हाकिम ने इस दीवार की अवस्था जानने के लिए एक कमीशन भेजा था जिसके सफर का हाल दुनिया भर के अखबारों से प्रकट हुआ है।

"संक्षेप में यह कि कई आदमी मरे परन्तु ठीक तौर पर नहीं मालूम हो सका कि उस दीवार के उस तरफ क्या हाल-चाल है।

"उसकी तारीफ इस तरह पर है कि उस दीवार की ऊँचाई पर कोई आदमी जा नहीं सकता और जो जाता है वह हँसते-हँसते दूसरी तरफ गिर जाता है, यदि गिरने से किसी तरह रोक लिया जाय तो जोर से हँसते-हँसते मर जाता है।

"यह एक तिलिस्म कहा जाता है या कोई और बात है, पर यदि सोचा जाय तो यह कहा जायगा कि अवश्य किसी बुद्धिमान आदमी ने हकीमी कायदे से इस विचित्र दीवार को बनाया है।

"यह दीवार अवश्य कीमियाई विद्या से मदद लेकर बनाई गई होगी।"

यह बात जो प्रसिद्ध है कि दीवार के उस तरफ जिन्न और परी रहते हैं जिनको देखकर मनुष्य पागल हो जाता है और उसी तरफ को दिल दे देता है, यह बात ठीक हो सकती है परन्तु हँसता क्यों है यह सोचने की बात है।

कश्मीर में केशर के खेतों की भी यही तारीफ है। तो क्या उसकी सुगन्ध वहाँ जाकर एकत्र होती है, या वहाँ भी केशर के खेत हैं जिससे हँसी आती है? परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि ऐसा होता तो यह भी मशहूर होता कि वहाँ केशर की महक आती है। नहीं-नहीं, कुछ और ही हिकमत है जैसा कि हिन्दुस्तान में किसी शहर के मसजिद की मीनारों में यह तारीफ थी कि ऊपर खड़े होकर पानी का भरा गिलास हाथ में लो तो वह आप ही आप छलकने लगता था। इसकी जाँच के लिए एक इंजीनियर साहब ने उसे गिरवा दिया और फिर उसी जगह पर बनवाया परन्तु वह बात न रही। या आगरा में ताजबीबी के रौजे के फव्वारों के नल जो मिट्टी के खरनैचे की तरह थे जैसे खपरैल

या बगीचे के नल होते हैं। संयोग से फव्वारों का एक नल टूट गया, उसकी मरम्मत की गई, तो दूसरी जगह से फट गया यहाँ तक कि तीस-चालीस वर्ष से बड़े-बड़े कारीगरों ने अपनी-अपनी कारीगरी दिखाई परन्तु सब व्यर्थ हुआ। अब तक तलाश है कि कोई उसे बना कर अपना नाम करे, मतलब यह कि 'दीवार कहकहा' भी ऐसी ही कारीगरी से बनी है जिसकी कीमियाई बनावट मेरी समझ में यों आती है कि सतह जहाँ जमीन से आसमान तक कई हिस्सों में अलग की गई है, लम्बाई का भाग कई हवाओं से मिला है जैसे आक्सीजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन, कार्बोलिकएसिड गैस, क्लोराइन इत्यादि। फिर इन हवाओं में से और भी कई चीजें बनती हैं जैसा कि नाइट्रोजन का एक मोरक्कब पुट ऑक्साइड आफ नाइट्रोजन है (जिसको लाफिंग गैस भी कहते हैं)। बस दुनिया के उस सतह पर जहाँ लाफिंग गैस जिसको हिन्दी में हंसाने वाली हवा कहते हैं पाई गई है, उस जगह पर यह दीवार सतह जमीन से इस ऊँचाई तक बनाई गई है। इस जगह पर बड़ी दलील यह होगी कि फिर बड़ी बनाने वाले आदमी कैसे उस जगह अपने होश में रह सकें वे क्यों न हँसते-हँसते मर गये? और यही हल करना पहले मुझसे रह गया था जिसे अब उस नजीर से जो अमेरिका में कायम हुई है हल करता हूँ, याने जिस तरह एक मकान कल के सहारे एक जगह से उठा कर दूसरी जगह रख दिया जाता है उसी तरह यह दीवार भी किसी नीची जगह में इतनी ऊँची बनाकर कल से उठाकर उस जगह रख दी गई है जहाँ अब है। लाफिंग गैस में यह असर है कि मनुष्य उसके सूँघने से हँसते-हँसते दम घुट कर मर जाता है।

अब यह बात रही कि आदमी उस तरफ क्यों गिर पड़ता है? इस खिंचाव को भी हम समझे हुए हैं परन्तु उसकी केमिस्ट्री (कीमियाई) अभी हम न बतावेंगे, इसको फिर किसी समय पर कहेंगे।

''दृष्टान्त के लिए यह नजीर लिख सकते हैं कि ग्वालियर की जमीन की यह तासीर है कि जो मनुष्य वहाँ जाता है, वहीं का हो जाता है, जैसे यह कहावत है कि एक काँवर वाला जिसके काँवर में उसके माता-पिता थे वहाँ पहुँचा और काँवर उतार कर बोला कि तुम्हारा जहाँ जी चाहे जाओ, मुझको तुमसे कुछ वास्ता नहीं। उस तपस्वी के माता-पिता बुद्धिमान थे, उन्होंने अपने प्यारे लड़के की आरजू-मिन्नत करके कहा कि हमको चम्बल दरिया के पार उतार दो फिर हम चले जायँगे। लाचार होकर बड़ी हुज्जत से लड़का उनको दरिया के पार ले गया, ज्योंही उस पार हुआ, त्योंही चाहा कि अपनी नादानी से लज्जित होकर माता-पिता के चरणों पर गिर कर माफी चाहे, परन्तु उसके माता-पिता ने कहा कि 'ऐ बेटा, तेरा कुछ कसूर नहीं, यह तासीर उस जमीन की थी।'

''दीवार कहकहा के उस तरफ भी ऐसा ही खिंचाव है, जिसको हम ग्वालियर की हिस्टरी तैयार हो जाने पर यदि जीते रहे तो किसी समय परमेश्वर कृपा से आप लोगों पर जाहिर करेंगे, अभी तो हमको यह विश्वास है कि इतिहास ग्वालियर के बनाने वाले ग्रेटर साहब ही इस खिंचाव के बारे में कुछ बयान करेंगे। इतिहास-लेखक महाशय को चाहिए कि ग्वालियर की तारीफ में इस किस्से की हकीकत जरूर बयान करें कि काँवर वाले ने काँवर क्यों रख दी थी और इसकी तारीख लिखें या इस किस्से को झूठ साबित

करें, क्योंकि जो बात मशहूर होती है ग्रंथकर्ता को उसके झूठ-सच के बारे में जरूर कुछ लिखना चाहिए। तो भी ग्वालियर का इतिहास तैयार हो जाने पर उस खिचाव के बारे में जो दीवार के उस तरफ है पूरा-पूरा हाल लिखेंगे।"

ग्वालियर की जमीन में कई तरह की खासियत हैं जिनको हम उस हिस्टरी की समालोचना में (यदि वह बातें हिस्टरी से बच रहीं) जाहिर करेंगे। दीवार-कहकहा के सम्बन्ध में जहाँ तक अपना खयाल था आप लोगों पर प्रकट किया, यानी दुनिया के उस हिस्से की सतह पर दीवार नहीं बनाई गई है जहाँ ऑक्साइड आफ नाइट्रोजन है बल्कि पहले दूसरी जगह बनाकर फिर कल के जरिये से वहाँ उठाकर रख दी गई है। यदि यह कहा जाय कि गैस सिर्फ उसी जगह थी और जगह क्यों नहीं है तो उसका सहज जवाब यह है कि जमीन से आसमान तक तलाश करो, किसी-न-किसी ऊँचाई पर तुमको गैस मिल ही जायगी। दूसरे यह कि कोई हवा सिर्फ खास जगह पर मिलती है, मसलन बन्द जगह की हलाक करने वाली बन्द हवा, जैसा कि अक्सर कुएँ में आदमी बर्तते हैं और घबरा कर मर जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि वहाँ हवा नहीं है तो यह नहीं हो सकता।

× × ×

पहले जमाने के आदमी अपनी कारीगरी का अच्छा-अच्छा नमूना छोड़ गये हैं—जैसे मिट्टी की मीनार, या नौशेरवानी बाग या ज़वाहरात के पेड़ों पर चिड़ियों का गाना या आगरे का ताज जिसकी तारीफ में तारीख-तुराब के बुद्धिमान लेखक ने किसी लेखक का यह फिकरा लिखा है जिसका संक्षेप यह है कि "इसमें कुछ बुराई नहीं, यदि है तो यही है कि कोई बुराई नहीं।" देखिये आगरा में बहुत-सी बादशाही समय की टूटी-फूटी इमारतें हैं जिनमें पानी दौड़ाने के नल (पाइप) वैसे ही मिट्टी के हैं जैसे कि आज-कल मिट्टी के गोल परनाले होते हैं, उन्हीं नलों से दूर-दूर से पानी आता और नीचे से ऊपर कई मरातिम तक जाता था। इसी तरह से ताजगंज के फव्वारों के नल भी थे तथा और भी इसी तरह के हैं जिनमें से एक टूटने पर लोहे के नल लगाये गये, जब उनसे काम न चला तो बड़े-बड़े भारी पत्थरों में छेद करके लगाये गये, परन्तु बेफायदा हुआ।

उन फव्वारों की यह तारीफ है कि जो जितना ऊँचा जा रहा है उतनी ही ऊँचाई पर यहाँ से वहाँ तक बराबर धारें गिरती हैं। अब जो कहीं बनते हैं तो धार बराबर करने को ऊँची-नीची सतह पर फव्वारे लगाने पड़ते हैं।

× × ×

इसी तरह का तिलिस्म के विषय का एक लेख ता० 30 मार्च, सन् 1905 के अवध अखबार में छपा था, उसका अनुवाद भी हम नीचे लिखते हैं—

"गुजरे हुए जमाने के काबिल-कदर यादगारो! तुमको याद करके हम कहाँ तक

रोयें और कहाँ तक विलाप करें ? जमाने के बेकदर हाथों की बदौलत तुम अब मिट गये और मिटते चले जाते हो, जमीन तुमको खा गई और उनको भी खा गई जो तुम्हारे जानने वाले थे, यहाँ तक कि तुम्हारा निशान, तो निशान तुम्हारा नाम तक भी मिट गया !

"खलीफा-बिन-उम्मीयाँ के जमाने में जिन दिनों अब्दुल मलिक बिनमर्दा की तरफ से उसका भाई अब्दुलअजीज बिनमर्दा मिश्र देश का गवर्नर था, एक दिन उसके सामने दफीना (जमीन के नीचे छिपा हुआ खजाना) का हाल बतलाने वाला कोई शख्स हाजिर हुआ । अब्दुल अजीज ने बात-बात ही में उससे कहा, "किसी दफीना का हाल तो बताइये !" जिसके जवाब में उसने एक टीले का नाम लेकर कहा कि उसमें खजाना है और इसकी परख इस तौर से हो सकती है कि वहाँ की थोड़ी जमीन खोदने पर संग-मरमर और स्याह पत्थर का फर्श मिलेगा, जिसके नीचे फिर खोदने से एक खाली दरवाजा दिखाई देगा, उस दरवाजे के उखड़ने के बाद सोने का एक खम्भा नजर आवेगा, जिसके ऊपरी हिस्से पर एक मुर्ग बैठा होगा, उसकी आँखों में जो सुर्ख मानिक जड़े हैं वह इस कदर कीमती हैं कि सारी दुनिया उनके बदले और दाम में काफी हो तो हो । उसके दोनों बाजू मानिक और पन्ने से सजे हुए हैं और सोने वाले खम्भे से सोने के पत्तरों का कुछ हिस्सा निकल कर उस मुर्ग के सिर पर छाया किये हुए है ।

"यह ताज्जुब की बात सुन कर उस गवर्नर का कुछ ऐसा शौक बढ़ा कि आमतौर पर हुक्म दे दिया कि वह जगह खोदी जाय और जो लोग उसको खोदेंगे और उसमें काम करेंगे, उनको हजारों रुपये दिये जायँगे । वह जगह एक टीले पर थी, इस वजह से बहुत घेरा देकर खुदाई का काम शुरू हुआ । पता देने वाले ने जो संगमर्मर और स्याह पत्थर के फर्श वगैरह बताये थे, वे मिलते जाते थे और बताने वाले के कौल की तसदीक होती जाती थी और इसी वजह से अब्दुलअजीज का शौक बढ़ता जाता था तथा खुदाई का काम मुस्तैदी के साथ होता जाता था कि यकायक मुर्ग का सिर जाहिर हुआ । सिर के जाहिर होते ही एकबारगी आँखों को चकाचौंध करने वाली तेज रोशनी उस खोदी हुई जगह से निकल कर फैल गई, मालूम हुआ कि बिजली तड़प गई ।

"यह गैरमामूली रोशनी मुर्ग की आँखों से निकल रही थी । दोनों आँखों में बड़े-बड़े मानिक जड़े हुए थे, जिनकी यह बिजली थी । और ज्यादा खोदे जाने पर उसके दोनों जड़ाऊ बाजू भी नजर आये और फिर उसके पाँव भी दिखाई दिये ।

"उस मुर्ग वाले सोने के खम्भे के अलावा एक और खम्भा भी नजर आया जो एक इमारत की तरह पर था । यह इमारती खम्भा रंग-बिरंगे पत्थरों का बना हुआ था, जिसमें कई कमरे थे और उनकी छतें बिल्कुल छज्जेदार थीं । उसके दरवाजों पर बड़े और खूबसूरत आलों (ताकों) की एक कतार थी, जिनमें तरह-तरह की रखी हुई सूरतें और बनी सूरतें खूबी के साथ अपनी शोभा दिखा रही थीं, सोने और जवाहरात के जगह-जगह पर ढेर थे, जो छिपे हुए थे, ऊपर से चाँदी के पत्तर लगे थे और पत्तरों पर सोने की कीलें जड़ी थीं । अब्दुलअजीज बिनमर्दा यह खबर पाते ही बड़ी चाह से उस मौके पर पहुँचा और जो आश्चर्यजनक तिलिस्म वहाँ जाहिर था, उसको बहुत दिलचस्पी के साथ

देर तक देखता रहा और तमाम खलकत की भीड़-भाड़ थी, तमाशबीन अपने बढ़े हुए शौक में एक-दूसरे पर गिरे पड़ते थे। एक जगह ढले हुए ताँबे की सीढ़ी ऊपर तक लगी हुई थी, उसको देखकर एक शख्स ऊपर जल्दी-जल्दी चढ़ने लगा, हरएक तमाशबीन ताज्जुब के साथ वहाँ की हर चीज को देख रहा था।

"उस जीने की चौथी सीढ़ी पर जब चढ़ने वाले ने कदम रखा तो जीने की दाहिनी और बाईं तरफ से दो नंगी तलवारें, अपना काट और तड़प दिखाती हुई निकलीं। यद्यपि इस चढ़ने वाले ने बचने के लिए हर तरह की कोशिश की। मगर दोनों निकलने वाली तलवारें प्राणघातक शत्रु थीं, जिन्होंने देखते-ही-देखते इस चढ़ने वाले आदमी का काम तमाम कर दिया और फिर यह देखा गया कि इस शख्स के टुकड़े नीचे कट कर गिरे। उनके गिरते ही वह खम्भा झोंके ले-लेकर आप-से-आप हिलने लगा और उस पर से बैठा हुआ मुर्ग कुछ अजब शान से उड़ा कि देखने वाले अचम्भे में होकर देखते रह गये।

जिस वक्त उसने उड़ने के लिए अपने बाजू (डैने) फड़फड़ाये तो अद्‌भुत सुरीली और दिल लुभाने वाली आवाजें उससे निकलीं—लोग उन्हें सुनकर दंग रह गये और ये आवाजें हवा में गूंज कर दूर-दूर तक फैल गईं।

उस मुर्ग के उड़ते ही एक किस्म की गर्म हवा चली जिसकी वजह से जिस कदर तमाशबीन आसपास में खड़े थे वे सब-के-सब उस तिलिस्मी गार (खोह) में गिर पड़े। उस गड़हे के अन्दर उस वक्त खोदने वोले बेलदार, मिट्टी को बाहर फेंकने वाले मजदूर और मेट वगैरह, जिनकी तादाद एक हजार कही जाती है, मौजूद थे। जो सब-के-सब बेचारे फौरन मर गये। अब्दुलअजीज ने यह हाल देखकर एक चीख मारी और कहा, "यह भी अजीब दुखदाई बात हुई! इससे क्या उम्मीद रखनी चाहिए!"

इसके बाद और मजदूर उसमें लगा दिये गए। जिस कदर मिट्टी वगैरह निकली थी, वह सब-की-सब अन्दर डाल दी गई। वह मर जाने वाले तमाशबीन भी सब उसी के अन्दर तोप दिये गए और आखिर में वह तिलिस्मी जगह अच्छा-खासा एक 'कब्रिस्तान' बन गया। गये थे दफीना निकालने के लिए और इतनी जानें दफन कर आये, खर्च घाटे में रहा।

8

तीसरे दिन पुन: दरबार हुआ और कैदी लोग लाकर हाज़िर किये गए। महाराज सुरेन्द्रसिंह का लिखाया हुआ फैसला सभी के सामने तेजसिंह ने पढ़ कर सुनाया। सुनते ही कम्बख्त दारोगा जयपाल, हरनामसिंह वगैरह रोने, कलपने, चिल्लाने और महाराज से कहने लगे कि इसी जगह हम लोगों का सिर काट लिया जाय या जो चाहें महाराज सजा दें मगर हम लोगों को गोपालसिंह के हवाले न करें।

कैदियों ने बहुत सिर पीटा, मगर उनकी कुछ न सुनी गई। जो कुछ महाराज ने फैसला लिखाया था उसी मुताबिक कार्रवाई की गई और इस फैसले को सभी ने पसन्द किया।

इन सब कामों से छुट्टी पाने के बाद एक बहुत बड़ा जलसा किया गया और कई दिनों तक खुशी मनाने के बाद सब कोई बिदा कर दिये गए। राजा गोपालसिंह कैदियों को साथ लेकर जमानिया चले गए, लक्ष्मीदेवी उनके साथ गई और तेजसिंह तथा और भी बहुत से आदमी महाराज की तरफ से उनको साथ पहुँचाने के लिए गए। जब वे लौट आये तब औरतों को साथ लेकर राजा वीरेन्द्रसिंह इन्द्रजीतसिंह और आनन्दसिंह वगैरह पुनः तिलिस्म में गए और उन्हें तिलिस्म की खूब सैर कराई। कुछ दिन बाद रोहतासगढ़ के तहखाने की भी उन लोगों को सैर कराई और फिर सब कोई हँसी-खुशी से दिन बिताने लगे।

प्रेमी पाठक महाशय, अब इस उपन्यास में मुझे सिवाय इसके और कुछ कहना नहीं है कि भूतनाथ ने प्रतिज्ञानुसार अपनी जीवनी लिख कर दरबार में पेश की और महाराज ने पढ़कर उसे खजाने में रख दिया। इस उपन्यास का भूतनाथ की खास जीवनी से कोई सम्बन्ध न था इसलिए इसमें वह जीवनी नत्थी न की गई, हाँ खास-खास भेद जो भूतनाथ से सम्बन्ध रखते थे खोल दिये गए, तथापि भूतनाथ की जीवनी जिसे चन्द्रकान्ता सन्तति का उपसंहार भाग भी कह सकेंगे स्वतन्त्र रूप से लिख कर अपने प्रेमी पाठकों की नजर करूँगा, मगर इसके बदले में अपने प्रेमी पाठकों से इतना जरूर कहूँगा कि इस उपन्यास में जो कुछ भूल चूक रह गई हो और जो भेद रह गए हों वह मुझे अवश्य बतावें जिसमें 'भूतनाथ की जीवनी' लिखते समय उन पर ध्यान रहे, क्योंकि इतने बड़े उपन्यास में मेरे ऐसे अनजान आदमी से किसी भी तरह की त्रुटि का रह जाना कोई आश्चर्य नहीं है।

प्रिय पाठक महाशय, अब चन्द्रकान्ता सन्तति की लेख प्रणाली के विषय में भी कुछ कहने की इच्छा होती है।

जिस समय मैंने 'चन्द्रकान्ता' लिखनी आरम्भ की थी उस समय कविवर प्रतापनारायण मिश्र और पण्डितवर अम्बिकादत्त व्यास जैसे धुरंधर किन्तु अनुद्धत सुकवि और सुलेखक विद्यमान थे, तथा राजा शिवप्रसाद, राजा लक्ष्मणसिंह जैसे सुप्रतिष्ठित पुरुष हिन्दी की सेवा करने में अपना गौरव समझते थे, परन्तु अब न वैसे मार्मिक कवि हैं और न वैसे सुलेखक। उस समय हिन्दी के लेखक थे परन्तु ग्राहक न थे, इस समय ग्राहक हैं पर वैसे लेखक नहीं हैं। मेरे इस कथन का यह मतलब नहीं है कि वर्तमान समय के साहित्यसेवी प्रतिष्ठा के योग्य नहीं हैं, बल्कि यह मतलब है कि जो स्वर्गीय सज्जन अपनी लेखनी से हिन्दी के आदि युग में हमें ज्ञान दे गए हैं वे हमारी अपेक्षा बहुत बढ़-चढ़ कर थे। उनकी लेख प्रणाली में चाहे भेद रहा हो, परन्तु उन सब का लक्ष्य यही था कि इस भारत भूमि में किसी तरह मातृ-भाषा का एकाधिपत्य हो, लेकिन यह कोई नियम की बात नहीं है कि वैसे लोगों से कुछ भूल हो ही नहीं उनसे भूल हुई तो यही कि प्रचलित शब्दों पर उन्होंने अधिक ध्यान नहीं दिया। राजा शिवप्रसादजी के राजनीति के विचार

चाहे कैसे ही रहे हों पर सामाजिक विचार उनके बहुत ही प्राञ्जल थे और वे समयानुकूल काम करना खूब जानते थे, विशेषत: जिस ढंग की हिन्दी वे लिख गए हैं उसी से वर्तमान में हिन्दी का रास्ता कुछ साफ हुआ है।

चाहे कोई हिन्दू हों चाहे जैन या बौद्ध हों और चाहे आर्य समाजी या धर्म-समाजी ही क्यों न हों परन्तु जिन सज्जनों के माननीय अवतारों और पूर्वजों ने इस पुण्य भूमि का अपने आविर्भाव से गौरव बढ़ाया है उनमें ऐसा अभागा कौन होगा जो पुण्यता और मधुरता-युक्त संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रचुर प्रचार न चाहेगा ? मेरे विचार में किसी विवेकी भारत सन्तान के विषय में केवल यह देखकर कि वह विदेशी भाषा के शब्दों का प्रसार कर रहा है यह गढ़न्त कर लेना कि वह देववाणी के पवित्र शब्दों का विरोधी है भ्रम ही नहीं किन्तु अन्याय भी है। देखना यह चाहिए कि ऐसा करने से उसका मतलब क्या है ? भारतवर्ष में आठ सौ वर्ष तक विदेशी यवनों का राज्य रहा है इसलिए फारसी-अरबी के शब्द हिन्दू समाज में "न पठेत् यावनी भाषा" की दीवार लाँघ कर उसी प्रकार आ घुसे जिस प्रकार हिमालय के उन्नत मस्तक को लाँघकर वे स्वयं यहां आ गए, यहाँ तक कि महात्मा तुलसीदास जी जैसे भगवद्भक्त कवियों को भी "गरीब-निवाज" आदि शब्दों का बर्ताव दिल खोल कर करना पड़ा।

आठ सौ वर्ष के कुसंस्कार को जो गिनती के दिनों में दूर करना चाहते हैं, उनके उत्साह और साहस की प्रशंसा करने पर भी हम यह कहने के लिए मजबूर हैं कि वे अपने बहुमूल्य समय का सदुपयोग नहीं करते बल्कि जो कुछ वे कर सकते थे, उससे भी दूर हटते हैं। यदि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सीधे-सादे शब्दों से बँगला में काम न लेते तो उत्तर काल के लेखकों को संस्कृत शब्द के बाहुल्य प्रचार का अवसर न मिलता और यदि राजा 'शिवप्रसादी हिन्दी' प्रकट न होती तो सरकारी पाठशालाओं में हिन्दी के चन्द्रमा की चाँदनी मुश्किल से पहुँचती। मेरे बहुत से मित्र हिन्दुओं की अकृतज्ञता का यों वर्णन करते हैं कि उन्होंने हरिश्चन्द्रजी जैसे देश हितैषी पुरुष की उत्तम-उत्तम पुस्तकें नहीं खरीदीं, पर मैं कहता हूँ कि यदि बाबू हरिश्चन्द्र अपनी भाषा को थोड़ा सरल करते तो हमारे भाइयों को अपने समाज पर कलंक लगाने की आवश्यकता न पड़ती और स्वाभाविक शब्दों के मेल से हिन्दी की पैसिजर भी मेल बन जाती। प्रवाह के विरुद्ध चलकर यदि कोई कृतकार्य हो तो निःसन्देह उसकी बहादुरी है, परन्तु बड़े-बड़े दार्शनिक पंडितों ने इसको असम्भव ठहराया है। सारसुधानिधि और कविवचनसुधा की भाषा यद्यपि भावुक-जनों के लिए आदर की वस्तु थी, परन्तु समय के उपयोगी न थी। हमारे 'सुदर्शन' की लेख-प्रणाली को हिन्दी के धुरन्धर लेखकों और विद्वानों ने प्रशंसा के योग्य ठहराया है, परन्तु साधारणजन उससे कितना लाभ उठा सकते हैं यह सोचने की बात है। यदि महा-कवि भवभूति के समान किसी भविष्य पुरुष की आशा ही पर ग्रन्थकारों और लेखकों को यत्न करना चाहिए, तब तो मैं सुदर्शन के सम्पादक पण्डित माधवप्रसाद मिश्र को भी भविष्य की आशा पर बधाई देता हूँ, पर यदि ग्रन्थकारों को भविष्य की अपेक्षा वर्तमान से अधिक सम्बन्ध है तो निःसन्देह इस विषय में मुझे आपत्ति है।

किसी दार्शनिक ग्रंथ या पत्र की भाषा के लिए यदि किसी बड़े कोष को टटोलना

पड़े, तो कुछ परवाह नहीं; परन्तु साधारण विषयों की भाषा के लिए भी कोषी की खोज करनी पड़े तो निःसन्देह दोष की बात है। मेरी हिन्दी किस श्रेणी की हिन्दी है इसका निर्धारण मैं नहीं करता परन्तु मैं यह जानता हूँ कि इसके पढ़ने के लिए कोष की तलाश नहीं करनी पड़ती। चन्द्रकान्ता के आरम्भ के समय मुझे यह विश्वास न था कि उसका इतना अधिक प्रचार होगा, यह मनोविनोद के लिए लिखी गई थी, पर पीछे लोगों का अनुराग देखकर मेरा भी अनुराग हो गया और मैंने अपने उन विचारों को जिनको मैं अभी तक प्रकाश नहीं कर सका था, फैलाने के लिए इस पुस्तक को द्वार बनाया और सरल भाषा में उन्हीं मामूली बातों को लिखा जिससे मैं उस होनहार मण्डली का प्रिय-पात्र बन जाऊँ, जिसके हाथ में भारत का भविष्य सौंपकर हमें इस असार संसार से बिदा होना है। मुझे इस बात से बड़ा हर्ष है कि मैं इस विषय में सफल हुआ और मुझे ग्राहकों की अच्छी श्रेणी मिल गई। यह बात बहुत से सज्जनों पर प्रकट है कि 'चन्द्रकान्ता' पढ़ने के लिए बहुत से पुरुष नागरी की वर्णमाला सीखते हैं और जिनको कभी हिन्दी सीखना न था उन लोगों ने भी इसके लिए सीखी।

हिन्दी के हितैषियों में दो प्रकार के सज्जन हैं: एक तो वे जिनका विचार यह है कि चाहे अक्षर फारसी क्यों न हों पर भाषा विशुद्ध संस्कृत मिश्रित होनी चाहिए और दूसरे वे जो यह चाहते हैं कि चाहे भाषा में फारसी के शब्द मिले भी हों पर अक्षर नागरी होने चाहिए। पहले मैं पंजाब के आर्यसमाजियों और धर्म सभा वालों को मान लेता हूँ, जिनके लेखों में वर्णमाला के सिवाय फारसी, अरबी को कुछ भी सहारा नहीं, सब-कुछ संस्कृत का है, और दूसरे पक्ष में मैं अपने को ठहरा लेता हूँ, जो इसके विपरीत है। मैं इस बात को भी स्वीकार करता हूँ कि जिस प्रकार फारसी, वर्णमाला उर्दू का शरीर और अरबी, फारसी के उपयुक्त शब्द उसके जीवन हैं, ठीक उसी प्रकार नागरी वर्णमाला हिन्दी का शरीर और संस्कृत के उपयुक्त शब्द उसके प्राण कहे जा सकते हैं। यदि यह देश यवनों के अधिकार में न हुआ होता, और यदि कायस्थादि हिन्दू जातियों में उर्दू भाषा का प्रेम अस्थिमज्जागत न हो गया होता तो हिन्दी का शरीर और जीवन पृथक दिखलाई देता। उसी प्रकार हमारे ग्रंथों की सजीव उत्पत्ति होती जिस प्रकार द्विज बालकों की होती है। शरीर में यदि आत्मा न हो तो वह बेकार है और यदि आत्मा को उपयुक्त शरीर न मिल कर पशु पक्षी आदि शरीर मिल जाये, तो भी वह निष्फल ही है, इसलिए शरीर बनाकर फिर उसमें आत्मदेव की स्थापना करना ही न्याययुक्त और लाभप्रद है। 'चन्द्रकान्ता' और 'सन्तति' में यद्यपि इस बात का पता नहीं लगेगा कि कब और कहाँ भाषा का परि-वर्तन हो गया, परन्तु उसके आरम्भ और अन्त में आप ठीक वैसा ही परिवर्तन पायेंगे, जैसा बालक और वृद्ध में। एक दम से बहुत से शब्दों का प्रचार करते तो कभी सम्भव न था कि उतने संस्कृत शब्द हम उन कुपढ़ ग्रामीण लोगों को याद करा देते, जिनके निकट काला अक्षर भैंस के बराबर था। मेरे इस कर्तव्य का आश्चर्यमय फल देखकर वे लोग भी बोधगम्य उर्दू के शब्दों को अपनी विशुद्ध हिन्दी में लाने लगे हैं जो आरम्भ में इसीलिए मुझ पर कटाक्षपात करते थे। इस प्रकार प्राकृतिक प्रवाह के साथ-साथ साहित्यसेवियों की सरस्वती का प्रवाह,बदलता देखकर समय के बदलने का अनुमान करना कुछ अनुचित

नहीं है । जो हो भाषा के विषय में हमारा वक्तव्य यही है कि वह सरल हो और नागरी वाणी में हो, क्योंकि जिस भाषा के अक्षर होते हैं, उनका खिचाव उन्हीं मूल भाषाओं की ओर होता है जिससे उनकी उत्पत्ति हुई है ।

भाषा के सिवाय दूसरी बात मुझे भाव के विषय में कहनी है । मेरे कई मित्र आक्षेप करते है कि मुझे देश-हितपूर्ण और धर्मभावमय कोई ग्रन्थ लिखना उचित था, जिससे मेरी प्रसरणशील पुस्तकों के कारण समाज का बहुत-कुछ उपकार व सुधार हो जाता । बात बहुत ठीक है, परन्तु एक अप्रसिद्ध ग्रंथकार की पुस्तक को कौन पढ़ता ? यदि मैं चन्द्रकान्ता और सन्तति को न लिखकर अपने मित्रों से भी दो-चार बातें हिन्दी के विषय में कहना चाहता तो कदाचित् वे भी सुनना पसन्द नहीं करते । गम्भीर विषय के लिए जैसे एक विशेष भाषा का प्रयोजन होता है वैसे ही विशेष पुरुष का भी । भारतवर्ष में विशेषता की अधिकता न देखकर मैंने साधारण भाषा में साधारण बातें लिखना ही आवश्यक समझा । संसार में ऐसे भी लोग हुए होंगे जिन्होंने सरल और भावमय एक ही पुस्तक लिखकर लोगों का चित्त अपनी ओर खींच लिया हो पर वैसा कठिन काम मेरे ऐसे के करने के योग्य न था । तथापि पात्रों की चाल-चलन दिखाने में जहाँ तक हो सका इसका ध्यान रखा गया है । सब पात्र यथासमय संन्ध्या-तर्पण करते हैं और अवसर पड़ने पर पूजा प्रकार भी वीरेन्द्रसिंह आदि के वर्णन में जगह-जगह दिखाई देता है ।

कुछ दिनों की बात है कि मेरे कई मित्रों ने संवाद-पत्रों में इस विषय का आंदोलन उठाया था कि इनके कथानक सम्भव है या असम्भव । मैं नहीं समझता कि यह बात क्यों बनाई और बढ़ाई गई ! जिस प्रकार पंचतन्त्र-हितोपदेश आदि ग्रन्थ बालकों की शिक्षा के लिए लिखे गये, उसी प्रकार यह लोगों के मनोविनोद के लिए । पर यह सम्भव है या असम्भव इस विषय में कोई यह समझे कि 'चन्द्रकान्ता' और 'वीरेन्द्रसिंह' इत्यादि पात्र और उनके विचित्र स्थानादि सब ऐतिहासिक है तो बड़ी भारी भूल है । कल्पना का मैदान विस्तृत है और उसका यह एक छोटा-सा नमूना है । रही सम्भव असंभव की बात अर्थात् कौन-सी बात हो सकती है और कौन नहीं हो सकती ! इसका विचार प्रत्येक मनुष्य की योग्यता और देश काल पात्र से सम्बन्ध रखता है । कभी ऐसा समय था कि यहाँ के आकाश में विमान उड़ते थे, एक एक वीर पुरुष के तीरों में यह सामर्थ्य थी कि क्षणमात्र में सहस्रों मनुष्यों का संहार हो जाता था, पर अब वह बातें खाली पौराणिक कथा समझी जाती है पर दो सौ वर्ष पहले जो बातें असम्भव थीं आजकल विज्ञान के सहारे वे सब सम्भव हो रही हैं । रेल, तार, बिजली आदि के कार्यो को पहले कौन मान सकता था ? और फिर यह भी है कि साधारण लोगों की दृष्टि में जो असम्भव है कवियों की दृष्टि में भी वह असम्भव ही रहे यह कोई नियम की बात नहीं है । संस्कृत साहित्य के सर्वोत्तम उपन्यास 'कादम्बरी' की नायिका युवती की युवती ही रही पर उसके नायक के तीन जन्म हो गये, तथापि कोई बुद्धिमान पुरुष इसको दोषावह न समझकर गुणधायक ही समझेगा । चन्द्रकान्ता में जो अद्भुत बातें लिखी गई हैं, वे इसलिए नहीं कि लोग उनकी सचाई-झुठाई की परीक्षा करें, प्रत्युत इसलिए कि उसका पाठ कुतूहल वर्द्धक हो ।

एक समय था कि लोग 'सिंहासन' 'बत्तीसी' 'वैतालपचीसी' आदि कहानियों को

विश्राम काल में रुचि से पढ़ते थे फिर 'चहारदरवेश' और 'अलिफलैला' के किस्सों का समय आया, अब इस ढंग के उपन्यासों का समय है। अब भी वह समय दूर है, जब लोग बिना किसी प्रकार की न्यूनाधिकता के ऐतिहासिक पुस्तकों को रुचि से पढ़ेंगे। जब वह समय आवेगा उस समय 'कथासरित्सागर' के समान 'चन्द्रकान्ता' बतलावेगी कि एक वह भी समय था, जब इसी प्रकार के ग्रन्थों से ही वीर प्रसू भारत भूमि की सन्तान का मनोविनोद होता था। भगवान उस समय को शीघ्र लावें !

□□


चन्द्रकान्ता सन्तति
बाबू देवकीनन्दन खत्री
चन्द्रकान्ता सन्तति • बाबू देवकीनन्दन खत्री